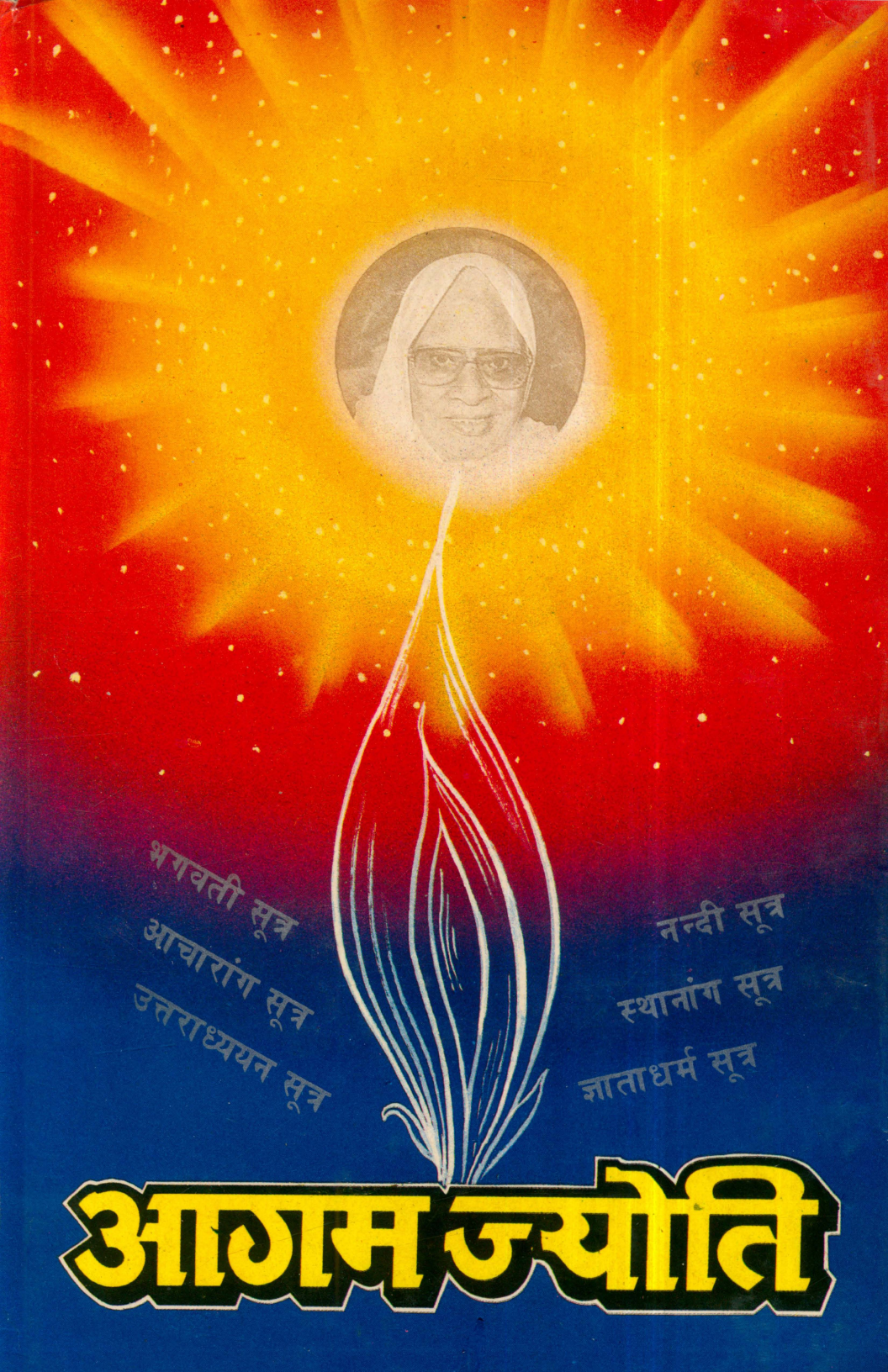
भगवती सूत्र
आचारांग सूत्र
उत्तराध्ययन सूत्र
नन्दी सूत्र
स्थानांग सूत्र
ज्ञाताधर्म सूत्र
आगम ज्योति

पू. प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म.सा.

जन्म : वैशाख पूर्णिमा, वि.सं. 1965, जयपुर

दीक्षा : आषाढ़ शुक्ला , 2 वि.सं. 1990, जयपुर

गुरुवर्या : पू. प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्री जी म.सा.,

प्रवर्तिनी पद : मंगसिर कृष्ण 6, वि.सं. 2039
दिनांक 6 दिसम्बर, 1982 ई. जोधपुर

स्वर्गवास : मौन-एकादशी वि०स० 2046, जयपुर

अध्ययन : हिन्दी, संस्कृत प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी तथा अंग्रेजी भाषाओं की अधिकृत विदुषी, आगम मर्मज्ञा, अप्रतिम लेखिका, आशु कवयित्री।

रचित एवं अनुदित साहित्यः

❋ पुण्य जीवन -ज्योति ❋ श्रमण सर्वस्व ❋ देशनासार
❋ द्रव्य-प्रकाश ❋ कल्पसूत्र ❋ चैत्य-वन्दन कुलक
❋ द्वादशपर्व व्याख्यान ❋ श्री देवचन्द चौबीसी स्वोपज्ञ
❋ सज्जन संगीत सुधा ❋ सज्जन भजन भारती
इत्यादि।

विशेष :
सरल-सहज मानस, मृदु स्वभाव, सौम्य व्यक्तित्व, अदभुत वक्तृत्व कला, अत्यन्त जनप्रिय।

लगभग 50 हजार कि.मी. की पदयात्रा।

आगम-ज्योति

आशीर्वचन

आर्यारत्न सज्जनश्री जी एक महान् श्रमणी, महान् शिक्षिका एवं महान् प्रवर्तिनी थीं। **'आगम-ज्योति'** उनके यशस्वी जीवन की प्रेरक गाथा है, जिसको आर्या शशिप्रभा श्री जी ने तैयार किया है। हम विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक का मनन करने से सबको मार्गदर्शन मिलेगा।

हितेच्छु,

राजनांद गाँव (म.प्र.)

जिन उदय सूरि :

आगम ज्योति

आर्या शशिप्रभा श्री

सम्पादन :
आर्या प्रियदर्शना श्री

प्रेरणा-स्रोत :

परमश्रद्धेय आचार्य भगवन्
श्री जिनउदयसागर सूरीश्वरजी म.सा.
गणिवर्य श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान :

1. सज्जन उपकरण भण्डार
   शिवजीराम भवन
   मोतीसिंह भोमियां का रास्ता, जयपुर-302 003
2. श्री जैन युवा परिषद्
   मोतीसिंह भोमियां का रास्ता
   जयपुर-302 003

प्रकाशक : मंत्री, उम्मेदपुरा जैन श्रीसंघ
सिवाना (बाड़मेर-राजस्थान)
वर्ष : 1991
व्यवस्था-संयोजन : गतिमान प्रकाशन, 1237, रास्ता अजबघर, जयपुर-3
मुद्रक : प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड, जयपुर-1

भूमिका

साहू पंच परमेष्ठी का मेरुदण्ड है। प्राचीन भारतीय विद्यावाङ्मय में साहू विशद और व्यापक अर्थमुखी शब्द है। उसमें वे साधक-सधिकाएं सम्मिलित हैं जो जनमार्ग से विमुख होकर जिनमार्ग की ओर उन्मुख होते हैं। साहू का अपना रूप होता है और होता है उसका अपना स्वरूप।

'आगम चक्खू साहू', अर्थात्—साहू आगम की आँख से देखता है। आचार्य परम्परा से आगत मूल-सिद्धान्त-समूह को आगम कहते हैं। प्रकारान्तर से आप्त अर्थात् जिनेन्द्र की वाणी को भी आगम कहा गया है। जिनवाणी सदा दोष रहित और सौख्य सहित होती है। साहू इन्हीं गुणों से अनुप्राणित वाणी का सदा व्यवहार करता है।

साधु, उपाध्याय, और आचार्य नामक विकास चरण साहू के तीन रूप होते हैं। सुधी श्रमणी प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी महाराज साहू चरण की श्रेष्ठ संस्करण थीं। उनमें साधना और आराधना के अद्भुत समीकरण विद्यमान थे। वे आगम आलोक की सशक्त शब्द-सम्पदा थीं और थीं अर्थात्मा की अद्भुत आभा-पुञ्ज। सार में, संक्षेप में वे दर्शन, ज्ञान और चारित्र की अनोखी शक्ति तथा साकार अनन्वय अलंकार थीं।

साहू सदा पद-पंथी होता है। जल जब-जब स्थिर होता है तो उसमें प्रायः सड़ांध उत्पन्न होने लगती है और जब पंथी एक स्थान पर ठहर जाता है तो वह प्रायः मोह-मुखी हो उठता है। इसीलिए वह सातत्य संचरणशील रहता है।

साहू की चर्या सदाचार का प्रवर्तन करती है। वह पंच समिति और तीन गुप्तियों से अनुप्राणित अपनी चर्या को प्रशुद्ध कर संचरित करता है। मौन, व्याख्यान और ध्यान-संधान उसकी अतिरिक्त विशेषताएं होती हैं। साध्वी प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी महाराज की सुधी चर्या-गाथा का बखान कर आर्या शशिप्रभा श्री जी ने सचमुच एक आदर्श आलोक का उजागरण किया है।

उनकी यशस्वी जीवन-गाथा से अवगत होता है कि उनके श्री चरण दीक्षा लेने से पूर्व ही सधने लगे और वे उत्तरोत्तर साधना से सिद्धोन्मुख होते गए। उनमें आध्यात्मिक लेखन की बेजोड़ क्षमता और काव्य सर्जना की अद्‌भुत शक्ति-सामर्थ्य उजागर हुई, फलस्वरूप उनके द्वारा अनेक मौलिक और अनूदित कृतियों का प्रकाशन हुआ। वे कवयित्री के रूप में भी स्वतंत्र सत्ता की धनी थीं। अनेक प्राचीन और प्रान्तीय भाषाओं का ज्ञानार्जन कर उन्होंने लोक में जिनवाणी का सम्यक् प्रचार एवं प्रसार किया था।

साहू चर्या से अनुप्राणित आपने अपनी प्रखर साधना और चारित्रित तेजस्विता से महिलाओं को शुद्ध और सही जीवन जीने का दिव्य सन्देश दिया तथा अनेक शिष्याओं को दीक्षित कर त्याग और तपस्या का मार्ग प्रशस्त किया था।

वाणी चरित्र की प्रतिध्वनि होती है। सदा हित, मित और प्रियमोदिनी वाणी का उपयोग कर पूज्या श्री ने वात्सल्य चेतना का प्रवाहन किया है। चारित्रिक वातायन से निकलकर जब वचन प्रवचन बन जाते हैं तब बौद्धिक प्रदूषण समाप्त हो जाता है। श्रमणी श्री सज्जन श्री जी महाराज ने अपने प्रताप से प्रदूषण का अन्त कर लोक में समता और सदाचार का पूषण प्रकाशित किया है। ऐसी वंद्य पूजनीया साध्वी श्री के चरणों में शत-शत वंदन ! इत्यलम्।

'मंगल कलश'
394, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड़, अलीगढ़-202001

- विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया
निदेशक
जैन शोध अकादमी

प्रस्तुति

विश्व-वाटिका अनेक सुविकसित पुष्पों से आकीर्ण है। भिन्नाकृति के ये सुन्दर पुष्प अपना मधुर-सौरभ बिखेरकर धरती के कण-कण को सुवासित करते रहते हैं। ऐसे ही मृदु-मधुर सौरभ से परिव्याप्त एक अवर्णनीय वाटिका जैसा था परम-श्रद्धेया प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म.सा. का जीवन, जिसमें अनेक सुगन्धित गुण-पुष्प पूर्णतः विकसित थे और जिनकी सात्विक गन्ध जन-जन को आकर्षित करने में सर्वथा समर्थ थी। वे मेरी सर्वस्व थीं, आराध्या थीं, मैंने 12 वर्ष की अल्पवय से ही उनके मन की सुन्दरता, हृदय की विमलता और अमित वात्सल्य के दर्शन किये थे। मन चाहता है—प्रवर्तिनी महोदया की जीवन वाटिका के समस्त गुण-पुष्पों का विस्तार से आलेखन करूँ; किन्तु न इतने शब्द हैं ना इतनी सामर्थ्य। तथापि, कतिपय गुण-पुष्पों को प्रस्तुत करने का लोभ संवरण भी मैं नहीं कर पा रही हूँ।

प्रभु-महावीर ने **विनय** को धर्म का मूल कहा है। यह संयम की अनिवार्य शर्त है। श्रद्धेया गुरुवर्याश्री अनेक उपाधियों से विभूषिता, आगमज्ञान की सतत प्रवहमान स्रोतस्विनी एवं पुण्य-श्रमणी-मंडल की प्रवर्तिनी थीं; किन्तु विनय की भी साक्षात् आदर्श थीं। उत्तराध्ययन सूत्र की भाषा में कहें तो 'इंगियागार सम्पन्ना'—महान् प्रज्ञावती थीं, गुरुजनों एवं पुज्यजनों के इंगित मात्र को समझकर तत्क्षण कार्य करने की क्षमता से सम्पन्न। विनीत साधक ही सिद्धि के सोपान चढ़ सकता है तथा विनय का गुण आते ही अन्य गुण भी स्वतः आ जाते हैं, यह तत्त्व आपश्री भली प्रकार जानती थीं, यही कारण था कि बाल्यकाल में नहीं चाहते हुए भी माता-पिता की इच्छा को प्रधानता देते हुए आपने गृहस्थ-जीवन में प्रवेश किया और अपने विनयी स्वभाव के बलपर ही आप संयमी जीवन के चिर पोषित स्वप्न को साकार कर सकीं।

पूज्य जनों के विनय में तो आपने कभी उपेक्षा की ही नहीं, पर छोटों के प्रति एवं गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओं के प्रति भी कभी किसी प्रकार का कठोर व्यवहार आपने नहीं किया। यदि किसी को असद् व्यवहार करते देखतीं तो आप आगम वाणी का स्मरण करातीं—"न साहूणं असायणाए न साहूणीणं आसायणाए न सावयाणं आसायणाए न सावियाणं आसायणाए।"

भगवान् ने कहा है—'सोही उज्जुय भूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई'—जो ऋजुभूत है, सरल है वही धर्म-साधना कर सकता है। पूज्यवर्या का नख से शिख

तक सम्पूर्ण जीवन **सरल, निर्दम्भ और निष्कपट** था । आपका आन्तरिक एवं बाह्य जीवन सरलता से ओतःप्रोत था । आपकी वाणी, विचार और यहाँ तक कि जीवन के प्रत्येक व्यवहार में सरलता विराजित थी । न कहीं दुराव, न कहीं छिपाव । सरलता और सौम्यता आपके जीवन में निरन्तर वृद्धिगत रही । सच है— आपके जैसा अहम्‌रहित सरल जीवन ही अर्हत् पद को प्राप्त कर सकता है ।

आर्यारत्न **सहिष्णुता** की पावन सरिता थीं । अपने दीर्घ संयमी जीवन में मैंने आपको प्रतिकूल प्रसंगों में कभी अप्रसन्न होते नहीं देखा और न ही कभी यश-कीर्ति, प्रशंसा, अभिनन्दन आदि अनुकूल परिस्थितियों में अति प्रसन्नता या गर्व से फूलते हुए ही देखा था । आप सदैव माध्यस्थ भाव में रहती थीं । आप प्रायः फरमातीं—यह जीवन तो सुख-दुःखमय है, अतः ऐसे प्रसंग तो आते ही रहते हैं । इन प्रसंगों में साधक को बहना नहीं है अपितु ज्ञाता-द्रष्टा बनकर हर स्थिति को निरपेक्ष भाव से देखना है । वस्तुतः पूज्याश्री की न केवल जिह्वा अपितु जीवन भी बोलता था । उनका सूत्र था—कहना नहीं, सहना सीखो । भयंकर शारीरिक वेदना में भी लोगों ने आपके जीवन में पूर्ण समता के ही दर्शन किये । आपका यशस्वी जीवन सहिष्णुता की पराकाष्ठा-रूप था ।

'दया धर्मस्य जननी'—दया धर्म की जननी है । **'संत हृदय नवनीत समाना'** तथा **'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'** आदि सूत्र पूज्याश्री के जीवन में पल-पल चरितार्थ होते थे । आपका हृदय अत्यन्त दयार्द्र, वात्सल्यमय एवं कोमल था । आपकी वाणी में अनूठा जादू व चमत्कार था । गम्भीर से गम्भीर विषय का जिस सरल और प्रांजल भाषा में आप प्रतिपादन करतीं तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो भाव-गंगा में डूब जाते तथा एकमन-एकरस हो तादात्म्य का अनुभव करते । आपकी **प्रवचनशैली** सचमुच अनूठी, बेजोड़ और अनुपम थी, जिसमें आप के प्रकाण्ड पांडित्य की स्पष्ट झलक दिखायी देती थी ।

प्रवर्तिनी श्री जी की कार्यक्षमता भी अद्वितीय थी । प्रत्येक कार्य को आप इतनी कुशलता से करतीं कि लगता मानो आप उसमें बहुत पहले से दक्ष और सिद्धहस्थ थीं । यद्यपि आप ऐश्वर्यवान माता-पिता की पुत्री एवं जयपुर के दीवान खानदान की बहू थीं, तथापि दीक्षा लेते ही आप सभी कार्य स्वयं इस प्रकार रुचिपूर्वक करने लगीं कि पूरा धर्म-संघ आश्चर्यचकित हो उठा । आपके विषय में गुरु बहिनें और गुरुवर्या श्री प्रायः फरमाया करती थीं कि—शिष्या हो तो सज्जन श्री जी जैसी जो अकेली ही सारे कार्य संभाल लेती हैं और सभी कार्यों में पूर्ण पारंगत हैं ।

सेवा परायणता का अद्भुत गुण मनुष्य स्वयं के हृदय में उद्भूत चचल मनोवृत्तियों का दमन करने के पश्चात ही प्राप्त कर सकता है। आर्या श्री इस अनुपम गुण से सर्वथा परिचित थीं तथा सैकड़ों अन्य कार्यों को गौण कर सेवा को प्रथम स्थान देती थीं। आपका विशाल हृदय – 'मैं सबकी हूँ व सब मेरे हैं' की पावन भावना से ओतःप्रोत था। इसीप्रकार आपका यशस्वी-तेजस्वी व्यक्तित्व भी अद्भुत और प्रभावशाली था। अपने विचरणकाल में आप जहाँ भी पधारीं, जिसके मध्य भी रहीं या जो भी आपके सम्पर्क में आया वह आपके आगमज्ञान, गम्भीर चिन्तन, तात्त्विक प्रतिभा के साथ-साथ आपकी सहज-सरलता, सौजन्य एवं सौम्यता, उदारता आदि गुणों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

अध्ययन-अनुशीलन आपके जीवन का अनवरत क्रम था। शास्त्रानुकूल सम्यक् ज्ञानाराधना में आपका विश्वास था। अध्ययन की यह ललक आप में बचपन से ही थी जो जीवनपर्यन्त यथावत बनी रही। अपने तीव्र एवं योग्य अध्ययन के साथ-साथ **अध्यापन** कार्य में भी पूज्या श्री अत्यन्त निपुण थीं। आपकी वाणी में दर्प नहीं था, अनुशासन की सत्ता नहीं थी, व्यवहार में बड़प्पन की झलक नहीं थी। सामान्य बोलचाल की भाषा में विविध उदाहरणों से विषय को स्पष्ट कर विद्यार्थी को संतुष्ट करने की आप में अद्भुत शक्ति थी। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, व्यावहारिक व शास्त्रीय शिक्षा से लेकर आगमिक ज्ञान पर्यन्त सम्पूर्ण अध्ययन कराने की आपने क्षमता थी। ऊँची कक्षाओं के छात्र-छात्राएं तथा शोधार्थी प्रायः आपके पास शिक्षा ग्रहण करने आते थे। अन्य गच्छ के श्रमणीवृन्द भी शास्त्र वाचन हेतु निःसंकोच आप के पास आते और आप प्रसन्नतापूर्वक उन्हें वाचना प्रदान करती थीं। आप श्रुत-स्थविरा, पर्याय-स्थविरा तथा वयःस्थविरा तो थीं ही, शारीरिक रुग्णता एवं अक्षमता के बावजूद आपकी अध्यापन रुचि अन्त समय तक ज्यों की त्यों बनी हुयी थी।

गुरुवर्या श्री के जीवन में त्याग, तप, संयम की त्रिवेणी निरन्तर प्रवहमान थी। वर्षीतप, उपधान, मासक्षमण, नवपद, बीस स्थानक आदि विविध तपों की आराधनाएं आपने सम्पन्न की थीं। आपका तपःपूत साधनामय जीवन हम सब को आज भी दिव्य प्ररेणा देता है। श्रद्धेया पूज्याश्री का महान् व्यक्तित्व अवर्णनीय है। मुझ अल्पज्ञा में इतनी शक्ति कहाँ कि उनके जीवनचरित्र के अल्पांश को भी मैं अपनी लेखनी से चित्रित कर पाऊँ।

मात्र 12 वर्ष की अल्पवय में मुझे मातृस्वरूपा गुरुवर्या श्री का सान्निध्य-सौभाग्य प्राप्त हो गया था। पूज्याश्री मेरे जीवन की निर्मात्री थीं, उनकी अंगुली पकड़ कर ही मैं संयम-साधना के पथ पर आगे बढ़ी थी। उनकी

पावन सन्निधि के क्षणों को उनके दिव्य जीवन के विविध प्रसंगों के साथ गूंथ कर मैंने जो विनम्र प्रयास किया है उसे ही नाम मिला है— **आगम-ज्योति**।

मैं साभार विनयावनत हूँ परमश्रद्धेय आचार्य भगवन्त श्री जिन उदयसागर सूरीश्वर जी महाराज के प्रति जिन्होंने श्रद्धेया पूज्याश्री के प्रति सच्ची श्रद्धा अर्पित करने का मार्ग प्रशस्त किया तथा आगम-ज्योति के लेखन की प्रेरणा प्रदान की। गणिवर्य श्री मणिप्रभसागर जी म. सा. के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनका मूल्यवान रचनात्मक योगदान प्राप्त हुआ। परम विद्वान् डॉ. महेन्द्रसागर जी प्रचण्डिया के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिनका अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन तो मिला ही, ग्रन्थ की भूमिका लिखने का श्रम भी उन्होंने किया।

बहिन साध्वी प्रियदर्शनाश्रीजी ने ग्रन्थ के सम्पादन में अथक परिश्रम किया है, यह उनका अपना ही काम था। ग्रन्थ की विपुल सामग्री को एक सम्पुट में सिमेट कर उन्होंने जो सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है तथा जिस सम्पादनकौशल एवं साहित्यिक प्रतिमा का परिचय दिया है वह सचमुच श्लाघनीय है। विभिन्न प्रसंगों की भाव-भाषा को अक्षुण्ण रखते हुए, स्वयं की ओर से पूरक विवरण जोड़कर उन्होंने 'आगम-ज्योति' को पूर्णता प्रदान करने का भरसक प्रयत्न किया है। मेरे प्रति उनका श्रद्धा भाव यत्र-तत्र प्रकट हुआ है, सम्भवतः इसीलिए जहाँ भी मेरा नाम आया उन्होंने उस पर प्रशस्ति-संबोधन का किरीट पहना ही दिया। किन्तु, एक बात अटपटी-सी भी लगी कि पूज्यवर्या प्रवर्तिनीश्रीजी के नाम के साथ कहीं-कहीं पर्याप्त विशेषण-पद नहीं जोड़े गये। सम्भवतः वर्तमान साहित्यिक भाषा-शैली की रक्षा करने तथा पुनरावृत्ति दोष से बचने की दृष्टि से उन्होंने ऐसा किया है। ग्रन्थ-रचना में साध्वी बहिन सम्यग्दर्शनाश्रीजी का सहयोग भी उल्लेखनीय है।

इसी क्रम में हिन्दी के जाने-माने विद्वान् एवं सम्पादन कलाविशेषज्ञ भाई श्री महेन्द्र जी जैन का संयोजन-श्रम भी भुलाने योग्य नहीं है। और, साथ ही साधुवाद के पात्र हैं उम्मेदपुरा जैन श्री संघ-सिवाना के धर्मानुरागी, श्रद्धाशील, भक्तमना श्रावकगण जिन्होंने अपनी परमपूजनीया गुरुवर्याश्री की प्रेरक जीवन गाथा को प्रकाशित कर उनकी पावन स्मृतियों और प्रसंगों को चिरस्थायी बनाने का शुभ उपक्रम किया है। उनका धैर्य और सहिष्णुता भी अभिनन्दनीय है जो ग्रन्थ प्रकाशन में हुए असह्य विलम्ब को भी उन्होंने बड़े ही समभाव से सहन किया तथा सच्चे धार्मिक होने का परिचय दिया।

'**आगम-ज्योति**' से सुधी पाठक नित नया आलोक प्राप्त करें, यही मेरे श्रम की सार्थकता होगी।

विचक्षण भवन, जयपुर
विजयादशमी, सं. 2048

—आर्या शशिप्रभाश्री

सम्पादकीय

ज्ञानयोगिनी, श्रमणीरत्न, गुरुवर्या पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्रीजी महा० की जीवन-गाथा के सम्पादन का सुयोग प्राप्त कर मैं स्वयं को धन्य अनुभव करती हूँ। इसका श्रेय पूजनीया साध्वी श्री शशिप्रभाश्रीजी म. को है, जिन्होंने अनूठी सूझ-बूझ, श्रम, विद्वत्ता एवं गुरुवर्या श्री के साथ बिताये दीर्घ संयमी जीवन के विविध प्रसंगों को एक सूत्र में पिरोकर ग्रन्थ का प्रणयन किया और मैं उस सामग्री को यथास्थान रखती चली गयी। इस कार्य में जहाँ मुझे पूज्या प्रवर्तिनी श्रीजी की दिव्य-प्ररेणा का संबल मिला वहीं लेखिका महोदया का अहर्निश मार्गदर्शन भी मिला। मैं दोनों ही महान् आत्माओं के प्रति विनम्र कृतज्ञता से नत हूँ।

'आगम-ज्योति' के लेखन की सही अधिकारी पूज्या शशिप्रभा श्रीजी ही हैं, क्योंकि मात्र 12 वर्ष की अल्पवय से उनको गुरुवर्याश्री का सान्निध्य मिल गया था। उन्होंने जितनी गहराई और अन्तरंगता के साथ पूज्याश्री के जीवन को समझा है, पढ़ा है वह अन्य किसी ने नहीं। वे स्वयं एक अनुपमेय विदुषी साधिका हैं, खरतरगच्छ संघ की यशस्वी आर्या हैं। आपका दीक्षा-संस्कार श्री संघ के इतिहास की विरल घटना थी, तो बालवय में आपकी तीव्र वैराग्य भावना, शैक्षणिक प्रतिभा, विनय एवं मधुर व्यवहार भी इतने विशिष्ट थे कि न केवल आपकी बुआ महाराज पूज्या उपयोग श्रीजी म. पर अपितु अन्य चरित्रात्माओं और श्री संघ के वरिष्ठ लोगों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा था और दीक्षा की अन्तराय स्वतः दूर होती चली गयी थी। हमारे धर्म संघ का परम सौभाग्य है कि पूज्या प्रवर्तिनी श्रीजी के असमय ही देवलोक हो जाने के उपरान्त आज साध्वी-मण्डल को आपका कुशल मार्गदर्शन सम्प्राप्त है।

आपने पूर्ण श्रद्धा, विनय एवं पाण्डित्य के साथ 'आगम-ज्योति, का लेखन किया है। गुरुवर्या श्री हम सब के लिए गुरु के सर्वोच्च स्थान पर विराजत श्रद्धा की केन्द्र थीं जिनके प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा, विनय, भक्ति, बहुमान-कृतज्ञता आदि की भाव-उर्मियाँ निरन्तर उद्वेलित होती रहती हैं। उनका जीवन बाल्यकाल से ही ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और साधना का जीवन्त स्वरूप रहा है। 'आगम-ज्योति' में उनके शुभ संस्कारों से सम्पृक्त बचपन, तप-साधना और ज्ञानाराधना से ओतः-

प्रोत यौवन, वैराग्य भावना से अनुप्राणित गृहस्थ-जीवन तथा यशस्वी श्रमणी-जीवन की सहज-सरल-रोचक शैली में प्रस्तुत जीवन-गाथा है । स्वनामधन्य लेखिका महोदया ने इस गाथा को इतने कलापूर्ण ढंग से सुयोजित किया है कि पाठक इसमें एक ओर जहाँ उपन्यास जैसी साहित्यिक कृति का आनन्द प्राप्त करता है वहीं वह जैन श्रमणी चर्या, संघ-सम्पदा की सारणा-वारणा के अनूठे कौशल, दिग्विजयी लम्बी यात्राएं तथा तत्त्व-दर्शन के परमार्थ स्वरूपों का परिचय भी प्राप्त करता है ।

ग्रन्थ के एक अध्याय में अभिनन्दन समारोह का भव्य ऐतिहासिक स्वरूप है तो दूसरे में महाश्रमणी के महाप्रयाण का हृदय विदारक विवरण है । इस प्रकार ग्रन्थ अनेक ऊँचाइयों को छूता हुआ पूज्यवरा के प्रति स्मृतियों और भावांजलियों के पुष्प-गुच्छों से आवेष्ठित हो जाता है । इसी क्रम में काव्यांजलि से शेष-अशेष तक के पूरक परिशिष्ट भी कम उपयोगी नहीं हैं । संक्षेप में कहा जा सकता है कि ग्रन्थ सार्थक बन पड़ा है ।

सम्पादन कार्य में विद्वद्वर श्री महेन्द्रजी जैन का सहयोग एवं मार्ग दर्शन तथा श्रीमान पुखराजजी लूनिया एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रत्नाजी का नैतिक संबल निरन्तर मिलता रहा, मैं उनको साधुवाद देती हूँ ।

यद्यपि पूर्ण सावधानी बरती गयी है, तथापि तथ्यों सम्बन्धी, भाव-भाषा-शैली एवं सम्पादन सम्बन्धी त्रुटियाँ अवश्य दृष्टिगोचर होंगी । सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे त्रुटियाँ मेरे ध्यान में लावें तथा ग्रन्थ की विषयवस्तु को हृदयंगम कर अवश्य लाभान्वित हों । इसी मंगल भावना के साथ,

सांचोर (राजस्थान)
विजयादशमी, सं. 2048

—आर्या प्रियदर्शनाश्री

प्रकाशकीय

परमश्रद्धेया आगम-ज्योति आर्यारत्न महाप्रज्ञावती पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म.सा. जैन-जगत की महान् विभूति थीं। देश के कौने-कौने से आपके वहाँ पधारने की निरन्तर विनतियाँ आती रहती थीं। हर क्षेत्र चाहता था कि आप उनके यहाँ पधार कर अपनी अमृतवाणी से श्रद्धालु भक्तों की ज्ञान-पिपासा को तृप्त करें। महिलायें, बालक, बालिकायें और तत्त्वरसिक श्रावक सभी अपनी-अपनी दृष्टि से आपका सान्निध्यलाभ लेना चाहते थे। वे धन्य थे, सौभाग्यशाली थे जिन्हें आपके दर्शन-वन्दन-सेवा-सान्निध्य का लाभ मिला। आज भी लोग आपके प्रवास की यशस्वी गाथायें याद करते हैं।

उम्मेदपुरा जैन श्रीसंघ, सिवाना पर प्रवर्तिनीश्रीजी का विशेष उपकार रहा। संवत् 2037 में हमारी आग्रह भरी विनती पर आपने पूज्या शशिप्रभाश्रीजी म. सा. का चातुर्मास करवाया, तभी से संघ में सतत् जाग्रति बनी रही। सं. 2040 में पूज्या प्रवर्तिनीश्रीजी ने स्वयं हमारे अनुनय पर उम्मेदपुरा में चातुर्मास करने का अनुग्रह किया। उस ऐतिहासिक चातुर्मास में हमें पर्याप्त लाभ मिला। आपके मधुर एवं तत्त्व भरे व्याख्यान, सरल-सहज स्वभाव, स्वाध्याय के प्रति तीव्र अनुराग एवं समतापूर्ण शालीन व्यक्तित्व का प्रभाव श्री संघ के सदस्य आज भी महसूस करते हैं।

हमारी गहरी इच्छा थी कि प्रवर्तिनीश्रीजी म. सा. हमारे यहाँ एक चातुर्मास करवायें, किन्तु आपकी शारीरिक अवस्था अनुकूल नहीं होने के कारण आप जयपुर से विहार नहीं कर सकीं और वह इच्छा मन की मन में ही रह गयी। आपके स्वर्गगमन के पश्चात् हमें पुनः पूज्य शशिप्रभाश्रीजी म.सा. का चातुर्मास मिला। यह हमारा सौभाग्य है कि म.सा. की प्रेरणा से पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म.सा. की प्रथम पुण्यतिथि मनाने का शुभ अवसर भी हमें मिला। इस शुभ अवसर के उपलक्ष में पूज्या प्रवर्तिनीश्रीजी के व्यक्तित्व-कर्तृत्व को **'आगम-ज्योति'** ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित कर आपके समक्ष प्रस्तुत करने का सौभाग्य भी म. सा. की सत्प्रेरणा से हमें मिला, हमारे लिए यह विशेष गौरव की बात है।

'आगम-ज्योति' में पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म.सा. के यशस्वी जीवन की प्रेरणास्पद गाथा है, जिसको पूज्या शशिप्रभाश्रीजी म.सा. ने बड़ी ही सुघड़ कलात्मकता एवं सरल भाषा-शैली में तैयार किया है। साध्वी श्री प्रियदर्शना श्रीजी म.सा. ने इस महत्त्वपूर्ण कृति का कुशलता से सम्पादन कर इसको और अधिक सुन्दर एवं उपयोगी बना दिया है। स्थानीय श्री संघ का बच्चा-बच्चा खरतरगच्छ की इन महान् विदुषी आर्यारत्नों का हृदय से आभारी है जिन्होंने अथक् परिश्रम कर एक अनुपम कृति का निर्माण किया तथा उसके प्रकाशन का अवसर हमें प्रदान किया।

'आगम-ज्योति' आपके हाथों में है, जिसमें आगम-ज्योति आर्यारत्न पूज्या सज्जनश्रीजी म.सा के पावन जीवन की प्रेरणादायी झलक प्रस्तुत की गयी है, इसको पढ़कर आप, हम, सब लाभान्वित हों, इसी शुभेच्छा के साथ,

उम्मेदपुरा जैन श्री संघ

सिवाना (बाडमेर)

अनुक्रम :

1.	इतिहास के झरोखे से	: 1 :
2.	पूज्याश्री से गौरवान्वित लूनिया वंश	: 20 :
3.	महकी सुगन्ध गुलाब की	: 30 :
4.	बन्धन में मुक्ति का संगीत	: 39 :
5.	राग पर विराग की विजय	: 58 :
6.	संयम पथ पर बढ़ते चरण	: 70 :
7.	श्रमणी शिरोमणि का दिव्य रूप	: 139 :
8.	अभिनन्दन - अभिवन्दन	: 150 :
9.	महाप्रयाण	: 174 :
10.	स्मृति-सूत्र एवं भावांजलियां	: 184 :

परिशिष्ट

एक : काव्यांजलि : 1 :

दो : साहित्य साधना : 17 :

तीन : शिष्या-मण्डल : 20 :

चार : यशस्वी चातुर्मास : 23 :

पांच : शेष-अशेष : 25 :

अद्भुत तुम्हारी साधना, अनुपम तुम्हारा ज्ञान,
नामानुरूप गुणधारिका, हो कोटि-कोटि प्रमाण !
जैन जगत की शान थीं, खरतरगच्छ की प्राण,
सज्जन गुरुवर्या आपका, अमर रहेगा नाम ।।

आगम-ज्योति

इतिहास के झरोखे से

सृष्टि के अनादि क्रम को जैन दर्शन ने काल चक्रों की व्यवस्था से व्याख्यायित किया है। जिस जगत में हम जी रहे हैं वह क्या है? कब से है? एक रूपी है या बहुरूपी? वह किसकी रचना है? इन सब प्रश्नों के उत्तर जैन-दर्शन सहज ही प्रस्तुत कर देता है। परिवर्तन की दृष्टि से जगत अशाश्वत है; किन्तु इसका आदि बिन्दु नहीं होने से यह शाश्वत है।

काल का पहिया जब नीचे की ओर जाता है तब भौगोलिक परिस्थिति तथा मानवीय सभ्यता और संस्कृति ह्रासोन्मुखी होती है और पहिया जब ऊपर की ओर आता है तब वे विकासोन्मुखी होती हैं। काल की ह्रासोन्मुखी गति को अवसर्पिणी और विकासोन्मुखी गति को उत्सर्पिणी कहा जाता है। प्रत्येक काल-खण्ड के छः-छः विभाग (पर्व) होते हैं। आज हम अवसर्पिणी के पाँचवें पर्व—'दुःषमा' में जी रहे हैं। तीसरे पर्व (अर) सुषम-दुःषमा में आदीश्वर भगवान् ने कर्मयुग, समाज व्यवस्था एवं धर्म की स्थापना की थी। धर्म तीर्थ की स्थापना के उसी क्रम को बावीस तीर्थङ्करों ने क्रमशः आगे बढ़ाया तथा जैन धर्म और जैन संस्कृति का इतिहास आगे बढ़ता गया। चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने मानव कल्याण के अनेक ऐतिहासिक कार्य किये जिनसे जैन परम्परा अधिक सुदृढ़ बनी।

अतीत के पृष्ठ :

दुःषम-सुषमा (चौथा पर्व) पूरा होने में 74 वर्ष 11 माह साढ़े सात दिन बाकी थे (ईस्वी पूर्व 599 वर्ष), तब विदेह के दक्षिण कुण्डग्राम में तीर्थङ्कर भगवान् महावीर का अवतार हुआ। जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति को आपने नई दिशा दी। धार्मिक मतवादों, कर्मकाण्डों पर प्रहार कर दलितों, पिछड़ों, महिलाओं और निरीह प्राणियों के उद्धार का संकल्प लेकर आप आगे बढ़ते गये। एक नये युग का सूत्रपात हुआ। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की कल्याणकारी व्याख्या करते हुए भगवान् ने श्रमणोपासना का प्रवर्तन किया। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का उपदेश देकर समाज को शांति, करुणा, मैत्री एवं स्थिरता का वरदान दिया। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र की आराधना का मार्ग प्रशस्त किया। श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका, इन चार तीर्थों की स्थापना की। आपकी परम्परा अढ़ाई हजार वर्षों से अनवरत चली आ रही है।

इतिहास सागर की तरह महान् और विशाल है। यह कालचक्र की वह वर्तुलाकृति है जिसमें असंख्य अनुभव और असंख्य शिक्षा-सूत्र समाये हुए हैं। जैन परम्परा का इतिहास अनेकानेक प्रेरक घटनाओं, दिव्य प्रमाणों व मानव कल्याण के लिये किये गये सत् प्रयत्नों का दैदीप्यमान पुंज है। इसके द्वारा प्रबोधित अहिंसा और सत्य की व्यावहारिक दृष्टि पाकर असंख्य प्राणियों को जहाँ अभय का वरदान मिला है वहीं भारतीय संस्कृति को संयम, तप व साधना की त्रिवेणी में अवगाहन करने वाली जैन श्रमण परम्परा की शालीन एवं समृद्ध विरासत मिली है।

भगवान् महावीर की उत्तरकालीन परम्परा का लम्बा एवं रोचक इतिहास है। विचार का इतिहास जितना पुराना है, लगभग उतना ही पुराना विचार भेद का इतिहास है। महावीर द्वारा प्रवर्तित जैन संघ में क्रमशः अनेक सम्प्रदाय बने, दिगम्बर और श्वेताम्बर जैसे शासन-भेद हुए; किन्तु राग-द्वेष, संयम-साधना, पंच महाव्रत, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि तत्त्वों की परिभाषाएँ अक्षुण्ण रहीं।

खरतरगच्छ संघ का अभ्युदय :

वीर निर्वाण की नवीं शताब्दी (सं. 850) में चैत्यवास की स्थापना हुई। कुछ शिथिलाचारी मुनि उग्र विहार छोड़कर मन्दिरों के परिपार्श्व में रहने लगे। विद्या बल और राज्य बल दोनों के द्वारा उन्होंने उग्र-विहारी श्रमणों पर पर्याप्त प्रहार किया। इनके आचार की कड़ी आलोचना सम्भवतः सर्वप्रथम हमें आचार्य श्री हरिभद्र सूरि कृत 'सम्बोध प्रकरण' में मिलती है। इसमें वे अपनी अन्तर्व्यथा को प्रकट करते हुए उन हीनाचारी श्रमणों को 'कुसाधु' की संज्ञा से अभिहित करते हैं तथा उनके शिथिलाचार को विवरण सहित बताते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में चैत्यवासियों की हीन स्थिति का दिग्दर्शन मुनि श्री जिनविजयजी ने भी अपने ग्रंथ 'कथाकोश' की प्रस्तावना में विस्तार से किया है।

शिथिलाचार के विरुद्ध क्रान्ति होती रही है। युगान्तरकारी पुरुष वे ही कहलाये हैं जिन्होंने स्वयं संयम व तप के कठोर पथ पर चलते हुए जनता के समक्ष प्रत्यक्ष आदर्श उपस्थित कर उसे अपनी ओर उन्मुख किया और विद्वत्तापूर्वक अपने आचार-विचार तथा आगमिक ज्ञान व सूत्र-सिद्धान्तों की सूक्ष्मताओं को सम्राटों और दार्शनिकों के समक्ष वाद-विवाद कर सिद्ध किया तथा विविध प्रकार के विरुद प्राप्त किये। 'खरतर' विरुद भी एक ऐसा ही विरुद है जिसे श्री उद्योतनसूरि के प्रशिष्य और श्री वर्द्धमान सूरि के शिष्य श्री जिनेश्वर सूरि ने प्राप्त किया था।

विक्रम संवत् 1066 से 1078 के मध्य की बात है, चैत्यवास के बढ़ते हुए शिथिलाचार ने अनेक साहसी, सच्चे यतियों-सुविहितों के मानस को आन्दोलित

कर दिया। श्री वर्द्धमानाचार्य उनमें एक थे जो चैत्यवासी जीवन छोड़कर सुविहित अग्रणी श्री उद्योतन सूरि के शिष्य बने और चैत्यवास का समूल उच्छेदन करने के लिए प्रयत्नशील बन गये। वे अपने सहयोगी मुनियों के साथ चैत्यवासियों के गढ़ अनहिलपुर पाटण आये और वहाँ के महाराज दुर्लभराज की अध्यक्षता में चैत्यवासी प्रमुख आचार्य सूराचार्य आदि के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ आचार्य श्री वर्द्धमान सूरि की उपस्थिति में आचार्य जिनेश्वर सूरि ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से किया। इन महान् आचार्यों की चारित्रिक उत्कृष्टता, प्रखर तेजस्विता, सुस्पष्ट विचार-प्रवाह आदि से प्रभावित होकर महाराज दुर्लभराज ने उनसे कहा—"आपका मार्ग सचमुच 'खरतर' है, पूर्णतः सच्चा है।" और तभी से इस सुविहित परम्परा—"खरतरगच्छ" का उद्भव हुआ।

अन्य श्वेताम्बर संघों का विस्तार

जैन शासन में अनेक गणों का होना व्यवस्था सम्मत था। गणों के नाम भी विभिन्न कारणों से परिवर्तित होते रहते थे। जैसे भगवान् महावीर के उत्तराधिकारी सुधर्मा के नाम से गण को सौधर्मगण कहा गया। चैत्यवासी शाखा के उद्भव के साथ एक पक्ष संविग्न, विधिमार्ग या सुविहित मार्ग कहलाया तथा दूसरा चैत्यवासी। किन्तु कालान्तर में मूर्तिपूजा के अस्वीकार पक्ष के रूप में स्थानकवासी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोकाशाह ने मूर्तिपूजा क विरोध किया और आचार की कठोरता का पक्ष प्रबल किया। इन्हीं लोकाशाह के अनुयायियों ने स्थानकवासी सम्प्रदाय नाम से नया गण बनाया जो थोड़े ही समय में प्रभावशाली बन गया। वर्तमान में स्थानकवासी सम्प्रदाय अनेक आम्नायों में बँटा हुआ है; किन्तु सम्मिलित रूप में इस सम्प्रदाय के साधु-साध्वियों की संख्या वर्तमान में अन्य जैन सम्प्रदायों से सर्वाधिक है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य श्री रुघनाथ जी के शिष्य सन्त भीखण जी (आचार्य भिक्षु) ने विक्रम संवत् 1817 में तेरापंथ का प्रवर्तन किया। आचार्य भिक्षु ने आचार शुद्धि संगठन तथा संघीय अनुशासन पर बल दिया और थोड़े ही समय में एक आचार्य, एक आचार के लिए तेरापंथ प्रसिद्ध हो गया।

महान् शासन प्रभावक आचार्य श्री जिनेश्वर सूरि :

श्री जिनेश्वर सूरि 10-11 वीं शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान्, विशुद्ध संयमी एवं क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के धनी थे। आबू पर्वत पर विमल साह द्वारा निर्मित 'विमल वसही' में जिनेश्वर देव की प्रतिष्ठा कराने वाले, खरतरगच्छ के प्रवर्तक प्रभावक आचार्य श्री वर्द्धमान सूरि के आप शिष्य थे, जिन्होंने चैत्यवास परम्परा के

उन्मूलन का महान् कार्य किया था। संघ पट्टक ग्रंथ के कर्ता श्री जिनवल्लभ सूरि आपके ही चतुर्थ पट्टधर हुए हैं। हजारों-हजारों व्यक्तियों ने आपके तथा आपकी शिष्य परम्परा के उत्कृष्ट त्याग, तप, संयम और प्रभावशाली उपदेशों से प्रभावित होकर जैनत्व धारण किया था।

खरतरगच्छ परम्परा के आप दूसरे आचार्य थे। आपसे शास्त्रार्थ करने के पश्चात् जब चैत्यवासियों का गढ़ ध्वस्त हो गया तो आपको राज-सम्मान प्राप्त हुआ तथा आप निःसंकोच सर्वत्र सुविहित मार्ग का प्रचार-प्रसार करने निकल पड़े। इनकी एक बहिन कल्याणमति ने भी दीक्षा ग्रहण की थी जिनको आचार्य वर्द्धमान सूरि ने श्रेष्ठ प्रवर्तिनी पद दिया था।

आपका शिष्य समुदाय अत्यन्त विशाल था। जिनमें प्रमुख थे—जिनचन्द्र, अभयदेव, धनेश्वर, हरिभद्र, प्रसन्नचन्द्र, विमल, धर्मदेव, सहदेव, सुमति आदि। आप लेखनी के भी प्रौढ़ आचार्य थे। प्रमालक्ष, स्वोपज्ञवृत्ति, अष्टक प्रकरण टीका (सं. 1080), चैत्य वन्दनक आदि अनेक दार्शनिक, सैद्धान्तिक एवं कथा साहित्य की रचनाएँ आपके द्वारा ही की गयी थीं।

चैत्यवास के उन्मूलन के साथ मन्दिरों की व्यवस्थाओं, पूजा-पद्धतियों में भी शास्त्रानुकूल परिवर्तन हुए। विधिचैत्य बने जिनमें रोशनियाँ, डण्डिया रास तथा रात्रि-जागरण आदि निषिद्ध किये गये। तरुणी स्त्रियों को प्रभु की पूजा निषिद्ध की गई। संध्या की आरती होने के तुरन्त बाद तब जैन मन्दिरों के द्वार 'मंगल' (बन्द) किये जाने लगे। मन्दिर की चौरासी आशातनायें न हों, इसका कठोरता से पालन होने लगा। सचमुच उस समय जैन शासन को, संघ को, जिन-प्रासादों को पतन के गहरे गर्त से उद्धार करने और सनातन विशुद्ध श्रमण संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित करने का भगीरथ कार्य स्वनामधन्य आचार्य श्री जिनेश्वर सूरि ने किया, जो जैन इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

श्री जिनचन्द्र सूरि :

आचार्य जिनेश्वर सूरि के पट्टधर श्री जिनचन्द्र सूरि हुए जो बहुश्रुत-गीतार्थ थे। आपने 'संवेग रंगशाला' नामक प्राकृत ग्रन्थ की रचना (10050 श्लोक परिमाण) सं. 1125 में पूर्ण की थी।

श्री अभयदेव सूरि : (सं. 1120-सं. 1139)

श्री जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर गच्छनायक के रूप में आचार्य अभयदेव सूरि हुए। आपकी योग्यता और प्रतिभा को देखकर आचार्य जिनेश्वर सूरि ने स्वयं

आपको आचार्य पद प्रदान किया था। आपका स्वर्गवास अनुमानतः सं. 1139 के बाद हुआ था। आप स्तम्भनक पार्श्वनाथ (खम्भात) के प्रकटकर्ता, 'जयतिहुअणवर' स्तोत्र के रचयिता तथा नवांगी टीकाकार के नाम से विख्यात हैं।

श्री जिनवल्लभ सूरि : (सं. 1167 - सं. 1167)

आप मूलतः चैत्यवासी आचार्य जिनेश्वराचार्य के शिष्य थे किन्तु आचार्य अभयदेव सूरि के पास शिक्षा ग्रहण कर आपने सुविहित धर्म की उप-सम्पदा ग्रहण की। बागड़ प्रदेश में आपके प्रबोध से 10,000 अजैन जैन बने थे। सं. 1167 कार्तिक बदी, 12 को चित्तौड़ में आपका स्वर्गवास हो गया। आप केवल 6 माह ही आचार्य पद पर रहे। श्री जिनवल्लभ सूरि प्राकृत और संस्कृत भाषाओं के उद्भट विद्वान् थे। आपके द्वारा निर्मित 44 कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं। आचार्य जिनेश्वर सूरि से खरतरगच्छ सुविहित पथ के नाम से प्रसिद्ध था वह आपके समय में 'विधि पक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

युगप्रधान दादा जिनदत्त सूरि : (सं. 1169 - सं. 1211)

आपका जन्म सं. 1132 में, दीक्षा–सं. 1141 में, आचार्य पद 1169 तथा स्वर्गवास सं. 1211 में हुआ। आप धोलका के निवासी थे। आपने श्री धर्मदेव उपाध्याय के पास दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम सोमचन्द्र रखा गया। आपकी उत्कृष्ट चारित्रिक सम्पदा और तप-त्याग को देखकर बड़े-बड़े चैत्यवासी आचार्यों ने चैत्यवास त्यागकर आपके पास दीक्षा ग्रहण की थी। अजमेर के तत्कालीन नृपति अर्णोराज, त्रिभुवनगिरि के महाराजा कुमारपाल आदि आपके भक्त थे। आपने लगभग सहस्राधिक साधु-साध्वियों को दीक्षा दी थी तथा एक लाख तीस हजार जैनेतरों को जैन बनाकर ओसवंश को समृद्ध किया था।

महादेवी अम्बिका के द्वारा आपको 'युग प्रधान' पद प्राप्त हुआ था। आप बड़े चमत्कारी थे तथा प्रथम अनुयोग-मंत्र ग्रन्थ की प्राप्ति भी आपको हुयी थी। आपने चौसठ योगिनियों को प्रतिबोध दिया था तथा 52 वीर एवं 5 पीर आपकी सेवा में उपस्थित रहते थे। वि. सं. 1211, आषाढ़ बदी इग्यारस को आपका स्वर्गवास अजमेर में हुआ। 'उपदेश कुलक' आदि छोटी-मोटी-27 कृतियाँ आपकी प्राप्त होती हैं।

मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि : (सं. 1211 - सं. 1223)

मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि जैसलमेर के निकट विक्रमपुर ग्राम के निवासी सेठ रासल के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम देल्हणदेवी था। वे बचपन से ही विलक्षण, अनेक शुभ लक्षणों युक्त, प्रतिभावान एवं संस्कार युक्त थे। उन्होंने अजमेर

में सम्वत् 1203 में आचार्य श्री जिनदत्त सूरि से दीक्षा ग्रहण की। उनकी विशिष्ट प्रतिभा और योग्यता को देखकर मात्र 9 वर्ष की आयु में गणनायक श्री जिनदत्त सूरि ने आपको सं. 1205 में आचार्य पद प्रदान किया। सं. 1211 में आप गच्छनायक बने।

आपने अनेक ऐतिहासिक कार्य किये। विधि चैत्यों की प्रतिष्ठाएँ करायीं, प्रतिभावान साधु-साध्वियों को संघ में दीक्षित किया तथा धर्म, दर्शन, तत्त्व चर्चा, ज्योतिष आदि शास्त्रों में विद्वानों से चर्चाएँ कर अपनी विद्वत्ता की छाप छोड़ी तथा विजयश्री प्राप्त की। दिल्ली में सं. 1223 का चातुर्मास कर सम्राट् मदनपाल (पृथ्वीराज चौहान के नाना अनंगपाल) को प्रतिबोधित किया। आपका दाह संस्कार (सं. 1223) दिल्ली से दूर महरौली में किया गया, जहाँ आज भी आपका स्तूप विद्यमान है जो विविध चमत्कारों का केन्द्र है। कहते हैं, आपके भाल पर मणि विद्यमान थी अतः आप मणिधारी नाम से सुविख्यात हुए। आपने अनेक जैनेतर परिवारों को प्रतिबोध देकर महत्तियान जाति की स्थापना की और जैन समाज की अभिवृद्धि की।

युगप्रवरागम श्री जिनपति सूरि (सं. 1223 - सं. 1277)

वि. सं. 1217 में मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि द्वारा आपको मथुरा में दीक्षा प्रदान की, उस समय आप मात्र 7 वर्ष के थे। सं. 1223 में उन्हीं के निर्देशानुसार आपको दिल्ली में महोत्सवपूर्वक आचार्य पद प्रदान किया गया। आपने अनेक महान् विभूतियों की दीक्षित किया था जिनमें पुष्करणी के जिनसागर एवं जिनपाल, विक्रमपुर के जिनदेव गणि, उच्चानगरी के धर्मसागर आदि प्रमुख हैं। पृथ्वीराज चौहान की सभा में आपका शास्त्रार्थ पद्मप्रभ आचार्य से हुआ, जिसमें आप विजयी हुए। महाराजा स्वयं जय-पत्र देने के लिए आपके उपाश्रय में पधारे। आचार्य अकलंक, जो पूर्णिमा गच्छ के आचार्य थे, ने अत्यन्त प्रसन्न होकर आपसे कहा—'खरतराचार्य, आप वास्तव में वादलब्धि सम्पन्न हैं।' आपने विभिन्न प्रदेशों की यात्राएँ कीं तथा ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किए।

श्री जिनेश्वर सूरि (द्वितीय) (सं. 1304 - सं. 1331)

आचार्य जिनपति सूरि के पाट पर श्री जिनेश्वर सूरि (द्वितीय) हुए। आप मरुकोट निवासी भण्डारी नेमिचन्द्र के पुत्र थे। अम्बिका देवी के स्वप्नानुसार उनका जन्म-नाम अम्बड़ रखा गया था। सं. 1278 में आचार्य सर्वदेव सूरि ने संघ की सहमति से आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया तथा जिनेश्वर सूरि नाम रखा गया। वे अत्यन्त शासन प्रभावक एवं उद्भट विद्वान थे। उनके शासनकाल में अनेक दिग्गज विद्वान् और साहित्य निर्मात्री विभूतियाँ हुयी थीं।

श्री जिनप्रबोध सूरि (सं. 1331 - सं. 1341)

सं. 1296 में आपने श्री जिनेश्वर सूरि के हाथों दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने संवत् 1330 में आपको वाचनाचार्य का पद दिया तथा सं. 1331 में आचार्य पद पर स्थापित किया। आपके द्वारा अनेकों प्रतिष्ठाएँ, दीक्षाएँ, पदस्थापनाएँ आदि विशिष्ट कार्य हुए। आपने वृत्त प्रबोध, पंजिका प्रबोध एवं बौद्धाधिकार विवरण आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया।

कलिकाल केवली श्री जिनचन्द्र सूरि : (सं. 1341 - सं. 1376)

आपका जन्म सिवाणा के मंत्री श्री देवराज एवं माता श्रीमती कोमलदेवी के यहाँ हुआ था। आप श्री जिनकुशल सूरि के संसार पक्षीय काका थे। श्री जिनप्रबोध सूरि ने सं. 1332 में आपको दीक्षा प्रदान की तथा क्षेत्रकीर्ति नामकरण किया और अपनी अन्तिम अवस्था में (संवत् 1341 में) अपने पाट पर स्थापित कर जिनचन्द्र सूरि नाम दिया।

दादा श्री जिन कुशल सूरि : (स. 1377 - सं. 1390)

प्रत्यक्ष प्रभावी युग प्रधान, तीसरे या छोटे दादाजी के नाम से विख्यात श्री जिनकुशल सूरि एक असाधारण महापुरुष थे। सिवाणा निवासी छाजेड़ गोत्रीय मंत्री देवराज आपके पितामह तथा श्री जैसल आपके पिता थे। आपका जन्म-नाम कर्मण था। कलिकाल केवली श्री जिनचन्द्र सूरि से प्रतिबोध पाकर सं. 1345 में, सिवाणा में आपने दीक्षा ग्रहण की तथा आपका नाम कुशलकीर्ति रखा गया। सं. 1377 में अणहिलपुर पाटण में महामहोत्सव के साथ आपको आचार्य पद प्रदान किया गया तथा नामकरण हुआ—जिनकुशल सूरि। दिल्ली निवासी सेठ रयपति ने अपना संघ निकालने के लिए तत्कालीन सम्राट् गयासुद्दीन तुगलक से फरमान प्राप्त किया कि श्री जिनकुशल सूरि के संघ को सभी राज्य-सरकारें सहायता करें। इसी प्रकार भीमपल्ली के श्रावक वीरदेव ने भी शाही फरमान प्राप्त कर अपना संघ निकाला था। आपके द्वारा लगभग 50,000 जैन बनाये गये। चैत्यवन्दन कुलक तथा जिनचन्द्र सूरि चतुःसप्तति एवं संस्कृत भाषा में 'नवस्तोत्र' नामक आपकी कृतियाँ उपलब्ध हैं। आपके शासनकाल में भी अनेकों दिग्गज विद्वान् हो चुके हैं।

श्री जिनपद्म सूरि (सं. 1390 - सं. 1400)

मात्र आठ-दस वर्ष की अवस्था में (सं. 1384) आपने श्री जिनकुशल सूरि के हाथों देवराजपुर में दीक्षा ग्रहण की तथा अनेक शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया। उनके स्वर्गवास के पश्चात् सं. 1390 में आपको बड़े विधि-विधान एव महोत्सव के साथ श्री तरुण प्रभाचार्य ने आचार्य पद पर बिठाया।

इनके पश्चात् क्रमशः निम्नांकित आचार्यवर हुए :—

श्री जिनलब्धि सूरि : (सं. 1388 - सं. 1406)

श्री जिनचन्द्र सूरि : (सं. 1406 - सं. 1414)

श्री जिनोदय सूरि : (स. 1415 - सं. 1432)

श्री जिनराज सूरि : (सं. 1433 - सं. 1461)

श्री जिनभद्र सूरि : (सं. 1475 - सं 1514)

श्री जिनराज सूरि के पट्ट पर श्री सागरचन्द्राचार्य ने श्री जिनवर्द्धन सूरि को स्थापित किया था किन्तु उन पर दैवी प्रकोप होने से 14 वर्षों तक कोई आचार्य नहीं रहे। सं. 1475 में श्री जिनभद्र सूरि को पट्ट प्रदान किया गया।

खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा का उद्‌भव आपसे ही हुआ था। आपने सहस्राधिक जिनमूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ करवायीं तथा अनेक ज्ञान-भण्डारों की स्थापना की। जैसलमेर का ज्ञान भण्डार आपके द्वारा ही स्थापित है।

श्री जिनचन्द्र सूरि : (सं. 1515 - सं. 1537)

श्री जिनसमुद्र सूरि : (सं. 1537 - सं. 1555)

श्री जिनहंस सूरि : (सं. 1556 - सं. 1582)

श्री जिन माणिक्य सूरि : (सं. 1582 - सं. 1612)

युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि : (सं 1612 - सं 1670)

आपका जन्म सं 1598 में बड़ली ग्राम में हुआ था। मात्र 9 वर्ष की अल्पायु में आपने दीक्षा ग्रहण कर ली। आपका पूर्व नाम सुलतानकुमार और दीक्षा का नाम सुमतिधीर था। जैसलमेर में राउल मालदेव द्वारा आयोजित नन्दि महोत्सव में आपको आचार्य पद पर आसीन किया गया तथा श्री जिनचन्द्र सूरि नाम दिया गया। गच्छ में फैले शिथिलाचार को मिटाने के लिए आपने सं. 1614 में क्रियोद्धार किया। तप-जप के प्रभाव से आपने अनेक योग-शक्तियाँ अर्जित करली थीं। वि. सं. 1648 में तत्कालील सम्राट अकबर के अनुरोध पर आप खम्भात से विहार कर 31 साधुओं के परिवार सहित लाहौर पधारे तथा सम्राट् को प्रभावित कर तीर्थों की रक्षा, अहिंसा के प्रचार तथा जलचर रक्षा आदि सम्बन्धी कई फरमान प्राप्त किये। सम्राट आपसे अत्यन्त प्रभावित था। कश्मीर विजय के

लिए जाते हुए उसने सूरि महाराज को बुलाकर आशीर्वाद प्राप्त किया था तथा जीवों को अभयदान देने के लिए 12 फरमान जारी किये थे। आपके सामयिक चमत्कारों, विशुद्ध गुणों और विद्वत्ता से प्रभावित होकर अकबर ने सं. 1649 में एक बड़े महोत्सव के साथ आपको 'युगप्रधान' पद से अलंकृत किया था।

सम्राट जहाँगीर भी आपको अपना गुरु मानता था। जैन साधुओं पर सम्राट के कोप को दूर करने के लिए सं. 1668 में आपने पाटण से आगरा तक वृद्धावस्था में सत्वर यात्रा की तथा जैन साधुओं को कैद करने व राज्य की सीमा से बाहर निकालने के हुक्म को रद्द करवाया। सं. 1669 में आगरा चातुर्मास के दौरान शाही दरबार के भट्ट को शास्त्रार्थ में परास्त करने पर आप 'सवाई युगप्रधान भट्टारक' नाम से प्रसिद्ध हुए। आप स्वयं गीतार्थ विद्वान् थे। आपका शिष्य समुदाय भी असाधारण वैदुष्य धारक था। आपके विशाल साधु-साध्वी समुदाय में अनुमानतः 2000 सदस्य थे।

श्री जिनसिंह सूरि : (सं. 1649 आचार्य पद - सं. 1674)

श्री जिनराज सूरि : (सं. 1674 - सं. 1700)

उच्चकोटि के साहित्यकार, 'शालिभद्र चौपाई' के रचयिता।

श्री जिनरत्न सूरि : (सं. 1700 - सं. 1711)

श्री जिनचन्द्र सूरि : (सं. 1711 - सं. 1763)

श्री जिनसुख सूरि : (सं. 1763 - स. 1780)

श्री जिनभक्ति सूरि : (सं. 1780 - सं 1804)

श्री जिनलाभ सूरि : (सं. 1804 - सं. 1834)

इस प्रकार खरतरगच्छ संघ के महान् आचार्यों की एक अविच्छिन्न परम्परा रही है। इनके साथ-साथ अद्वितीय उपाध्याय, रचनाकार एवं उद्भट विद्वान् भी संघ में हुए हैं। आठ अक्षरों के दस लाख अर्थ करने वाले अद्भुत विद्वान् श्री संयमसुन्दर जी गणि, एक पूर्व का ज्ञान रखने वाले द्रव्यानुयोग, न्याय तथा तत्त्वचर्चा के अनेक गद्य-पद्यमय ग्रन्थों के रचयिता श्रीमद् देवचन्द्र गणि तथा योगिराज आनन्द घन आदि महापुरुष इसी परम्परा में हुए हैं, जिनकी चारित्र तपोनिष्ठता, विद्वत्ता आदि गुण-सौरभ से महावीर का नन्दनवन आज भी सुरभित है। अनेक शासन प्रभावक आचार्य, मुनिराज, साध्वियाँ, श्रावक एवं श्राविकाओं आदि से यह परम्परा समृद्ध रही है।

पुरानी दादाबाड़ियों, स्तूपों, मूर्तियों एव चरण-पादुकाओं की संख्या भी लगभग 10 हजार है और दिनानुदिन वृद्धिगत है ।

खरतरगच्छ की संविग्न साधु परम्परा :

आचार्य श्री वर्द्धमान सूरि एवं आचार्य श्री जिनेश्वर सूरि ने जैन श्रमण परम्परा में उत्पन्न हुए शिथिलाचार का सक्रिय विरोध कर जिस सुविहित/संविग्न परम्परा की नींव रखी थी वह शताब्दियों तक फलती फूलती रही । जब-जब इसमें पुनः शिथिलाचार के बीच पैदा हुए, विकृतियाँ आने लगीं तो प्रबुद्ध एवं क्रियापात्र साधुओं ने पुनः-पुनः इसका क्रियोद्धार किया । इन क्रियोद्धारक साधुवर्ग की परम्परा वर्तमान समय में संविग्न परम्परा के नाम से सुविख्यात है तथा तीन महापुरुषों के समुदाय विद्यमान हैं :—

1. **श्री सुखसागर जी महाराज का समुदाय**
2. **श्री कृपाचन्द्र सूरि जी महाराज का समुदाय**
3. **श्री मोहनलालजी महाराज का समुदाय**

श्री सुखसागर जी महाराज (सं. 1876 - 1942) की परम्परा का अभ्युदय वस्तुतः महामहोपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी महाराज (सं. 1801 - सं 1873) से ही प्रारम्भ होता है, जिनके दादा गुरु उपाध्याय श्री प्रीतिसागर गणि थे जो आचार्य श्री जिनभक्ति सूरि के शिष्य थे। इस परम्परा में अनेक महान् तपस्वी, संघ प्रभावक विद्वान् व गणनायक आचार्य हुए हैं। यह परम्परा श्री क्षमा कल्याणजी महाराज की 'वासक्षेप' को ही मानती आ रही है । इस परम्परा का परिचय श्री क्षमाकल्याणजी के दादागुरु उपाध्याय श्री प्रीतिसागर गणी प्रारम्भ होता है :

उपाध्याय श्री प्रीतिसागर गणी :

आप आचार्य श्री जिनभक्ति सूरि के शिष्य थे । आपकी दीक्षा सं. 1788 में सिणधारी में हुयी थी। सं. 1801 से आप श्री जिनभक्ति सूरि के साथ जैसलमेर में रहे । सं. 1808 में बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ । आपके पश्चात् वाचक श्री अमृत धर्म गणी ने धर्म प्रचार का संचालन किया ।

उपाध्याय श्री क्षमा कल्याण जी :

श्री जिनलाभ सूरि के कर कमलों से सं. 1816 में आपकी दीक्षा हुयी तथा आप श्री अमृतधर्मगणी के शिष्य बने । आपका अधिकांश विचरण श्री जिनलाभ सूरि तथा श्री जिनचन्द्र सूरि जी के साथ ही हुआ । गुजरात, बीकानेर,

काठियावाड़, आबू आदि पश्चिमी प्रदेशों के साथ पूर्व में बंगाल, बालुचर आदि में भी विचरण किया। सं. 1838 में आपने क्रियोद्धार किया। सं. 1873 में आपका स्वर्गवास बीकानेर में हुआ। आप अपने समय के अत्यन्त चमत्कारी, गीतार्थ, चिन्तनशील एवं धुरन्धर विद्वान् थे। आपने अनेक ग्रंथ लिखे। खरतरगच्छ संघ की साधु परम्परा के लिए आपने कई विशिष्ट नियम निर्धारित किये। संघ में आपकी 'वासक्षेप' ही आज मानी जाती है।

आपके पश्चात् **श्री धर्म विशालजी** (धर्मानन्दजी), **श्री राजसागर जी** तथा **श्री ऋद्धिसागरजी** हुए।

गणाधीश श्री सुखसागरजी :

गणाधीश श्री सुखसागर जी का जन्म सरसा में सं. 1876 में दुगड़ गोत्रीय श्री मनसुखलालजी के यहाँ हुआ। आपकी माता का नाम जेतीबाई था। बचपन में ही माता-पिता का वियोग हो जाने पर ये जयपुर में आकर बस गये। संवत् 1906 में आपने मुनि राजसागर जी के पास दीक्षा ग्रहण की। गहन शास्त्र अध्ययन कर संवत् 1918 में संघ के साधु जीवन में क्रियोद्धार किया।

उधर साध्वी रूपश्रीजी की शिष्याएँ–उद्योतश्रीजी एवं धर्मश्रीजी भी सम्वत् 1922 में फलौदी आयीं तथा संविग्न श्री सुखसागरजी को अपना गुरु मानकर उनकी अनुवर्तिनी बन गयीं। सं. 1924 में लक्ष्मीश्रीजी की दीक्षा हुयी। कहा जाता है एक बार आपने स्वप्न में देखा कि—'एक पल्लवित बगीचे में कुछ बछड़ों के साथ गायों का झुण्ड घूम रहा है।' तभी उन्होंने भविष्यवाणी की कि उनके समुदाय का विस्तार होगा किन्तु उसमें साधु कम और साध्वियाँ अधिक होंगी। और उनकी भविष्यवाणी सही निकली। वर्तमान में आपके नाम से संचालित समुदाय प्रसिद्धि के शिखर पर है।

संवत् 1942, माघ बदी 4 (23 जनवरी, 1886) को फलौदी में आपका स्वर्गवास हुआ।

गणाधीश श्री भगवानसागरजी :

आचार्य श्री सुखसागरजी के उपदेश से संवत् 1925 में आपने दीक्षा ग्रहण की तथा उनके दिवंगत होने पर आप गणाणीश बने। आपके कार्यकाल में 7 साधु और 41 साध्वियाँ हुयीं। संवत् 1967 में आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके पश्चात् **तपस्वी छगनसागरजी** हुए जिनका जन्म संवत् 1866 में फलौदी में हुआ। संवत् 1943 में आपने साध्वी-रत्नों के उपदेश से सपत्नीक

श्री भगवानसागरजी के पास दीक्षा ग्रहण की। आप महान् तपस्वी थे। संवत् 1966 में लोहावट में आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके स्वर्गवास के पश्चात् संघ ने श्री सुमतिसागरजी को गच्छ का भार सम्भालने का अनुरोध किया था, किन्तु उन्होंने **श्री त्रैलोक्यसागरजी** को यह भार सौंपने का आग्रह किया।

श्री त्रैलोक्यसागरजी ने सं. 1952 में दीक्षा ग्रहण की तथा सं. 1966 में गणाधिप बने। सं. 1974 में लोहावट में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री जिन हरिसागर सूरि जी आचार्य श्री भगवानसागरजी के भतीजे थे। उन्होंने श्री छगनसागरजी से कहा था कि इनको योग्य समय पर दीक्षा दे देना। तद्नुसार सं. 1957 में फलौदी में आपने दीक्षा ली। सं. 1974 में आपने समुदाय का नेतृत्व सम्भाला। आपने प्रतिष्ठा, उद्यापन, संघयात्रा, साहित्य उद्धार आदि अनेक श्लाघनीय कार्य किये। सं. 1982 में आपको आचार्य पद दिया गया तभी से आप जिन हरिसागर सूरि नाम से प्रसिद्ध हुए। सं. 2006, फलौदी पार्श्वनाथ तीर्थ में आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके पश्चात् गणनायक के रूप में **श्री जिनानन्द सागर सूरि** ने गणनायक पद को सुशोभित किया। आप अत्यन्त विद्वान् व प्रखर वक्ता थे। आपने ही प्रवर्तिनी श्री वल्लभश्रीजी, प्रव. श्री प्रमोदश्रीजी, प्रव श्री विचक्षणश्रीजी आदि को प्रवचन कुशलता प्रदान की थी। सं. 2017 में आपका पालीताणा में स्वर्गवास हुआ।

श्री जिन कवीन्द्रसागर सूरि ने 1976 में जयपुर में श्री हरिसागर सूरिजी से दीक्षा ग्रहण की। आप संस्कृत साहित्य के दिग्गज विद्वान् तो थे ही, प्रतिभा-सम्पन्न आशु कवि भी थे। आपकी आवाज बुलन्द व वक्तव्य शैली अनूठी थी। सं. 2017 में खरतरगच्छ संघ ने आपको आचार्य पद पर विभूषित कर श्री जिन-कवीन्द्रसागर सूरि नाम दिया किन्तु सं. 2017 में (एक वर्ष से भी कम) ही आप स्वर्ग सिधार गये।

महोपाध्याय श्री सुमतिसागर जी को आचार्य श्री कृपाचन्द्र सूरि जी ने सं. 1979 में महोपाध्याय पद से अलंकृत किया।

श्री जिनमणि सागर सूरि को आचार्य जिनकृपाचन्द्र सूरि जी द्वारा सम्वत् 1972 में आचार्य पद ग्रहण करने पर 'पण्डित' पद प्रदान किया था। आपने

खरतरगच्छ की मान्यताओं को सुदृढ़ आधार प्रदान किया था। आपने अनेक तात्विक पुस्तिकाएँ लिखीं। आपने ही सं. 1999 में श्री कल्याणमलजी गोलेच्छा को प्रतिबोध देकर उनकी पत्नी श्री सज्जनश्रीजी को दीक्षा की अनुमति दिलायी। आप प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी के दीक्षा गुरु थे।

श्री जिन कवीन्द्र सागर सूरि के स्वर्गवास (संवत् 2007) के पश्चात् समुदाय का भार गणी श्री हेमेन्द्र सागरजी के कंधों पर आया किन्तु अल्प समय में ही उनका आयुष्य पूरा हो गया। सन् 1982 में आचार्य पद महोत्सव हुआ और संघ ने एक साथ दो आचार्य बनाए – **श्री जिन उदयसागर सूरि** एवं **श्री जिन कान्तिसागर सूरि**। श्री जिनउदय सागर सूरि जी श्री सुखसागर जी महाराज के समुदाय का वर्तमान में नेतृत्व कर रहे हैं। आपने अनेक प्रतिष्ठाएँ, उपधान तप, तीर्थों के जीर्णोद्धार तथा साहित्य निर्माण के विशिष्ट कार्य करवाये हैं।

श्री जिन कान्तिसागर सूरि जी :

आप परम्परा के प्रखर एवं तेजस्वी आचार्य (सं. 1968 - 2042) हुए हैं जिन्होंने राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु आदि देश के लगभग सभी प्रदेशों का भ्रमण कर अपने पाण्डित्य की छाप छोड़ी और खरतरगच्छ की अभिवृद्धि की। आपने अनेक स्थानों पर प्रतिष्ठायें करवायीं, दादा बाड़ियों का निर्माण करवाया तथा अनेकों उपधान तप करवाये।

आपके शिष्यों में गणी श्री मणिप्रभसागर जी, श्री मनोज्ञ सागर जी, श्री मुक्तिप्रभ सागर जी, श्री सुयशप्रभ सागर जी, श्री महिमाप्रभ सागर जी, श्री ललित प्रभ सागर जी, श्री चन्द्र प्रभ सागर जी आदि विद्यमान हैं।

गणी श्री मणिप्रभसागरजी उच्चकोटि के विद्वान्, अत्यन्त व्यवहारपटु एवं कार्यदक्ष बणपति हैं और खरतरगच्छ की सेवा में निरन्तर संलग्न हैं। आपने अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न कराये हैं। प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी का अभिनन्दन समारोह आपकी सूझ बूझ के कारण ही इतना भव्य और प्रभावक बना था। अभी मोकलसर से छःरी पालित संघ आपकी निश्रा में ही दिनांक 26 जनवरी, 90 को निकल रहा है जो अपने आप में विशिष्ट एवं ऐतिहासिक आयोजन है।

श्री जिनकृपाचन्द्र सूरिजी म. का समुदाय :

नाकोड़ा तीर्थ के संस्थापक और प्रतिष्ठापक आचार्य कीर्तिरत्नसूरि जी के नाम से खरतरगच्छ की एक उपशाखा चली थी, श्री जिनकृपाचन्द्र सूरि मूलतः इसी

परम्परा में थे। सं. 1972 में आपको बड़े महोत्नव के साथ बम्बई में आचार्य पद पर अभिषिक्त किया गया। आप आगम साहित्य के धुरन्धर विद्वान् थे। सं. 1994 में आप स्वर्ग पधारे।

आपके पट्टधर क्रमशः श्री जिनजयसागर सूरि, उपाध्याय श्री सुखसागरजी व मुनि कान्तिसागरजी हुए।

श्री मोहनलालजी म. का समुदाय :

श्री मोहनलालजी महाराज का नाम तपागच्छ और खरतरगच्छ में परम सम्मान एवं श्रद्धा के साथ लिया जाता है। आप बड़े उदार, समदर्शी, सहिष्णु, तेजस्वी, शान्त स्वभावी एवं निर्मल चारित्र के धारक थे।

आपकी परम्परा में श्री जिनयश सूरि पहले आचार्य हुए। उनके पश्चात् श्री जिनऋद्धि सूरि, श्री जिनरत्न सूरि एवं गणिवर्य श्री बुद्धि मुनिजी हुए।

आपके शिष्यों में मुनि जयानन्दजी विद्यमान हैं। श्री कृपाचन्द्र सूरि जी महाराज की साध्वियाँ भी आपकी निश्रा में ही संयम पालन कर रही हैं।

साध्वी समुदाय का विकास :

क्रियोद्धारक संविग्न साधु परम्परा का प्रारम्भ 19 वीं शताब्दी से उपाध्याय श्री प्रीतिसागर गणी से माना गया है, किन्तु यह अनुष्ठान बिना साध्वी समुदाय के सम्पन्न हुआ होगा यह सम्भव नहीं लगता। यद्यपि इसका प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है, तथापि 19 वीं शताब्दी की पूज्या उद्योत श्री जी का नाम ही प्रथम क्रियोद्धारिका के रूप में प्राप्त होता है। वर्तमान में गणाधिपति श्री सुखसागर जी महाराज के समुदाय की साध्वी परम्परा भी पूज्या उद्योत श्री जी की ही शिष्या-परम्परा है। उनकी प्रमुख दो शिष्यायें थीं :

1. **श्री लक्ष्मी श्री जी,**
2. **श्री शिव श्री जी,**

शिष्याओं की संख्या में वृद्धि होने के कारण उद्योत श्री जी की परम्परा दो भागों में विभक्त हो गयी : एक लक्ष्मी श्री जी की परम्परा, दूसरी शिव श्री जी की परम्परा। प्रवर्तिनी श्री लक्ष्मी श्री जी के बाद क्रमशः प्रवर्तिनी श्री पुण्य श्री जी (सं. 1915 - 1976), प्रवर्तिनी श्री सुवर्ण श्रीजी (सं. 1927 - 1989), प्रवर्तिनी श्री ज्ञान श्री जी (सं. 1969 - सं. 2023), प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्री जी

(सं 1969 - सं. 2037) तथा आगम-ज्योति प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी ने इन पदों को सुशोभित किया ।

पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी के जीवन निर्माण में प्रवर्तिनी महोदया श्री पुण्य श्री जी, प्रवर्तिनी श्री ज्ञान श्री जी एवं पूज्या श्री उपयोग श्री जी का विशेष योगदान रहा था । इन महान् आत्माओं का संक्षिप्त जीवन परिचय देना भी यहाँ प्रासंगिक होगा :

प्रवर्तिनी श्री पुण्य श्री जी :

प्रवर्तिनी श्री पुण्य श्री जी गणनायक श्री सुखसागर जी महाराज के हाथों सं. 1931, वैशाख सुदी 11 को दीक्षा ग्रहण कर प्रवर्तिनी श्री लक्ष्मी श्री जी की शिष्या बनीं । तब से सम्वत् 1976 तक, 45 वर्ष पर्यंत स्थान-स्थान पर विचरण करती हुयीं, धर्मोपदेश देती हुयीं आपने शासन की सेवा की तथा खरतरगच्छ की वृद्धि में सतत् संलग्न रहीं । आपका जन्म जैसलमेर के निकट गिरासर नामक ग्राम में पारख गोत्रीय जोतमलजी के यहाँ वैशाख सुदी 6, संवत् 1915 को हुआ था । आपकी माता का नाम श्रीमती कुन्दनदेवी था । आपको बड़ी कठिनाई से दीक्षा की अनुमति मिली थी, किंतु सुदृढ़ वैराग्य भावना के कारण आप संयम ग्रहण करने में सफल रहीं ।

आपकी प्रेरणा से ही महातपस्वी श्री छगनसागरजी (संवत् 1943), महोपाध्याय श्री सुमति सागरजी (सं. 1944), आपके भाई श्री चुन्नीलालजी जो बाद में गणनायक त्रैलोक्यसागर जी बने (सं. 1953) तथा श्री पूर्णसागरजी एवं श्री क्षेमसागरजी (सं. 1963) भी आपकी प्रेरणा से ही साधुमार्ग की ओर आकर्षित होकर संयमी बने थे ।

आपकी आकृति भव्य थी, आँखों में तेज और वाणी में ओज एवं माधुर्य था । आपने आगम साहित्य का गहन अध्ययन किया था तथा आपकी व्याख्यान-शैली अत्यन्त रसोत्पादक थी । इसी कारण अनेक भव्य महिलाओं ने भी आपके पास दीक्षाएँ ग्रहण कीं । संवत् 1936 से लेकर सं. 1976 तक आपकी निश्रा में 116 दीक्षाएँ बड़े-बड़े महोत्सवों के साथ विभिन्न स्थानों पर हुयी थीं । इनमें 49 तो आपकी शिष्याएँ थीं, शेष आपकी प्रशिष्याएँ एवं उनकी शिष्याएँ बनीं । गणनायक श्री सुखसागर जी महाराज का स्वप्न कि—कुछ बछड़ों के साथ गायों का झुण्ड देखा, वह आपके समय में ही साकार हुआ था ।

प्रवर्तिनी महोदया ने अनेक ऐतिहासिक यात्राएँ सम्पन्न कीं तथा अनेकानेक तप-महोत्सव कराये। सं 1969 में रघुनाथपुर के जागीरदार कुलभानुचन्द्रसिंह एवं ठकुरानी को उपदेश देकर आपने मद्य-मांस का त्याग करवाया तथा ग्वालियर नरेश, राजमाता एवं महारानियों को भी पर्व-तिथियों पर मद्य-मांस का त्याग करवाया था।

संवत् 1972 से 1976 के चातुर्मास आपने जयपुर में किए तथा सं. 1977, फाल्गुन सुदी 10 को जयपुर में ही आपका स्वर्गवास हुआ।

प्रवर्तिनी श्री सुवर्णश्री जी :

प्रव. पुण्य श्री जी के सान्निध्य में सुवर्णश्री जी की दीक्षा बारहवें नम्बर पर हुयी थी। इनकी दीक्षा के पश्चात् साध्वियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुयी और सं. 1991 तक यह संख्या 140 को पार कर गयी। इनकी स्वयं की 18 शिष्याएँ थीं। सं. 1976 से आपने प्रवर्तिनी पद का भार कुशलता के साथ निर्वाह किया।

प्रवर्तिनी श्री ज्ञान श्री जी :

आपका जन्म सं. 1942, कार्तिक बदी 13 को फलौदी में हुआ था। आपके पिता श्री केवलचन्दजी गोलेच्छा थे। बचपन में ही आपका विवाह हो गया था। किन्तु पतिदेव का स्वर्गवास हो जाने से बाल-विधवा हो गयीं। साध्वी रत्नश्रीजी के सम्पर्क से आपके मन में वैराग्य भावना पनपी और संवत् 1955, पौष सुदी 7 को गणनायक श्री भगवानसागरजी के सान्निध्य में फलौदी में ही आपकी दीक्षा हुयी। आपको प्रव. पुण्य श्री जी की शिष्या घोषित किया गया।

प्रव. ज्ञान श्री जी ने 40 वर्षों तक मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ आदि में विचरण कर धर्म प्रचार किया तथा अनेक प्रमुख तीर्थों की यात्राएँ कीं। संवत् 1989 में आपको प्रवर्तिनी पद दिया गया, तब से आप साध्वी-वृन्द का सफलतापूर्वक नेतृत्व करती रहीं। आपने अनेक दीक्षाएँ प्रदान कीं जिनमें पूज्या सज्जनश्रीजी आदि 11 शिष्याएँ हुयीं। संवत् 2023, चैत्र बदी 10 को जयपुर में आपका स्वर्गवास हुआ।

पूज्या श्री उपयोग श्री जी :

पूज्या श्री ज्ञानश्रीजी के उपदेश से संवत् 1974 में दीक्षा ग्रहण कर साध्वी श्री उपयोगश्रीजी पू. पुण्य श्रीजी की शिष्या बनीं, किन्तु आपका सारा जीवन पूज्या

आगम-ज्योति

परमश्रद्धेया प्रवर्तिनी
श्री ज्ञान श्री जी म. सा.

पूज्या प्रवर्तिनी श्रीजी की एक
गरिमामयी औजस्वी मुखमुद्रा

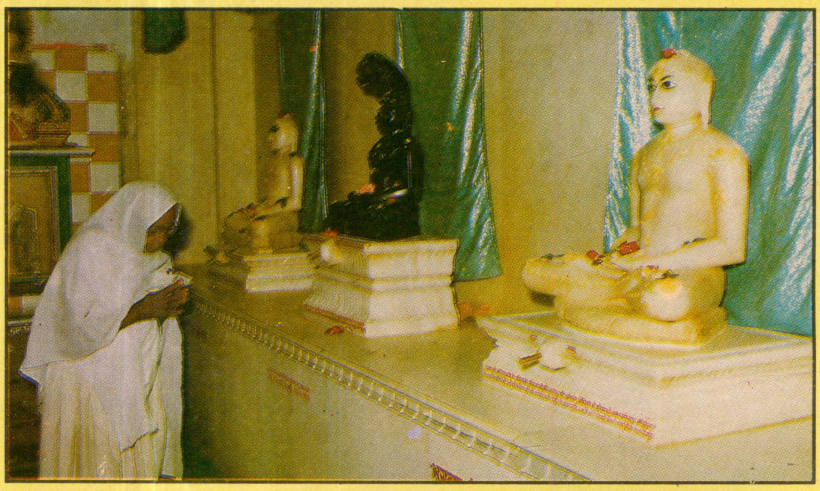

जिनेश्वर प्रभु को श्रद्धासह वन्दन करती हुयीं पू. प्रवर्तिनी श्रीजी

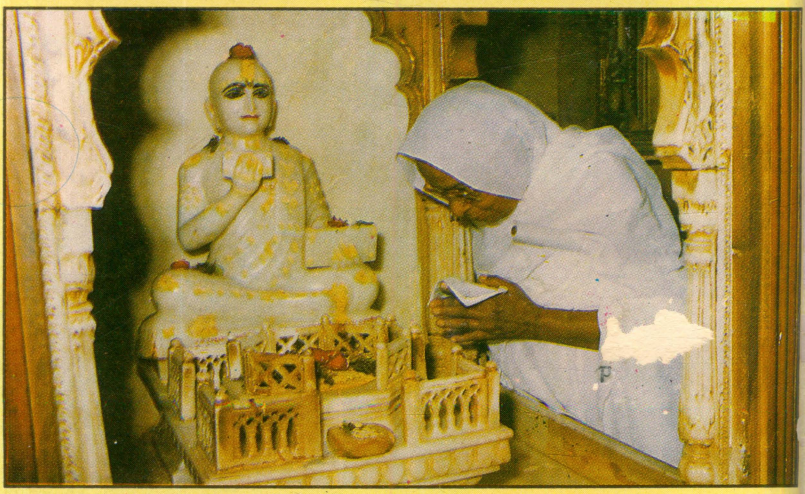

श्रद्धेय गुरुदेव को भावभिसिंचित नमन

अपनी शिक्षा-गुरु पूज्या श्री उपयोगश्री जी. म.सा. के साथ पू. प्रवर्तिनीश्रीजी

श्री ज्ञानश्रीजी की सेवा में ही लगा रहा। आप अत्यन्त उदारहृदया और सेवा-भाविनी थीं तथा प्रव. श्री सज्जनश्रीजी की आध्यात्मिक गुरु बनकर आपने ही उनको तत्त्वज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि की शिक्षाएँ प्रदान की थीं। संवत् 2016 में कार्तिक शुक्ला 3 के दिन आपका स्वर्गवास जयपुर में हुआ था।

प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्री जी :

जैन कोकिला प्रखर वक्त्री, विदुषी श्री विचक्षण श्री जी का जन्म संवत् 1969 में अमरावती में हुआ था। पींपाड़ में आपकी दीक्षा सं. 1981 में हुयी। आपकी बुद्धि बचपन से ही अत्यन्त प्रखर थी। प्रव. सुवर्ण श्रीजी के सतत सम्पर्क में आने से आप तथा आपकी माताजी दीक्षा लेने की इच्छुक हो गयीं। स. 1981 में दोनों की दीक्षाएँ हुयीं। तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि ने आपकी भाषण कला से मुग्ध होकर 'जैन कोकिला' से सम्बोधित किया था। सं. 2037 में आपने जयपुर में, 'तन में व्याधि - मन में समाधि' का आदर्श प्रस्तुत करते हुए शरीर का त्याग किया। अन्तिम समय में आपने पूज्या सज्जनश्रीजी को प्रवर्तिनी पद देने का निर्देश दिया तथा अपने साध्वी समुदाय का नेतृत्व अपनी प्रथम शिष्या अविचल श्री जी को सौंप दिया।

श्री [illegible]री जी महा. :

आ[illegible] प्रव. पुण्य श्री जी की शिष्या थीं। अत्यन्त मृदु स्वभावी, सरल व संयमनिष्ठ साध्वी थीं। आपने 80 वर्ष तक संयम पालन किया तथा शतायु होकर अभी दो वर्ष पूर्व ही स्वर्ग सिधारीं।

प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी :

पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी ने सं. 2037 से प्रवर्तिनी पद को सुशोभित किया। आपका जीवन काल सं. 1965 से सं. 2046 तक रहा। आपकी आज्ञा में निम्नांकित साध्वी-समुदाय रहे :

1. आर्या शशिप्रभा श्री जी आदि 12 ठाणा, आपकी शिष्याएँ।
2. स्व. श्री चम्पा श्री जी म. की शिष्याएँ,
   आर्या जितेन्द्र श्री जी आदि 12 ठाणा।
3. विचक्षण मण्डल की 51 साध्वियाँ,
4. आर्या रति श्री जी, 7 ठाणा
5. स्व. पवित्र श्री जी म. की शिष्याओं में दिव्य प्रभा श्री जी आदि 8 ठाणा।

प्रवर्तिनी श्री जी के शिष्या परिवार की इस समय कुल 15 शिष्यायें हैं :—

क्रमांक	नाम	दीक्षा स्थल	संवत
1.	आर्या शशि प्रभा श्री जी	ब्यावर	2014
2.	आर्या प्रियदर्शना श्री जी	जयपुर	2023
3.	आर्या जयश्री जी	जयपुर	2026
4.	आर्या दिव्यदर्शना श्री जी	खडगपुर	2030
5.	आर्या तत्त्वदर्शना श्री जी	खडगपुर	2030
6.	आर्या सम्यग् दर्शना श्री जी	खडगपुर	2030
7.	आर्या शुभ दर्शना श्री जी	नाकोड़ाजी	2037
8.	आर्या मुदित प्रज्ञा श्री जी	अजमेर	2038
9.	आर्या शीलगुणा श्री जी	गढ़ सिवाना	2040
10.	आर्या सौम्यगुणा श्री जी	गढ़ सिवाना	2040
11.	आर्या कनक प्रभा श्री जी	जीवाणा	2042
12.	आर्या श्रुत दर्शना श्री जी	जीवाणा	2045
13.	आर्या संयम ज्योति श्री जी	जयपुर	2046
14.	आर्या संयम गुणा श्री जी	जयपुर	2046
15.	आर्या संयम प्रज्ञा श्री जी	गढ़ सिवाना	2047

एक गौरवमयी उपलब्धि :

यह सही है कि खरतरगच्छ के संस्थापक पूर्वाचार्यों ने यदि चैत्यवास एव शिथिलाचार पर यथासमय चोट नहीं की होती तो जैनधर्म भी बौद्ध धर्म की भांति भारत की धरती से लुप्त हो जाता। खरतरगच्छ संघ में अनेक बड़े बड़े आचार्य, बड़े बड़े विद्यानिधि उपाध्याय, बड़े-बड़े पंडित-मुनि और बड़े-बड़े यांत्रिक, तांत्रिक, ज्योतिर्विद, वैद्यक आदि कर्मठ यति-जन हुए जिन्होंने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनके साथ-साथ खरतरगच्छ अनुयायियों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं देशीय भाषाओं के साहित्य को समृद्ध करने में भी असाधारण उद्यम किया है, जिसके फलस्वरूप आज हमें भाषा, साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, मंत्र आदि विविध विषयों का निरूपण करने वाली छोटी बड़ी हजारों कृतियाँ जैन ग्रन्थ-भंडारों में उपलब्ध हो रही हैं। संघ के इन विद्वानों द्वारा की गयी यह साधना न केवल जैनधर्म की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, अपितु समूची भारतीय संस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

खरतरगच्छ में योग व अध्यात्म की अनूठी परम्परा रही है। योगीराज आनन्द घन चिदानन्द जी, श्रीमद् देवचन्द्र जी, मस्तयोगी ज्ञानसागर जी, अध्यात्म योगी सहजानन्द घन आदि इसी परम्परा में हुए थे। जैन तीर्थों में शत्रुंजय, गिरनार, राणकपुर, कापरड़ा, नाकोड़ा और उत्तर भारत में दिल्ली से लेकर गौहाटी तक हजारों कल्याणक तीर्थ एवं मन्दिर संघ के आचार्यों और मुनियों की देन हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि चौबीसों तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों को तीर्थरूप देने में इसी गच्छ के आचार्यों एवं मुनियों की सूझ-बूझ प्रमुख रही है।

'युग प्रधान' शब्द को सार्थक करने वाले चारों दादागुरु इसी गच्छ परम्परा के हैं, जिन्होंने समाज तथा जैन शासन को उत्कृष्टता प्रदान की तथा जिनके नाम की माला समस्त जैन व अनेक जैनेतर प्रतिदिन जपते हैं। समस्त भारत में जहाँ भी श्वेताम्बर जैनों के घर हैं वहाँ-वहाँ जैन दादाबाड़ियाँ बनी हुयी हैं, जो आज करोड़ों-अरबों रुपयों की जैन सम्पत्ति है।

इस गौरवमयी परम्परा में संघ के वर्तमान साधु-साध्वियों की संख्या यद्यपि अल्प है, फिर भी वे अपने त्याग, तपस्या एवं विद्वत्ता से समाज में अपना विशिष्ट प्रभाव जमाये हुए हैं। इसी खरतरगच्छ की गौरवमयी परम्परा में आगमज्ञा विदुषीवर्या आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी ने अपने उज्ज्वल कृतित्व एवं व्यक्तित्व से संघ की प्रभावना को और अधिक तेजस्विता प्रदान की है। सुधी पाठक आगामी चरणों में उसी महान् ज्योति-पुंज के जीवन-सूत्रों का परिचय प्राप्त करेंगे।

पूज्या श्री से गौरवान्वित लूनिया वंश

जीव मात्र को धारण कर उसका पोषण एवं संरक्षण करने वाली इस पृथ्वी का एक सार्थक नाम है - धरा। किन्तु यह धरा मात्र धरा ही नहीं है, वसुन्धरा भी है। जब-जब इसने किसी आत्मबली, तेजस्वी, यशस्वी, परोपकारपरायण पुण्यात्मा को जन्म दिया, धारण किया, तब-तब अपने धन्य नाम—वसुन्धरा (महा मूल्यवान मणि - रत्नों को धारण करने वाली) को इसने सार्थक किया है।

महान् आत्मा स्व-अर्जित गौरव की स्वाभिषिक्त मूर्ति होती है। उसे किसी अन्य के गौरव से अभिषिक्त करने की अपेक्षा नहीं होती। तथापि, जब वही मूर्ति श्रद्धाभिषिक्त होती है तो लोग उसके मूल आधार को भी श्रद्धापूर्वक सम्मानित करते हैं। जिस वृक्ष पर सुन्दर-सुवासित पुष्प लगता है उस वृक्ष के दर्शन मात्र से आँखों को तृप्ति एवं हृदय को शीतलता मिलती है। जिस खान में रत्न पैदा होता है उस खान का भी गौरव बढ़ता है। महान् आत्मा जिस कुल में जन्म लेती है उस कुल-वंश के यशोगीत युग-युग तक गाये जाते हैं। उन माता-पिता को लोग श्रद्धा से नमन करते हैं जिन्होंने उस पुण्यात्मा पुत्र-रत्न या पुत्री-रत्न को जन्म दिया था। भगवान् महावीर की वन्दना के साथ ही माता त्रिशला और राजा सिद्धार्थ को भी नमन किया जाता है, ज्ञात वंश का गौरव भी गाया जाता है। सत्य है, महान् आत्माएँ अपने जन्म से अपने कुल, वंश, परिवार, देश-प्रदेश सभी को धन्य करते हैं।

आगम ज्योति आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी ने लूनिया वंश में जन्म लेकर इस कुल को अप्रतिम गौरव प्रदान किया था। लूनिया वंश का इतिहास अत्यन्त घटनाप्रधान किन्तु उज्ज्वल और यशस्वी रहा है। यहाँ उस वंश का संक्षिप्त परिचय एवं कुल के गौरव-रत्नों के जीवन की झलक प्रस्तुत करना सार्थक होगा क्योंकि पूज्य श्री के जीवन को मूल संस्कार उसी कुल एवं उसके गौरव-रत्नों से प्राप्त हुए थे।

'लूनिया' गोत्र की प्राप्ति :

धन का बिरवा परिश्रम का जल चढ़ाने पर लगता है। यश एवं कीर्ति का क्षेत्र भी पारस्परिक सम्पर्क, दानशीलता, सेवा, सहयोग, मृदु व्यवहार एवं मित्रभाव का पुट देकर जिस गति से चाहें बढ़ाया जा सकता है, किन्तु धर्म की बेल यूँ सहज

ही फलीभूत नहीं होती । पूर्व संस्कारों का पवित्र जल इसमें सींचना होता है । धर्मनिष्ठ पूर्वजों की आस्था का पोषण इस बेल को देना पड़ता है । दैनन्दिन क्रिया-क्रम, नियमित उपासना, तप और साधना के साथ-साथ लोक-व्यवहार, वृत्ति-व्यवहार, घर-परिवार सभी क्षेत्रों में धर्मपरायणता का निर्वाह करना होता है । अनेकानेक भौतिक एवं मनोकायिक भूचालों से धर्म-बेल की रक्षा करनी होती है, तभी यह अमृत तुल्य फल प्रदान करती है, तभी परिवार में धार्मिक संस्कारों से युक्त सन्तानों का प्रादुर्भाव होता है ।

ऐसा ही सुयोग मिला था धर्मनिष्ठ तत्त्वज्ञ श्रावक सेठ श्री गुलाबचन्दजी लूनिया को जिनके पूर्वज 11वीं शताब्दी में मुलतान राज्य में व्यापार करते थे । उनमें सबसे ख्यातनामा थे श्री धींगरमल शाह (मूंदड़ा) जो कि मुलतान राज्य में प्रधानमंत्री के सम्मानित पद पर आसीन थे । एक बार उनके एक पुत्र लूणाशाह को सर्प ने डस लिया । दैवयोग से उस नगर में जैन आचार्य श्री गुरुजिनदत्त सूरि का आगमन हुआ । आप बड़े दादा गुरु के नाम से विख्यात थे । उन्होंने अपने मंत्र बल से लूणाजी शाह का सर्प विष उतार कर उन्हें स्वस्थ कर दिया । श्री धींगरमलजी इस चमत्कार से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने जैन धर्म स्वीकार कर लिया । सन् 1192 में आचार्य महाराज ने उनके पुत्र लूणाशाह के नाम पर ओसवाल जाति में 'लूणिया' गोत्र का शुभारम्भ किया ।

श्री धींगरमलजी शाह का परिवार मुलतान में यवनों का शासन हो जाने तथा अकाल की स्थिति बन जाने के कारण मुलतान छोड़कर जैसलमेर में आ बसा । जहाँ यह परिवार 17वीं शताब्दी तक रहा । किन्तु; जैसलमेर में जब व्यापार की अधिक प्रगति नहीं हुई तो शाहजी दिल्ली में आकर बस गये । दिल्ली से लूणिया परिवार जयपुर आ गया तथा उसका व्यापार दिल्ली व जयपुर दोनों स्थानों पर चलता रहा । इसी कुल के श्री छबीलचन्दजी के सुपुत्र का नाम श्री गोरूमलजी था । उनके दो पुत्र थे—एक श्री चौथमलजी तथा दूसरे श्री गणेशमलजी । यह वह समय था जब महाराज जयसिंह ने जयपुर नगर बसाया था और अन्य प्रान्तों के विद्वानों, व्यवसायियों, कलाकारों तथा धार्मिक महापुरुषों को जयपुर में आकर बसने का आह्वान किया गया था । श्री गोरूमलजी को भी महाराजा जयसिंह द्वारा आमंत्रण मिला और वे भी जयपुर आकर व्यापार करने लगे । उन्होंने जवाहरात के व्यवसाय में अच्छी ख्याति अर्जित की तथा 'गोरूमल चौथमल' नाम से एक फर्म की स्थापना की। उसी क्रम में जयपुर के कुन्दीगर के भैरूंजी के रास्ते में उन्होंने एक हवेली बनवाई, जहाँ आज लूणिया परिवार रहता है ।

इसी पीढ़ी में श्री गणेशमलजी के द्वितीय पुत्र श्री गुलाबचन्दजी थे । श्रीगणेशमलजी की वंश बेल श्री गुलाबचन्दजी से ही फली-फूली । इस वंश ने धन,

सम्पन्नता, धर्मनिष्ठा, सामाजिक प्रतिष्ठा, लोक-व्यवहार, विदेशों में व्यापारिक सफलता एवं ख्याति के अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इसी वंश-वृक्ष की एक उज्ज्वल मणि थीं—आगमज्ञा, विदुषीवर्या आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी जो अध्यात्म-पिपासु भक्तजनों के हृदयों को अपनी ज्ञानसुधा से निरन्तर आप्लावित करने वाले श्री गुलाबचन्दजी की सुपुत्री थीं।

गुलाब-से सुरभित श्री गुलाबचन्द जी

श्री गुलाबचन्द जी का जन्म संवत् 1934 में जयपुर में हुआ। नीतिनिष्ठा और धर्माचरण उनको विरासत में प्राप्त हुए थे। पिता श्री गणेशमल जी की ईमानदारी और धर्मनिष्ठा का प्रभाव गुलाबचन्द जी के संस्कारों में भी आया। धार्मिक आचरण एवं साधु-सन्तों की सेवा को उनके दादाजी श्री गोरूमल जी के समय में भी परिवार का मुख्य कर्तव्य माना जाता था। सं. 1885 में तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जयाचार्य ने अपना चातुर्मास जयपुर में किया था। उस समय 52 व्यक्तियों ने तेरापंथ की गुरु धारणा ग्रहण की थी। श्री गोरूमल जी उन्हीं में से एक थे। धर्म की इस अजस्त्र धारा में ही पल्लवित-पुष्पित हुई थी, श्री गुलाबचन्द जी की मानसवल्लरी। कल्पना-शक्ति और भावनामय उड़ान उनमें ईश्वरप्रदत्त थी। बाल्यकाल से ही वे साधु-साध्वियों की सेवा में अधिक से अधिक समय दिया करते थे। धर्मचर्चा में मन खूब रमता था। सुन्दर-सरस और तात्त्विक ढालें तो वे 17 वर्ष की आयु में ही लिखने लगे थे।

वे बचपन से ही मृदुभाषी थे। भावुक होने के कारण उन्होंने कभी किसी को कटुवाणी से कष्ट नहीं पहुँचाया। बाल्यकाल ही से सबके सहयोगी एवं सेवा-भावी थे। सांसारिक कार्यों में उनका कम ही मन लगता था। अनेक आध्यात्मिक गुणों से युक्त बालक गुलाबचन्द जी का मन प्रायः दीक्षा के लिए लालायित रहने लगा। उनकी इस महती आकांक्षा को परिजनों ने भाँप लिया और हर सम्भव उपाय से वे उनका मानस बदलने का प्रयत्न करने लगे। अतः 14 वर्ष की आयु में ही उनका विवाह यह विचारकर कर दिया गया कि गृहस्थी का भार वहन करने से दीक्षा लेने का भाव स्वतः ही तिरोहित हो जायेगा। श्री गुलाबचन्द जी दीक्षा तो नहीं ले पाये, किन्तु गृहस्थी में रहकर भी उन्होंने अग्रणी और पूर्ण धर्माचरणयुक्त श्रेष्ठ श्रावक के रूप में ख्याति अर्जित की।

श्रावक सेठ श्री गुलाबचन्द जी का विवाह भोपाल रियासत के खंजाची श्री चुन्नीलाल जी कोठ्यारी एवं श्रीमती जतनकुमारी जी की सुपुत्री महताबकुमारी के साथ हुआ था। श्रीमती महताबकुमारी गृहकार्य में दक्ष, सुशील, व्रत-नियमों में

आस्थाशील सदाचारिणी महिला थीं। वे अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। ऐसी सहधर्मिणी मिलने से सोने में सुहागा वाली कहावत चरितार्थ हो गई। युवावस्था में ही पति-पत्नी ने तेरापंथ के अष्टम आचार्य श्री कालूगणी से बारह व्रत धारण कर लिये थे। धर्माचरण, सामायिक और व्रत-पचखाण के साथ दोनों ने गार्हस्थ्य जीवन की यात्रा आरम्भ की।

सांसारिक उत्तरदायित्वों को निभाते हुए भी वे उससे मोहग्रस्त नहीं हुए। धन-वैभव अर्जित किया किन्तु संसार में रहकर भी कमल की भांति निर्लिप्त रहे। उनके दो पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हुयीं। सबसे बड़ी पुत्री प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी का जन्म 16 मई, 1908 में हुआ। सन् 1915 में बड़े पुत्र श्री केशरीचन्दजी का जन्म हुआ, जिनके चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं। सन् 1917 में दूसरी पुत्री कस्तूरीबाई का जन्म हुआ तथा 1922 में दूसरे पुत्र पूनमचन्द जी का जन्म हुआ, जिनके चार पुत्रियाँ और एक पुत्र हैं।

विस्तृत व्यवसाय :

सेठ श्री गुलाबचन्द जी ने जयपुर के जौहरियों में अपनी सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी से शीघ्र ही विशिष्ट स्थान बना लिया था। भारत के अनेक जौहरीगण आपके आढ़तिये थे। वे समय-समय पर जयपुर आते और श्री गुलाबचन्द के घर पर ही ठहरते थे। श्री गुलाब चन्द जी के द्वारा किए हुए सौदों में आढ़तियों को भी अच्छी आय होती थी। आपके व्यापार में क्रमशः अच्छी वृद्धि हुई। धर्म का प्रभाव धनवृद्धि पर भी पड़ा। चतुर्दिक प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। रियासत के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित अधिकारियों, जैसे—नवाब सहाब, हाथीबाबू जी, मोतीलाल जी अटल, रूपसिंह जी राठौड, अमरसिंह जी राठौड, महाराजा माधोसिंहजी के साले साहब, खवास बालाबक्ष जी, अंग्रेज रेजीडेन्ट आदि से अच्छा सम्पर्क था। जयपुर के प्रतिष्ठित जौहरियों से आपके पारिवारिक सम्बन्ध थे तथा उनके यहाँ सपरिवार आना-जाना होता था।

इन सभी महत्वपूर्ण सम्पर्कों, सम्बन्धों और व्यापारिक उपलब्धियों का एकमात्र कारण सेठ साहब की सत्यनिष्ठा ही थी। लाभांश से कई गुना अधिक उनका ध्यान सम्बन्धों और सम्पर्कों की शुद्धता व निरन्तरता बनाये रखने पर रहता था। यही कारण था कि अच्छे-अच्छे व्यापारी, ओहदेदार, ठिकानेदार, अंग्रेज अफसर, राजदरबारी आदि उनके आजीवन मित्र बने रहे। आपकी व्यापारिक सहिष्णुता भी विशिष्ट थी। इतने बृहद् पैमाने पर व्यापार होते हुए भी सेठ साहब ने कभी कचहरी का द्वार नहीं खटखटाया। कोर्ट-कचहरी, मुकदमे-

बाजी आदि झँझटों से आप आजीवन दूर रहे। गवाही (साक्षी) देने जाने की आपने सौगन्ध ले रखी थी। इस व्रत को आपने आजीवन निभाया।

बहुआयामी किन्तु धर्मनिष्ठ जीवन :

व्यापारिक, सामाजिक एवं पारिवारिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में कर्तव्यनिष्ठ रहते हुए भी सेठ श्री गुलाबचन्दजी ने अपने हृदय को धर्म की धुरी पर ही केन्द्रित रखा। कहते हैं, धर्मनिष्ठ गृहस्थी तपोनिष्ठ साधु से भी श्रेष्ठतर होता है, इसलिए श्री गुलाबचन्दजी का मान चारों ही सम्प्रदायों के आचार्य करते थे। सेठजी को सम्प्रदायवाद ने छुआ तक नहीं था। उनकी दृष्टि व्यापक थी।

नगर में किसी भी सम्प्रदाय के आचार्य पधारे हों, सेठ साहब उनकी सेवा में नियमित रूप से जाते थे। वे केवल औपचारिक श्रावक नहीं थे, अपितु एक महान् तत्त्व ज्ञानी थे। उपवास, बेला, तेला आदि की तपस्या भी करते रहते थे। जयपुर के एक प्रसिद्ध पंतजी महाराज का स्वर्गवास होने पर उनके सम्पूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों का भण्डार आपने खरीद लिया तथा उन ग्रन्थों का वर्षों तक अनुशीलन किया। आगम शास्त्रों का उनको गहरा ज्ञान था। ज्योतिष विद्या के भी वे अच्छे जानकार थे। आचार्यों से उनकी तत्त्व-चर्चा निरन्तर चलती रहती थी। इसलिए व्याख्यानों व प्रवचनों में आचार्यवर्य भी उनकी "तहत्ति" की निरन्तर अपेक्षा रखते थे। सामायिक व प्रतिक्रमण उनकी दिनचर्या के नियमित क्रिया-कलाप थे। उन्होंने युवावस्था में अपनी धर्मपत्नी के साथ 12 व्रतों की पालना प्रारम्भ कर दी थी। विदेश यात्रा, एलौपैथी औषधि, अखाद्य-खाद्य, मुकदमेबाजी आदि नहीं करने की उन्होंने शपथ ले रखी थी। इन सभी नियमों का पालन उन्होंने आजीवन किया था।

तेरापंथ धर्मसंघ की पाट-परम्परा के पाँचवें आचार्य श्री मघवागणी, छठे आचार्य श्री माणकगणी, सातवें आचार्य श्री डालगणी, आठवें आचार्य श्री कालूगणी एवं वर्तमान आचार्य श्री तुलसीगणी की उन्होंने दत्तचित्त होकर सेवा की। इन पाँचों आचार्यों की निकट सेवा का अवसर सेठ साहब को अनेक बार मिला। उन्होंने गण और गणी की सेवा में सदैव तत्परता दिखलाई। यह उल्लेखनीय है कि जर्मन दार्शनिक हर्मन जेकोबी सर्वप्रथम उनके सम्पर्क में आए और उन्होंने उनको जैनदर्शन, जैन आचार, आचार्य भिक्षु के तत्त्वदर्शन आदि के विषय में विस्तार से बताया। इस प्रकार जर्मनी में जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

भावमर्मज्ञ, भक्ति-रसज्ञ, संगीतज्ञ, कवि हृदय :

रात्रि जागरण के आयोजनों में यदि सेठ श्री गुलाबचन्द जी का भक्ति संगीत हो तो मंदिरों में आपकी ढालें और चौमासे की विनतियाँ सुनने के लिए हजारों की भीड़ लग जाती थी। वे एक सुमधुर गायक थे तो गीतिकाओं और ढालों के सिद्ध-हस्त रचयिता भी थे। तीन सौ से अधिक भजन-ढालें उन्होंने स्वय लिखीं, जिनमें भक्तिरस, तत्त्वज्ञान और धार्मिक भावनाओं का त्रिवेणी संगम देखने को मिलता है। कई देशी राग-रागनियों का उन्हें अच्छा ज्ञान था। लोकप्रिय राग-रागनियों के आधार पर उन्होंने कई भजनों की रचना की। आज भी सेठ साहब के समय के लोग, मित्रजन, श्रावक उनके भजनों को गाते हैं और इस भक्त हृदय संगीतज्ञ का स्मरण कर आत्म-विभोर हो उठते हैं। उनके भजनों का संचय (कैसेट) भी तैयार किया गया है, जिसे सुनकर हर व्यक्ति स्वयं अनुभव कर लेता है कि सेठ श्री गुलाबचन्दजी वस्तुतः ऐसे महकते हुए गुलाब थे जिनमें भक्ति-संगीत और काव्य-मर्मज्ञता की सुरभि पूर्णतः व्याप्त थी। निःसंदेह, इस सौरभ ने लूनिया परिवार, सम्पूर्ण जैन समाज और उनके स्वयं के जीवन को एक समुज्ज्वल धर्मभावना से आवेष्टित बनाये रखा था और वही सौरभ श्री सज्जनश्रीजी म.सा. के माध्यम से उसी गरिमा के साथ दिग्-दिगन्त में व्याप्त हुआ।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ ने श्री गुलाबजाद जी लूनिया के विषय में कहा है कि "श्री गुलाबचन्द जी प्रथम जैन श्रावक थे जिन्होंने भक्ति-भाव पूर्ण ढालें, गीतकाएं, स्वतन आदि की रचनाएं कीं और भक्ति-भाव से विभोर हो उनको स्वयं गाया भी। श्री गुलाबचन्द जी लूनिया व श्री सुजानमल जी खारेड़ की गायन युगल जोड़ी सम्पूर्ण जैन समाज में प्रसिद्ध थी।

ग्रन्थ प्रकाशन एवं धर्मभावना :

धार्मिक समारोह, आध्यात्मिक जागरण एवं तत्त्व-चर्चाओं में भाग लेने के साथ-साथ सेठ श्री गुलाबचन्द जी ने अनेक स्वरचित व अन्य ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया। उनके द्वारा रचित-प्रकाशित अनेक पुस्तकें उस समय जैन तत्त्व-दर्शन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मानी जाती थीं। अनेक श्रावक-श्राविकाओं और साधु-साध्वियों ने इन ग्रन्थों से जैन तत्त्वों की जानकारी प्राप्त की। आज भी इन ग्रन्थों को जैन-तत्त्व-दर्शन के प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। उनके द्वारा लिखित कुछ ग्रन्थ हैं :— 1. भिक्षु यश रसायन, 2. नव पदार्थ निर्णय, 3. श्रावक धर्म विचार, 4. शिशु हित शिक्षा, 5. श्रावक आराधना, 6. सुगणावली, 7. प्रश्नोत्तर तत्त्वलोक। श्री लूनियाजी के ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में सबसे अधिक सहयोग मिला था उनके अनन्य मित्र, सहयोगी एवं सहधर्मी गंगाशहर निवासी श्री हीरालाल जी आंचलिया का। श्री आंचलिया जी भी लूनिया जी की तरह जैन शासन के भक्त-श्रावक रहे हैं।

श्री गुलाबचन्द जी का स्वच्छ-रुचि, सादे परिधानयुक्त, सरल व आध्यात्मिक हृदय वाला अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व था। वे भावपूर्ण, कला-मर्मज्ञ, उदार हृदय, किन्तु उत्तरदायित्व पूर्ण गृहस्थ श्रावक, कुशल किन्तु स्वार्थ रहित व्यवसायी थे। अपने पीछे दो पुत्र, दो पुत्रियाँ तथा यश, मान, कीर्ति, धर्म-प्रभावना, वैभव, प्रतिष्ठा और अनेक स्मरणीय एवं अनुकरणीय कृतियाँ छोड़कर उनकी दिव्य आत्मा वि. सं. 1996 के माघ शुक्ला 2 की रात्रि को 8 बजे स्वर्गलोक प्रयाण कर गई। आज भी उनके भजन-गीत, ढालें-स्तवन और अनेक ग्रन्थ उनकी स्मृति को अमर बनाये हुए हैं। आज भी वे अपनी सम्पूर्ण जीवंतता के साथ जीवित हैं।

आदर्शमाता श्रीमती महताबबाई :

दृढ़धर्मी गौरवपुरुष सेठ श्री गुलाबचन्द जी लूनिया की धर्मपत्नी श्रीमती महताबबाई पति के विचारों की अनुगामिनी, आदर्श पत्नी एवं सत्-संस्कारों की शिक्षा देने वाली आदर्श माता और वात्सल्य की खान थीं। उनके पिताश्री का नाम श्री चुन्नीलाल जी कोठारी था जो कि तत्कालीन भोपाल रियासत के खजांची थे। धर्मनिष्ठा और धार्मिक संस्कारों का वरदान उनको अपने पिताश्री से ही मिला था।

श्रीमान् चुन्नीलाल जी के पूर्वज राजस्थान के बोरावड़ ग्राम में रहते थे। वे अपने बड़े भाई के साथ व्यवसाय के लिए भोपाल चले गये थे। वहाँ उन्होंने जवाहरात का कार्य प्रारम्भ किया। उनकी ईमानदारी, व्यवहार कुशलता व्यापारिक प्रामाणिकता और स्पष्टवादिता से भोपाल की बेगम साहिबा अत्यन्त प्रभावित हुईं और उनको अपने राज्यकोष का खजांची बना दिया।

धर्मनिष्ठ गृहिणी :

श्रीमती महताबबाई सेठ श्री चुन्नीलाल जी की दूसरी संतान थीं। विवाह के समय उनकी उम्र मात्र ग्यारह वर्ष थी। श्री गुलाबचन्द जी और उनका जीवन धार्मिक संस्कारों एवं सात्विक विचारों से ओतःप्रोत था। विवाह के तुरन्त बाद ही श्रावक के बारह व्रतों की कठोर अनुपालना उनके संयमित जीवन की साक्षी है। यह दोनों का मणी-कांचन सु-संयोग था जो परिवार और समाज में धर्म और परमार्थ की आभा फैलाता रहा।

नवकार मंत्र की एक माला तथा एक सामायिक प्रतिदिन करने का नियम उनके बाल्य-काल से ही था। इस नियम का उन्होंने आजीवन पालन किया। पति के साथ बारह व्रतों की साधना के अलावा उन्होंने 15 वर्ष की आयु से ही चतुर्दशी का

व्रत करना प्रारम्भ कर दिया था। इस व्रत का उन्होंने 75 वर्ष की अवस्था तक अनवरत पालन किया। बीमारी हो, प्रसूति हो या प्रवास हो, उन्होंने इस व्रत को कभी नहीं टूटने दिया। कालान्तर में उन्होंने एक सामायिक के स्थान पर तीन सामायिक प्रतिदिन करने का नियम ले लिया और उसे आजीवन निभाया।

उनको विभिन्न प्रकार के द्रव्यानुयोग के स्तोक (थोकड़े) याद थे। साधु-साध्वियों के नियमित दर्शन, उनकी सेवा, पदयात्रा, व्याख्यान आदि में गहरी रुचि थी। धर्म-चर्चा ही उनके जीवन का पाथेय था। माता-पिता के धार्मिक संस्कारों की छाप ही संतानों पर भी पड़ी थी। प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म. सा. के उज्ज्वल जीवन को देखकर हम सहज ही जान सकते हैं कि माता-पिता कितने महान् संस्कारों से भावित थे।

आदर्श माँ :

श्रीमती महताबबाई अनावश्यक एवं निरर्थक बातों में अपना एक क्षण भी नष्ट नहीं किया करती थीं। वे अत्यन्त मृदुभाषिणी एवं शालीन स्वभाव की थीं। बच्चों को मारना तो दूर, वे उन्हें कभी जोर से डाँटती तक नहीं थीं। सांसारिक व्यक्ति के सामने परस्पर व्यवहार निभाने की अनेक उलझनें होती हैं, किन्तु वे अत्यन्त व्यावहारिक थीं तथा संयम और न्यायपूर्ण ढंग से चला करती थीं। वे सेठ श्री गुलाबचन्द जी की केवल धर्मपत्नी ही नहीं थीं, अपितु धर्मयुक्त परामर्शदात्री भी थीं। अनेक अवसरों पर उन्होंने अपने पति को न्यायसंगत एवं नीतिसम्मत परामर्श देकर अपनी योग्यता का परिचय दिया था। प्रतिकूल परिस्थिति में भी उनका सम्यक् भाव अडिग रहता था।

अपने सबसे छोटे पुत्र पूनमचन्द जी के आकस्मिक निधन पर भी उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया था। उनका चिन्तन था कि संसार नाशवान है, जिसने जन्म लिया है वह देर-सवेर अवश्य जायेगा, और इसी चिन्तन के सहारे उन्होंने पुत्र के वियोग को मन पर हावी नहीं होने दिया। निर्लिप्त बनकर यथावत् अपने नियम-संयम का पालन करती रहीं। लगभग इसी प्रकार की अनित्य भावना का परिचय उस समय दिया जब उनके पतिदेव सेठ श्री गुलाबचन्द जी का अन्तिम समय निकट था। उनको मरणासन्न जानकर भी उन्होंने धैर्य खोकर रोना-धोना आदि नहीं किया, अपितु पतिदेव को धर्म-चर्चा का श्रवण करवाया और नमस्कार महामन्त्र तथा चार शरणों का धार्मिक संबल प्रदान करती रहीं।

गुरुवर्या प्रवर्तिनी आर्यारत्न सज्जन श्री जी म. सा. की पूजनीया माताजी का स्मरण इस अवसर पर अत्यन्त आवश्यक है। हमें जिस महान् विभूति के दर्शन

सुलभ हुए थे वह उस महान् नारीरत्न की ही सुपुत्री थीं जिसने अपने जीवन के 97 वर्ष पवित्रता एवं धार्मिक भावना से ओत-प्रोत रहकर लूनिया परिवार को शाश्वत गौरव प्रदान किया।

सहोदर बन्धु :

श्री केशरीचन्द जी लूनिया एवं श्री पूनमचन्द जी लूनिया पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी के संसार पक्षीय सहोदर थे। प्रवर्तिनी श्री जी को जहाँ माता-पिता के आदर्श संस्कार मिले थे, वहीं अपने भाईयों का स्नेह-सहयोग भी उन्हें प्राप्त हुआ था। शुभ संस्कारों की अजस्र धारा ने सभी को कहाँ तक आप्लावित किया यह हम इन सहोदरों के संक्षिप्त जीवन-वृत्त से सहज ही जान सकते हैं।

स्व. श्री केशरीचन्द जी लूनिया : इनका जन्म सन् 1915 में हुआ। अपने पिता सेठ श्री गुलाबचन्द जी के साथ 14 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने जवाहरात के व्यवसाय में रुचि लेना शुरू कर दिया था। वे 1940-1956 तक कलकत्ता रहे जहाँ ग्रांड होटल और ग्रेट ईस्टर्न होटल में सफलतापूर्वक जवाहरात का शो-रूम चलाया। 1956 में जयपुर के रामबाग पैलेस होटल में एस. गुलाबचन्द लूनिया एण्ड कं० के नाम से उन्होंने एक शोरूम खोला जो कि आज भी चल रहा है। द्वितीय महायुद्ध के बाद वे व्यापारार्थ शांघाई (चीन) भी गये। जमनालालजी बजाज की अध्यक्षता में प्रजामंडल का जयपुर में अधिवेशन हुआ तब उन्होंने एक नवयुवक नेता के रूप में सम्मिलित होकर सेवा कार्य किया था तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जयपुर में 1948 में पहली बार जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उसमें भी सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में भाग लिया था।

श्री केशरीचन्द जी अत्यन्त ही विनोदी, मिलनसार और व्यवसायी बुद्धि के व्यक्ति होते हुए भी विज्ञान, दर्शन, कला आदि गम्भीर विषयों के ज्ञाता थे। हमेशा टेप रिकार्डर पर आचार्य श्री तुलसी व अन्य विद्वान साधु-साध्वियों के भवन आदि सुना करते थे। बीमारी के दौरान हमेशा ही 'अरिहंता को शरणो, सिद्धां को शरणो' आदि शब्दों का उच्चारण किया करते थे। उनमें अपार कष्ट-सहिष्णुता थी। शारीरिक वेदना में भी प्रसन्नचित्त रहते और नमस्कार महामन्त्र बोलते रहते। उनका पूरा जीवन ऋजुता, क्षमा और सहनशीलता, दृढ़ निश्चय और आत्म-विश्वास से परिपूर्ण था। आचार्य तुलसी, युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ और अन्य साधु-साध्वियों का आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु वे सदैव तत्पर रहते थे। परिवार में सबसे निरन्तर कहा करते थे—मन का तप करो। तन का तप तो सोरा (सहज) है, असली तप तो मन का है।

श्री केशरीचन्द जी का विवाह जयपुर के प्रसिद्ध बैंकर्स परिवार में श्री बींजराज जी बांठिया के यहाँ हुआ। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती रेखा देवी है, जो स्वयं भी अत्यन्त सरल हृदया एवं धर्मपरायण महिला हैं। उनको चार पुत्रों एवं तीन पुत्रियों की प्राप्ति हुई, जिनके नाम क्रमशः (1) श्री विजयकुमार जी (2) श्री पुखराजचन्द जी (3) श्री माणकचन्द जी (4) श्री सुरेशकुमार जी तथा पुत्रियाँ – (1) श्रीमती कमल सांड (2) श्रीमती पन्ना सकलेचा और (3) श्रीमती मन्जु पाटोदिया हैं।

स्व. श्री पूनमचन्द जी लूनिया : ये सेठ श्री गुलाबचन्द जी लूनिया की सबसे छोटी सन्तान थे। उनका जन्म वि. सं. 1972 ज्येष्ठ पूर्णिमा तथा स्वर्गवास 17 जून सन् 1976 में हुआ। बचपन में ही उनका रुझान धार्मिक क्रिया-कलापों की तरफ रहा। धर्मगुरुओं में, धर्म के विषय में चर्चाएं करने में उनकी विशेष रुचि थी। इसी के फलस्वरूप तेरापंथ साधु समाज में वे 'पण्डित' के नाम से जाने जाते थे।

श्री पूनमचन्द जी का चरित्र निर्मल जल के समान था। उन्होंने अपना जीवन सादगीपूर्ण तरीके से बिना छलकपट के बिताया। परिवार के सब सदस्यों के प्रति उनका व्यवहार एक समान था। वे अपने-पराये की भावना से परे थे तथा माता-पिता के अत्यन्त आज्ञाकारी थे। पूजनीया प्रवर्तिनी जी महाराज साहब से भी उनका अगाढ़ स्नेह था।

इस प्रकार लूनिया परिवार में धन और धर्म का कल्पवृक्ष निरन्तर फलता-फूलता रहा है। यश, कीर्ति, दानशीलता, स्नेह-सहयोग, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य आज सभी परिवार के सदस्यों को प्राप्त हैं। धार्मिक अनुष्ठानों में, समाज सेवा के कार्यों में परिवार के सदस्य सदैव आगे रहते हैं। पूर्वजों के सुकृत से अर्जित धार्मिक आस्था को निरन्तर बढ़ाते हुए परिवार के सदस्य न केवल अपने कार-व्यवसाय को विश्व-व्यापी बना रहे हैं अपितु जैन-धर्म-दर्शन की प्रभावना को भी दिग्-दिगन्त तक विस्तार देने का अहर्निश प्रयत्न कर रहे हैं। परिवार का प्रत्येक सदस्य पूज्या प्रवर्तिनी श्री जी के प्रति श्रद्धा एवं कृतज्ञता के भावों से सदैव नत रहा है। उनका मानना है कि पूर्वजों के पुण्यों से अर्जित यश-वैभव-संस्कार एवं सद्व्यवहार को वे अक्षुण्ण बनाये रखने में सम्भवतः पूरी तरह सफल नहीं होते यदि पूज्या प्रवर्तिनी श्री की सद् प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद का संबल उनको नहीं मिलता। □

महकी सुगन्ध गुलाब की

राजस्थान के गुलाबी नगर जयपुर का हमारे देश के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। मुगल बादशाहों ने भी इस नगर के शासकों और व्यापारियों को विशेष सम्मान दिया, प्रामाणिक माना तथा ब्रिटिश शासकों के समय में भी इन्होंने अपनी प्रामाणिकता को अक्षुण्ण रखा। गुलाबी नगर को जवाहरात के व्यापार में विशिष्ट गौरव प्राप्त है। यहाँ के जौहरी प्रामाणिक, रत्नों के सच्चे पारखी और व्यवहार-कुशल माने जाते हैं। बोली के मीठे, स्वभाव के मधुर व सद्व्यवहार वाले कुशल व्यापारी नगर के गौरव रहे हैं। इन जौहरियों में जैन धर्मानुयायियों की संख्या सबसे अधिक है। वैसे भी जयपुर नगर में जैनों का निवास विशेष रूप से रहा है। यह जैन नगरी भी कहलाती है।

सेठ श्री गुलाबचन्द जी लूनिया जयपुर नगर के प्रतिष्ठित जैन श्रावक थे। वे जवाहरात के व्यापारी थे तथा अपने व्यवसाय में दक्ष, अत्यन्त धर्मनिष्ठ, सच्चरित्र एवं सदाचारी थे। अपनी गुलाबी मुस्कराहट से लूनिया जी ने जन-जन के हृदय में गहरा स्थान बना लिया था। अपने हंसमुख स्वभाव और व्युत्पन्नमति के कारण समाज में अत्यन्त लोकप्रिय थे। सभी उनको सम्मान देते थे। वैभव के बीच उनका जीवन सदाचारपूर्ण और धर्मनिष्ठ था।

स्वाध्याय लूणिया जी के जीवन का प्रमुख अंग था। अनेक ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन के परिणामस्वरूप विभिन्न आम्नाओं की पारस्परिक संकीर्णता आपके हृदय में बिल्कुल नहीं थी। यद्यपि आप तेरापंथी समाज के प्रमुख श्रावक थे, फिर भी धार्मिक मामलों में उदार और व्यापक दृष्टि रखते थे।

प्रकृति ने आपको भले ही 'लूणिया' (नमक-सा खारा) गोत्र में अवतरित किया किन्तु आपका हृदय तो मिश्री-सा मीठा और स्वर शहद से अधिक मधुर रसवाही था। प्रभु भक्ति के गीतों में आपको विशेष रस आता था। व्यापारिक व व्यावहारिक कुशलता का भी आप में अद्भुत योग था; इन गुणों के कारण समाज में आपका अग्रणी स्थान था। जयपुर, अजमेर, सांगानेर आदि मन्दिरों में जब भी भगवद् पूजा के आयोजन होते आपको बुलाया जाता। आप सहर्ष और सोत्साह उनमें सम्मिलित होते और पूजा-गायन करते।

आपकी कवित्वशक्ति अद्भुत थी। प्रभु स्तवन, उपदेशी पद, गुरुभक्ति के पद आदि आपने सैकड़ों की संख्या में रचे, जो प्रायः सभी प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से जाणपणे के पच्चीस बोल, तेरह द्वार, प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध, श्रावक आराधना (पद्यमय), अर्थसहित प्रतिक्रमण आदि अब भी उपलब्ध हैं।

आप भली-भांति जानते थे कि बाल्यावस्था में दिये गये संस्कार जीवन भर स्थायी रहते हैं। बच्चों को धार्मिक संस्कार बचपन में ही मिलें, इस दृष्टि से आपने आज से लगभग 70 वर्ष पूर्व 'तेरापंथी स्कूल' की स्थापना में पूरा सहयोग दिया था।

जैसे आप धर्मनिष्ठ और सदाचारी श्रावक थे वैसी ही धर्मनिष्ठा, सुशीला आपकी जीवन-संगिनी श्रीमती मेहताब देवी थीं। यह भी एक महान् शुभ संयोग ही था। श्रीमती मेहताब देवी व्रत-नियम-त्याग-तप आदि का दृढ़तापूर्वक पालन करती थीं। रात्रि-भोजन एवं जमीकन्द का उनके सर्वथा त्याग था। यावज्जीवन सिर्फ 25 प्रकार के फल और सब्जियों के अलावा शेष का त्याग था। वे विभिन्न प्रकार के तप करती रहती थीं। उनका धार्मिक ज्ञान भी प्रशंसनीय था। जाणपणे के 25 बोल, चर्चा के 13 द्वार, बावन बोल, गत्यागति, अल्पाबहुत्व, पांचज्ञान तेतीसा का स्तोक, छह लेश्या, नियण्ठा, खण्डाजोणि (क्षेत्र समास) इत्यादि कई स्तोक (थोकड़े) तथा दण्डक-संग्रहणी आदि के कई बड़े-बड़े स्तवन, नवबाड़ व आराधना की ढालें आपको कण्ठस्थ थीं। साथ ही उनका विशिष्ट ज्ञान भी था। उनका चिन्तन-मनन-अनुशीलन आप प्रतिदिन सामायिक में किया करती थीं।

किन्तु, जिस प्रकार चम्पा बेल इतनी सुन्दर व सुगन्धित होते हुए भी फलहीन होती है (यह प्रकृति का एक क्रूर उपहास ही है) उसी प्रकार मेहताबदेवी की जीवन बेल में सन्तान-फल का अभाव खटकता था। ऐसा भी नहीं था कि उनको सन्तान प्राप्ति होती ही न हो; सन्तान तो होती थी किन्तु एक वर्ष की होते-होते काल के गाल में समा जाती थी। खिली लता मुरझा जाती थी। यह सब सोचकर माता-पिता के हृदय में प्रायः विषाद की गहरी रेखा खिंच जाती। जिस मातृत्व का सपना प्रत्येक स्त्री संजोती है, वह साकार होकर भी कल्पना-महल के समान बिखर जाता था। किन्तु, धर्म में आस्थाशील एवं विवेकवती होने के कारण वे इस वेदना को समभावपूर्वक सहन कर लेती थीं।

एक रात्रि को, जब श्रीमती मेहताबदेवी अपनी सुख-शैय्या पर निद्राधीन थीं, सहसा उनकी बन्द आँखों में एक स्वप्न तैरने लगा—सत्संग हो रहा है, सन्तों का प्रवचन चल रहा है। वे उसमें बैठी प्रवचन सुन रही हैं। उनके समीप ही एक

सुन्दर देवांगना बैठी है। प्रवचन समाप्त हुआ, सहसा पास में बैठी देवांगना जैसे उनके शरीर में समा गई। सन्तों और धर्म की जय-जयकार होने लगी। श्रोताओं तथा भक्तजनों का हर्षनाद तुमुल स्वर में व्याप्त हो गया। अचानक ही आँख खुल गई। देखा तो वही कक्ष।

मेहताब देवी का चिन्तन उभरा—कितना मधुर और सुहावना स्वप्न था! काश! आँखें न खुलतीं। प्रवचन चलता ही रहता। यह जागृति तो बैरिन बन गई। सुख की घड़ियाँ लूट ले गई। चिन्तन आगे बढ़ा—और सब लोग तो जाते दिखाई दिये लेकिन वह देवांगना कहाँ चली गई? कितनी सुन्दर थी! कैसी मनोहारी मूरत·····अरे! वह तो मेरे शरीर में ही समा गई। पुलक उठा मेहताब देवी का तन-मन! हर्ष से हिया छलक उठा। सोचा, अपनी खुशी में पति-देव को भी साझीदार बनाऊँ। तत्काल उठीं, पति को जगाया और पूरा स्वप्न सुना दिया।

वृत्तान्त सुनकर ज्ञान और विवेक एक साथ चहक उठे, गुलाबचन्द जी का मन मोद से भर गया। शब्द निकले गुलाबी हँसी के साथ—'उत्तम स्वप्न है, तुम माता बनोगी। तुम्हारी सन्तान साधारण नहीं, कन्या-रत्न होगी, जिसके उजास से हमारा हृदय-घट तो प्रकाशित होगा ही पूरा समाज उसका अलोक पाकर धन्य अनुभव करेगा।'

और, मेहताब देवी तभी से अपने को धन्य अनुभव करने लगीं। ज्यों-ज्यों गर्भ में वृद्धि हुई, माता की धर्म-प्रवृत्तियाँ दिनोंदिन प्रवर्द्धित होती चली गईं। अब उन्हें सुपात्रदान, गुरु-दर्शन-वन्दन, प्रवचन-श्रवण आदि में अधिक आनन्द आने लगा।

किलकारियाँ और क्रीड़ाएँ

श्रीमती मेहताब देवी ने यथा समय एक बालिका को उसी प्रकार जन्म दिया, जैसे प्राची दिशा सूर्य को जन्म देती है और जिसके प्रकाश से जन-जन चेतनाशील हो जाता है। वह दिन था—विक्रम संवत् 1965 की वैशाखी पूर्णिमा।

भारत के धार्मिक इतिहास में इस पूर्णिमा का विशेष महत्त्व है। करुणा के प्रसारक तथागत भगवान बुद्ध का जन्म भी वैशाखी पूर्णिमा को हुआ था। उन्हें बोधि भी इसी दिन प्राप्त हुई थी और इसी दिन उनका शरीर छूटा था। इसी कारण यह दिन बुद्ध पूर्णिमा के नाम से भारत, चीन, जापान आदि एशिया खण्ड के अनेक देशों में प्रसिद्ध है।

नवजात पुत्री का नाम माता-पिता ने सज्जनकुमारी रखा।

और, वही बालिका मैत्री, करुणा, क्षमा, समता आदि सज्जन-गुणों को साकार करती हुयी पूज्या श्री के रूप में प्रगट हुयी।

पुत्री के जन्म से माता-पिता के हृदय में जो निराशा का अंधेरा था वह मिट गया, उसका स्थान प्रकाश ने ले लिया, उनके मन में मोद भर गया। सारे परिवार में खुशियाँ छा गईं। लेकिन, मानव-मन शंकालु भी तो होता है। उनसे पहले जितनी भी सन्तानें हुई थीं वे सब एक वर्ष की ही मेहमान रहीं; अतः पारिवारिक जनों, विशेष रूप से परिवार की बुजुर्ग स्त्रियों के मन में इस नवजात पुत्री के अमंगल की आशंका भी एकाएक उठ खड़ी हुई। उन्हें बालिका के जीवन की चिन्ता लग गई। यद्यपि यह अकाट्य सत्य है कि कोई भी शक्ति किसी भी प्राणी के आयुष्य को एक क्षण भी नहीं बढ़ा सकता। स्वयं वह व्यक्ति भी नहीं। यहाँ तक कि स्वयं तीर्थंकर भगवान् भी नहीं। भगवान महावीर का अन्त समय समीप था। उस समय देवराज इन्द्र उनके चरणों में उपस्थित हुआ, करबद्ध होकर प्रार्थना करने लगा—'भगवन्! आपकी जन्म राशि पर भस्मक ग्रह चल रहा है। यदि इसी समय आपने शरीर त्याग दिया तो आपके शासन की बहुत अवनति होगी। दो हजार वर्ष तक इसका प्रभाव रहेगा। अतः आप अपने आयुष्य के कुछ क्षण बढ़ा लें, तब तक यह भस्मक ग्रह उतर जायेगा। आप सर्वसमर्थ हैं, आयु के कुछ क्षण बढ़ा सकते हैं।'

इस पर भगवान् महावीर ने फरमाया–'हे इन्द्र! ऐसा न कभी हुआ है और न होगा ही; आयुष्य का एक क्षण भी बढ़ाया नहीं जा सकता।'

इस तथ्य को जानते-समझते भी मानव सोचता है कि कुछ टोटके करके नवजात बालक-बालिकाओं को दीर्घायु बनाया जा सकता है। विपाक सूत्र में ऐसे टोटकों का उल्लेख मिलता है। यथा—कुमार शकट को शकट (गाड़ी) के नीचे से निकाला गया था। लूनिया जी के घर की बुजुर्ग स्त्रियों ने भी ऐसा ही एक टोटका किया। बालिका को नमक से तोलकर लिया गया। भावना यही रही कि इस प्रकार बालिका दीर्घायु होगी।

क्रमशः बालिका माता-पिता तथा परिजनों को हर्षित करती हुई दिनोंदिन बढ़ने लगी। उसकी किलकारियों और क्रीड़ाओं को देख-देखकर सभी हर्षित होने लगे। अंग्रेजी साहित्य के महाकवि मिल्टन (Milton) ने एक स्थान पर लिखा है–**Crowling of child shows its future.** (शिशु की क्रीड़ाएँ उसके भावी जीवन के संकेत होती हैं)। ऐसी ही एक लोकोक्ति है—पूत के पाँव पालने में दिखाई देते हैं। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य शिशु की क्रीड़ाएँ सामान्य होती हैं, जबकि विशिष्ट बालकों की क्रीड़ाएँ भी विशिष्ट होती हैं।

उस युग में सामान्य बालिकाओं की क्रीड़ाएँ थीं—गुड़ियों से खेलना, उनके ब्याह रचाना आदि। किन्तु बालिका सज्जन तो विशिष्ट थीं, विशिष्ट संस्कार लेकर उन्होंने यह जन्म ग्रहण किया था, अतः उसकी शिशु-क्रीड़ाएँ भी विशिष्ट थीं। जिस आयु में लड़कियाँ गुड़ियों के ब्याह रचाया करती हैं, उस आयु में वे कभी गणेशजी का चित्र लेकर उसकी पूजा करती तो कभी राम-लक्ष्मण-सीता का अभिनय किया करतीं। उनकी सर्वाधिक प्रिय क्रीड़ाएँ थीं—मुख पर मुँहपत्ति बांधकर साध्वी का रूप धरना और छोटी-छोटी कटोरियों के पातरे तथा रूमाल की झोली बनाकर बहरने जाना। कभी आप साधु के समान परदा लगाकर भोजन करने का अभिनय करतीं तो कभी ऊँचे आसन पर बैठकर अन्य बालिकाओं को धर्मोपदेश देतीं। इन क्रीड़ाओं में आपको बहुत रस आता। उस समय उनकी क्रीड़ाएँ देखकर किसी ने नहीं सोचा होगा कि यह सब आने वाले भविष्य के शुभ संकेत हैं।

सज्जन कुमारी जी में बाल-सुलभ क्रीड़ाओं के साथ-साथ सत्य को जानने की जिज्ञासा भी प्रबल थी। विनय, विवेक और तर्कबुद्धि का भी उन में निरन्तर विकास हो रहा था। माता अपनी पुत्री की इन क्रीड़ाओं को देखकर फूली न समातीं तो पिता अपनी भावनाओं के अनुरूप आचरण पाकर मन ही मन हर्षित होते। माँ अपने मातृत्व को सफल-सार्थक समझतीं।

संस्कार युक्त वात्सल्य

यद्यपि आधुनिक माता-पिता आज एक विचित्र प्रवाह में बहे जा रहे हैं, लेकिन मातुश्री मेहताब देवी उस समय अलग ही प्रकार की माता थीं। वे असली भारतीय नारी थीं। उनके संस्कारों में उच्च स्तरीय धार्मिकता एवं शुद्ध विचारों की महक विद्यमान थी। वे अपनी सन्तान को धार्मिक संस्कार देने में अपने मातृत्व का गौरव मानती थीं। वे पुत्री को अतिशय लाड़-प्यार करती थीं, वात्सल्य लुटाती थीं; किन्तु साथ ही अपने कर्तव्य का भी उन्हें भान था। वे जानती थीं—माता हजार शिक्षकों के बराबर होती है तथा बच्चे की प्रथम शिक्षिका माँ ही होती है। जो संस्कार माता अपनी सन्तान में भर देती है, वे उसमें जीवन भर स्थायी रहते हैं। इसी भावना से मेहताब देवी अपनी लाडली बेटी को धर्म-सम्बन्धी शुभ संस्कार देने में सदा सजग-सावधान रहती थीं।

जब बालिका सज्जन की अवस्था मात्र तीन वर्ष की थी, तभी से माता अपनी प्रिय पुत्री को ब्राह्ममुहूर्त में अपने साथ ही बिस्तर से उठातीं और मुँहपत्ति लगाकर सामायिक करवातीं। सामायिक के दौरान ही माला, धार्मिक पाठ और थोकड़े याद करवातीं। वे स्वयं भी दिन में तीन सामायिक करती थीं। सामायिक

के बाद नगर में विराजमान संत-सतियों के दर्शन-वन्दन को जातीं तो साथ में अपनी पुत्री को भी ले जातीं। जयपुर में सदा से ही जैन साधु-साध्वियों का विराजना और आवागमन बना रहता है, अतः उन्हें सहज ही संत-सतियों के दर्शन-वन्दन का लाभ प्रतिदिन मिल जाता था।

इस प्रकार माता अपनी पुत्री के हृदय में धार्मिक संस्कारों की जड़ें जमा रही थीं। उन्हीं संस्कारों का परिणाम आगे चलकर सुदृढ़ चारित्रसम्पन्न सज्जनश्री जी म. के रूप में प्रकट हुआ।

व्यावहारिक शिक्षण :

सज्जनकुमारी जी की व्यावहारिक शिक्षा उनके पिता सेठ श्री गुलाबचन्द जी के सान्निध्य में हुयी। उन दिनों जयपुर में जवाहरात के चार-पाँच 'शो-रूम' थे उनमें श्री गुलाबचन्द जी का शो-रूम सर्वाधिक प्रसिद्ध था। प्रसिद्धि का कारण था उनकी प्रामाणिकता, प्रतिष्ठा और शालीनतापूर्ण शिष्ट-मिष्ट व्यवहार। उनके व्यवहार और वाणी में आभिजात्य गुण थे। उनका संपर्क अनेक राजपरिवारों व बड़े बड़े ब्रिटिश अधिकारियों के साथ था। इसी कारण विदेशी लोग उनके पास खिंचे चले आते थे। उनका व्यापार दिनों दिन प्रगति पथ पर बढ़ रहा था तो लाभ भी यथेष्ठ हो रहा था।

सज्जनकुमारी जी पिता की अत्यन्त लाड़ली थीं। अभी वे चार वर्ष की ही थीं, किन्तु पिताश्री उन्हें अपने साथ दूकान पर ले जाते जहाँ वह अपने पिताश्री और फोरेनर्स (विदेशी व्यक्तियों) का वार्तालाप सुनतीं। विदेशी व्यक्ति और श्री गुलाबचन्द जी अंग्रेजी में बात करते थे। बालसुलभ जिज्ञासावश सज्जनकुमारी उस वार्तालाप को ध्यान से सुनतीं तथा समझने का प्रयास करतीं और (उनके) विदेशी व्यक्ति के जाने के बाद पिताश्री से उन शब्दों का ज्ञान प्राप्त करतीं। इस प्रकार उनका अंग्रेजी शब्दों का ज्ञान क्रमशः बढ़ने लगा। वे कभी अपने मुनीम जी से भी जिज्ञासाओं का समाधान पातीं। मुनीम जी जब सज्जनकुमारी के मुख से इंगलिश शब्दों का स्पष्ट और शुद्ध उच्चारण सुनते तो बहुत प्रसन्न होते और उन शब्दों का भाव बड़े प्रेम से उन्हें समझा देते।

सज्जनकुमारी जी की तीव्र बुद्धि से पिता श्री गुलाबचंन्द जी बहुत प्रभावित थे। यद्यपि उस समय लड़कियों की उच्च शिक्षा का विशेष प्रचलन नहीं था, किन्तु पिता ने अपनी पुत्री को समुचित शिक्षा दिलाने का निर्णय कर लिया था। उस समय स्थिति यह थी कि लड़कों के लिए तो हाईस्कूल थे, किन्तु लड़कियों के लिए

राजकीय प्राइमरी और मिडिल स्कूल ही थे। और जो स्कूल थे उनमें भी उच्च-कुलीन लोग अपनी पुत्रियों को भेजना उचित नहीं समझते थे। यद्यपि कई प्राइवेट सामाजिक स्कूल भी थे।

धार्मिक तत्त्व-ज्ञान

किन्तु, जब सज्जनश्री जी पांच वर्ष की थीं, उस समय तेरापंथ समाज में एक ऐसे स्कूल की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी जहाँ कन्याओं को व्यावहारिक शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक संस्कार भी मिलें। इस दृष्टिकोण से तेरापंथ समाज की ओर से एक पाठशाला स्थापित की गई, जिसकी स्थापना में सेठ श्री गुलाबचन्द जी लूनिया का भी विशेष योगदान रहा। इस पाठशाला में बालिका सज्जन को भी प्रवेश कराया गया। इसके साथ-साथ घर पर भी उनका शिक्षण शुरू किया गया। पंडित मीठालाल जी सा हिन्दी, गणित तथा अन्य विषयों का ज्ञान प्रदान करते थे तो पंडित श्री मदनमोहन जी शास्त्री संस्कृत का शिक्षण देते थे। विद्यालय में भी ये ही शिक्षकगण पढ़ाते थे।

बालिका सज्जन धार्मिक क्रियाएँ—सामायिक, प्रतिक्रमण आदि सीखने के लिए पास में विराजित साधु-साध्वीजी तथा समीपस्थ एक धार्मिक पाठशाला में जाती थीं। यह पाठशाला सेठ श्री फूलचन्द जी द्वारा संचालित थी, जहाँ यतिनीश्री मेहताब जी तथा अध्यापिका भंवरबाई धार्मिक तथा सामान्य ज्ञान देती थीं। यहाँ उच्चारण की शुद्धता और अर्थ के चिन्तन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। ये दोनों ही गुण सज्जनकुमारी जी में प्रारम्भ से ही विकसित होने लगे थे। उनकी बुद्धि कुशाग्र थी, अतः थोड़े ही समय में काफी ज्ञान उपार्जित कर लिया। आठ वर्ष की आयु तक तो उन्होंने पच्चीस बोल, चर्चा के तेरह द्वार, बावन बोल, दण्डक-हुण्डी, अनुकम्पा की ढालें, आदि कई छोटे-बड़े थोकड़े कण्ठस्थ कर लिए थे।

महान् आत्माओं के उद्‌गार :

इस धार्मिक पाठशाला में सज्जनकुमारी जी की सहपाठिनियाँ थीं—सुश्री चाँदबाई, सरदारबाई, मिश्रीबाई, उमराव बाई आदि। ये सभी मन्दिरमार्गी आम्नाय की थीं। एक बार वे इनके साथ इमलीवाले उपाश्रय में (वर्तमान में जहाँ विचक्षण भवन है), जहाँ स्वनामधन्या पुण्यश्रीजी महा. सा. अपने आर्या-मण्डल के साथ विराजती थीं, दर्शन-वन्दन हेतु गयीं। पूज्याश्री की तेजस्वी एवं शांत मुखमुद्रा से वे बहुत प्रभावित हुई और फिर तो नित्य ही उपाश्रय में जाने लगीं।

इसी प्रकार एक बार, जब आप 5 वर्ष की ही थीं, अपने पिता श्री के साथ, जयपुर में ही विराजित खरतरगच्छीय परम आगमज्ञ योगिराज शिवजीरामजी के

दर्शनार्थ गयीं। आपको देखकर योगिराज के मुख से सहज ही उद्‌गार निकले—"सेठ सा० ! आपकी यह कन्या तो बड़ी भाग्यशालिनी है। इसकी शालीनता और शुभलक्षणों को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि आगे चलकर यह कुलदीपिका धुरन्धर विदुषी साध्वी बनेगी और शास्त्रज्ञा बनकर ख्याति प्राप्त करती हुई उच्च पद पर प्रतिष्ठित होगी।" और, योगिराज के ये उद्‌गार अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए।

विचित्र दुविधा

यद्यपि सज्जनकुमारी जी का बचपन वैभव में व्यतीत हो रहा था, घर में सभी प्रकार की सुविधाएँ थीं, माता-पिता का भी अत्यधिक लाड-प्यार था; फिर भी उनकी प्रकृति धार्मिकता से ओतःप्रोत थी। वे अपने स्वीकृत व्रत-नियमों का दृढ़ता से पालन करती थीं। धर्म का उनके जीवन में प्रमुख स्थान था। इसीलिए नौ वर्ष की अल्प आयु में ही उन्होंने अपने पिताश्री के सामने एक ऐसी भावना प्रगट की थी जिसे सुनकर श्री गुलाबचन्दजी सा० एकाएक गहरे विचार में डूब गये थे :

"बाबूसा ! मैं दीक्षा लूंगी।" नववर्षीया पुत्री ने पिता से बाल-सुलभ बोली में कहा।

लाडली बेटी के शब्द सुनकर पिता चकित रह गये। मानस में गम्भीर विचारों को तरंगें उठने लगीं। किन्तु, पुत्री को किसी प्रकार समझाना तो था ही अतः विचारों के उद्वेलन को कुछ क्षणों के लिए रोककर, बेटी के सिर पर हाथ फिराते हुए बोले—

'बेटी ! तुम अभी नादान हो। दीक्षा ग्रहण करने और दीक्षित जीवन व्यतीत करने में कितने कष्ट हैं, तुम क्या जानो ? तुम केवल सुख-सुविधाओं में पली हो, फूल-सी कोमल उमर है तुम्हारी। केश-लोंच करना, सर्दी-गर्मी में नंगे पैरों चलना, जैसा मिले वैसा खाना आदि अनेक कष्ट हैं, बेटी ! इसलिए दीक्षा का विचार कोई हँसी खेल नहीं है। साधु-जीवन खांडे की धार है।"

पुत्री चुप हो गयी, लेकिन उसके चेहरे पर आते-जाते भावों से पिता ने अनुभव किया कि सुपुत्री का विचार कच्चा नहीं है, वे जानते थे, उसकी छोटी उम्र है, किन्तु समझ और संकल्प बहुत गहरे हैं। उसके मन में दीक्षित होने के संस्कार जग चुके हैं।

प्रसिद्ध शिक्षा मनोवैज्ञानिक डूयूई (John Dewey) ने कहा है—"बच्चा कोरी स्लेट नहीं है, जिस पर हम मनचाही इबारत लिख दें, वह निश्चित संस्कार

लेकर आता है और अनुकूल पर्यावरण (परिस्थिति) मिलते ही उसके वे संस्कार प्रबल हो उठते हैं, उसी प्रकार उसका भावी जीवन बनता है।"

इसी को अध्यात्मवादी जैन धर्म एवं दर्शन में पूर्व-जन्मों के संस्कार कहा गया है। इन शुभाशुभ संस्कारों के बीज पूर्व-जन्मोपार्जित शुभाशुभ कर्मों में निहित रहते हैं। जिन्होंने पूर्वजन्मों में शुभ कर्मों का उपार्जन किया होता है, ऐसे बच्चे बाल्यावस्था में ही धर्मानुरागी बनकर संयमी जीवन धारण करने की इच्छा रखते हैं और उनके संकल्पों में फूलों-सी नाजुकता भले ही हो, मगर रेशम-सी दृढ़ता भी होती है। सुश्री सज्जनकुमारी जी ऐसे ही शुभ-संस्कारों से सम्पन्न महान् आत्मा थीं तभी नौ वर्ष की अल्पायु में ही अपने पिता श्री गुलाबचन्दजी लूनिया के सम्मुख उन्होंने दीक्षा लेने की सहज इच्छा प्रकट की थी।

श्री गुलाबचन्दजी लूनिया स्वयं धर्मनिष्ठ, तत्त्वज्ञ एवं विवेकवान श्रावक थे। वे जैन तत्त्व-ज्ञान के गम्भीर ज्ञाता होने के साथ-साथ कवि हृदय भी थे। इसलिए उनके मानस में गम्भीरता के साथ सुकुमारता और कल्पनाशीलता विद्यमान थी। वे एक संवेदनशील पिता ही नहीं उत्कृष्ट कवि और संगीतकार भी थे, अपनी पुत्री सज्जन श्री को वे लक्ष्मी और सरस्वती का संयुक्त अवतार समझते थे, इसलिए उनके मन में अपनी पुत्री के प्रति विशेष सम्मान था। साथ ही अपनी इकलौती पुत्री के प्रति एक विशेष मोह भी था। इस मोह का एक विशेष कारण यह भी था कि अनेक मनौतियों और कई वर्षों की प्रतीक्षा के बाद उन्हें इस कन्या-रत्न की उपलब्धि हुई थी और इसी के कारण उनके जीवन की सूनी बगिया में बहार आई थी, खुशी के फूल खिले थे। ऐसी परम-प्रिय, कलेजे की कोर के मुख से जब दीक्षा लेने की बात सुनी तो उनका मुख-कमल मुरझा गया, मानस उद्वेलित हो उठा, उनके स्मृति-पट पर विगत-जीवन धारावाहिक चलचित्र के समान नाचने लगा।

□

बन्धन में मुक्ति का संगीत

संसार में मोह की बड़ी विचित्र विडम्बना है। सेठ श्री गुलाबचन्द जी यद्यपि अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के थे, धर्म के मर्म को, संसार की गति को वे भली प्रकार जानते थे, स्वयं बारह व्रतों का सांगोपांग पालन करते थे, फिर भी अपनी पुत्री के प्रति अत्यन्त स्नेह होने के कारण उनका पितृहृदय यों संयमी जीवन की कठोरताओं में जाने की गवाही नहीं दे रहा था। लाडली बेटी ने यकायक जब उनके समक्ष दीक्षा की भावना सामने रखी तो उनका पुत्री प्रेम सहज ही उमड़ पड़ा। उनके चिन्तन का प्रवाह सहज दूसरी ओर मुड़ गया। उन्होंने सोचा—अबोध बालिका है, इसको विवाह के बन्धन में बाँध देना चाहिए। गृहस्थी के सुखों में डूब कर स्वतः ही संयम लेने की बात भूल जाएगी। और, अगर धर्म-ध्यान करना ही है तो घर में रहकर भी जितना सम्भव हो धार्मिक साधना करने से कौन रोकता है ?

आज के युग में नौ वर्ष की बालिका के विवाह के बारे में कोई सोच भी नहीं सकता। ऐसी बात कहने वाले को दकियानूसी और पुराणपंथी कहा जायेगा। लोग उसका उपहास भी कर सकते हैं; लेकिन उस युग में यह आम प्रथा थी। सात-आठ, यहाँ तक कि पांच वर्ष की कन्याओं के विवाह कर दिये जाते थे। सम्भवतः मनु के ये शब्द जन-मानस में गहरे पैठे हुए थे—'नव वर्षा भवेद् गौरी, दश वर्षा च रोहिणी.....'

सभी उच्चकुलीन व्यक्ति अपनी नववर्षीया पुत्री को विवाह-बन्धन में बाँध देना अपना कुल-गौरव समझते थे। सेठ श्री गुलाबचन्द जी जिस युग में जी रहे थे, उसी युग से प्रभावित थे, अतः उन्होंने अपनी नौ वर्षीया पुत्री सज्जनकुमारी का विवाह करना अपने कुल-गौरव के अनुरूप ही समझा। सुपुत्री की दीक्षा लेने की भावना ने उन्हें और भी उत्प्रेरित कर दिया। पुत्री का विवाह शीघ्र कर देने का लगभग दृढ़ निश्चय कर लिया। नगर के कुशल ज्योतिषी जी को बुलाकर सज्जन कुमारी जी की जन्म-पत्रिका दिखाई गई। पंडित जी ने जन्म-पत्रिका देखी और अपनी गणना करते हुए फलादेश बताए :

जन्म कुण्डली एवं फलादेश :

शुभ सं. 1965 वैक्रमीये वैशाख शुक्ला 14 शुक्रवासरे सूर्य स्पष्ट 1-2 इष्ट घटी 53/23 समये मीन लग्ने विशाखा नक्षत्रे तृ. चरणे जन्म ।

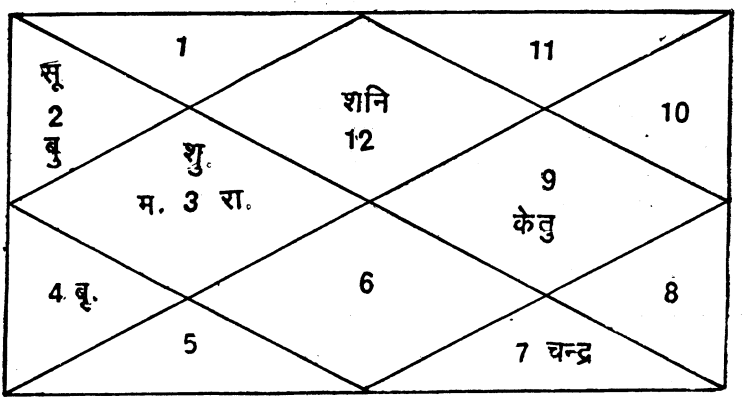

जन्म कुण्डली

दीक्षा योग : गुरु शनि का त्रिकोण योग, त्याग-वृत्ति, वैचारिक शक्ति अर्थात् सोचने-समझने की विशेष शक्ति ।

बुध शुक्र स्थान परिवर्तन योग : तीव्र ज्ञान, सॉलीसीटर जैसी बुद्धि । सूर्य आत्मबल का प्रतिनिधि है, उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि होने से सर्वत्याग की भावना तथा सोचने-समझने की बुद्धि तीक्ष्ण होती है । दशमेश उच्च का है । उस पर शनि की त्रिकोण दृष्टि है तथा दशम भाव पर पूर्ण दृष्टि है, यह योग भी वैराग्यकारक है । चन्द्रमा से दशम स्थान में उच्च राशि का गुरु है इससे जातक उच्च श्रेणी का आत्मिक कार्य करने वाला होता है ।

लेखन-कला योग : तीसरा स्थान लग्न में स्थित शनि से दृष्ट है तथा उसमें 'बुध' बैठा है, जो लेखन कला में कुशल बनाता है ।

शासन-सत्ता योग : चन्द्रमा लग्नेश को देखता है तथा तृतीयेश पर भी दृष्टि है । तृतीयेश मंगल गृह के साथ है तथा तीसरे-चौथे स्थान के स्वामियों का परस्पर परिवर्तन योग है, अतः शासन-सत्ता योग बनता है । शनि गुरु की राशि में व गुरु की ही दृष्टि में होने से महान् तीव्र अध्यात्म ज्ञान और कलाओं पर स्वामित्व प्राप्त कराता है ।

शिष्यादि का योग : गुरु शनी का त्रिकोण योग, व्ययेश पर गुरु की दृष्टि होने से शिष्यादि का योग तथा शास्त्रवेत्ता योग करता है। तृतीयेश का केन्द्र में और चतुर्थेश का पराक्रम में परिवर्तन योग होने से महान् धैर्य और समाधि योग होता है।

आगम ज्ञान : लाभेश पर गुरु की दृष्टि और लाभेश शनि तथा लग्नेश गुरु का त्रिकोण योग है। सुखेश पर मोक्षेश की दृष्टि महान् उपदेशक व महान् ज्ञानी बनाती है तथा ब्रह्मचर्य, मन का धैर्य, महान् समाधिधारक, दृढ़ श्रद्धाशील तथा उद्यमी बनाती है।

आत्मबल योग : मंगल धनेश और भाग्येश होकर केन्द्र में तृतीयेश के साथ बैठा है, यह योग आत्मबली मनोभिष्ट कार्य सिद्ध करने वाला तथा महान् आत्मबली बनाता है।

उच्चपद तथा दीर्घायु योग : शंख योग—लग्नेश और दशमेश त्रिकोण में दीर्घायु और उच्चपद कारक है। साहित्यिक अनुसंधान करने वाला, वाक्चातुर्य, न्यायज्ञाता बनाता है।

गुरु की दृष्टि शनी पर होने से आगमों को जानने वाला, न्यायशास्त्रों का ज्ञाता और सॉलीसिटर जैसा प्रभावशाली व वाक्चातुर्य से युक्त बनाता है।

चिन्ता की रेखाएँ

इस प्रकार पंण्डितजी ने जन्म-पत्रिका पढ़ी, ग्रह-गोचर-लग्न आदि देखे, जन्म-कुण्डली पर विशेष गौर किया और गम्भीर चिन्तन में डूब गये। उनके मस्तक पर गम्भीरता की रेखाएँ उभर आईं।

पंडितजी की गम्भीर मुखमुद्रा को देखकर श्री गुलाबचन्द जी चिन्तित हो गये, उनका उद्विग्न स्वर निकला—"क्या बात है पंडितजी ! आप गम्भीर कैसे हो गये ? पुत्री की जन्म-कुण्डली में कुछ अशुभ है क्या ?"

पंडितजी ने गम्भीर स्वर में कहा—"अशुभ तो कुछ भी नहीं, सब शुभ ही शुभ है। ग्रह तो सभी उत्तम हैं, ऐसी जन्म-पत्री तो विरलों की ही होती है। आपकी पुत्री अवश्य ही तेजस्वी, यशस्वी बनेगी।"

"फिर आपकी गम्भीरता का क्या कारण है ?" गुलाबचन्दजी की उद्विग्नता अब भी कम नहीं हुई थी।

"गम्भीरता का कारण है।" पंडितजी ने कहा—"आपने जिस इच्छा से मुझे यह जन्म-पत्रिका दिखाई है, उसमें मुझे कुछ बाधा दिखाई दे रही है।"

"तो क्या पुत्री का विवाह नहीं होगा ?" गुलाबचन्दजी के मुख से अनायास ही ये शब्द निकल गये, उनके मस्तिष्क में सज्जनकुमारी की दीक्षा-भावना तैर गई थी।

"स्पष्ट ही सुनना चाहते हो तो सुनो।" पंडितजी ने कहा—"तुम्हारी पुत्री मंगलीक है। इसलिए इसका विवाह मंगलीक लड़के के साथ करना उचित रहेगा, फिर भी मंगल दाम्पत्य-सुख में बाधा तो देगा ही। किन्तु घबराने की बात नहीं है, आप मंगलीक लड़के की खोज करें, सब कुछ मंगल होगा।

पंडितजी इतना कहकर चले गये और गुलाबचन्द जी मंगलीक लड़के की खोज में जुट गये।

दो वर्ष के अनवरत प्रयास के बाद जयपुर के दीवान स्व. श्री नथमलजी सा. गोलेच्छा के पौत्र एवं श्रीमान सौभागमल जी के सुपुत्र श्री कल्याणमल जी की जन्म-पत्री सज्जनकुमारी जी की जन्म-पत्री से भली प्रकार मिल गयी। निराशा की घड़ियाँ समाप्त हुईं। प्रसन्नता का वातावरण बन गया। यथेष्ठ दान-दहेज, स्वागत-सत्कार के साथ 12 वर्षीया सज्जनकुमारी का परिणय-सूत्र-बन्धन श्री कल्याणमलजी के साथ हो गया। सज्जनकुमारीजी गोलच्छा परिवार की बहू बनकर ससुराल में पहुँच गई।

गोलेच्छा परिवार जयपुर नगर का सुप्रसिद्ध धर्मनिष्ठ परिवार है। मूल में स्थानकवासी आम्नाय का अनुयायी होते हुए भी परिवार के सदस्यों की निष्ठा सभी आम्नायों में समान रूप से रही है। गोलेच्छा परिवार का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

गोलेच्छा परिवार :

लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व चन्देरी नगरी में खरहत्थसिंह राठौड़ राज्य करते थे। उनके चार पुत्र थे—अम्बदेव, मिम्बदेव, भैंसासिंह और आसफल। एक बार यवन सेना ने चन्देरी पर आक्रमण कर दिया। खरहत्थसिंह को ज्ञात होते ही उन्होंने अपने पुत्रों सहित सेना लेकर यवन सेना का सामना किया। घमासान युद्ध हुआ। यवन सेना सब कुछ छोड़कर पलायन कर गयी।

इस युद्ध में खरहत्थसिंह की विजय तो हुई, पर उनके चारों पुत्र गम्भीर रूप से घायल हो गये। दैवयोग से महान् प्रभावक युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्त

सूरि का चन्देरी में पधारना हुआ। राजा ने उनके महाप्रभाव की बात सुनी तो वे उनकी शरण में पहुँचे। अपनी विपत्ति—पुत्रों की घायल व मरणासन्न अवस्था बतायी। गुरुदेव ने वासक्षेप व जल अभिमन्त्रित कर उन्हें दिया जिसके प्रयोग से सभी स्वस्थ हो गया। राजा की श्रद्धा दादा गुरु में दृढ़ हो गई। प्रतिबोध पाकर वे सपरिवार जैन बन गये। उनके साथ अनेक अन्य क्षत्रिय आदि भी जैन बने। यह वि. सं. 1195 की बात है।

राजा के तृतीय पुत्र भैंसासिंह के द्वितीय पुत्र का नाम गेलोजी था। गेलोजी के पुत्र का नाम वच्छराज था। जनता उनको 'गेलवच्छा' के नाम से सम्बोधित करती थी। तभी से वे गेलवच्छा कहलाये और वही शब्द अपभ्रंश होते-होते गुलेच्छा या गोलेच्छा बन गया।

श्रीयुत रत्नचन्दजी गोलेच्छा

श्रीयुत रत्नचन्दजी गोलेच्छा खींचन (फलौदी) के निवासी थे। वहाँ से वे परिवार सहित जयपुर में आकर बस गये। आपके दो पुत्र थे, बड़े पुत्र का नाम श्री नथमलजी और छोटे पुत्र का नाम श्री जवाहरमलजी था।

दीवान सेठ श्री नथमलजी गोलेच्छा :

गुलाबी नगरी जयपुर के गुलाबी रत्न श्री नथमलजी गोलेच्छा बचपन से ही बड़े भाग्यशाली तथा प्रखर एवं तेजस्वी थे। उनकी कार्यकुशलता देखकर जयपुर के महाराजा भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके और उनको अपनी रियासत का दीवान बना दिया तथा उनके छोटे भाई जवाहरमलजो को खजांची बनाया।

सेठ श्री नथमलजी को दीवान साहब के नाम से प्रसिद्धि मिली। बच्चे-बच्चे के मुख पर श्री नथमलजी दीवान का नाम था। ख्याति उनके कदम चूम रही थी। जयपुर नगर में 'सेठ नथमलजी का चौक' आज भी आपके नाम से जाना जाता है।

दीवान पद पर रहते हुए भी दीवान साहब की धर्म में गहरी आस्था थी। वे साधु-सन्तों के नियमित रूप से दर्शन का लाभ लेते थे तथा धर्म की दलाली करते थे। ठाकुर, राजपूत एवं अन्य जाति के लोगों को मांस-मदिरा का त्याग करवाते थे और उनको जैन सन्तों के दर्शन करवाते थे।

इस विशाल धरती पर ऐसे अनेक चरित्र मिल जायेंगे जिन्होंने दूसरे के भले के लिये अपने आपको समर्पित कर रखा है। इस तरह के व्यक्तियों का जीवन चन्दन के वृक्ष की तरह होता है जो संसार के दूषित वातावरण में रहते हुए

भी अपने योगदान, त्याग और धर्माचरण जैसी शीतल - सुगन्धित भावनाओं को नहीं छोड़ते। दीवान श्री नथमलजी सा. गोलेच्छा का जीवन भी चन्दन की तरह था, जिसमें धर्मानुराग, त्याग, सहयोग की भावना की शीतल सुगन्ध समाई हुयी थी। वे अपने राज्य के कार्य भार के तमाम जंजालों में उलझे रहकर भी दूसरों के कल्याण हेतु हर तरह का सहयोग देते रहते थे। जैन समाज के वे जाने-माने समाजसेवकों में एक थे। उनके विषय में सहज ही कहा जा सकता है कि—

"तुम मित्र जन की ज्योति प्रीति की शक्ति प्रखर,
तुम मन, बुद्धि, कर्मों का समन्वय करते थे सत्वर।
तुम मरुत मान थे ज्योतित पंखों की उड़ान भर,
ले जाते थे आत्मा की आकांक्षाओं को ऊपर॥

श्री नथमलजी के पाँच संतानें थीं। उनकी पुत्री का नाम उमराव बाई था जो बचपन से ही लाड-प्यार से पली थीं। वे शान्त, अत्यन्त सरल स्वभाव की थीं। सौभाग्य रेखा तो उनके बचपन से ही रही। उनका विवाह कोटा नगर के सुप्रसिद्ध सेठ दीवान रायबहादुर श्रेष्ठिवर्य श्री केसरीसिंह जी बाफना के साथ हुआ। बाफना साहब श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन थे। धर्म में उनकी गहरी आस्था थी।

श्री नथमलजी साहब के तीसरे पुत्र का नाम श्री सौभाग्यमलजी था। वे इतने भाग्यशाली थे जिन्हें दीवान श्री नथमलजी जैसे पिता मिले। उनका विवाह जोधपुर के दीवानजी की सुपुत्री से हुआ। उनकी धर्म में बड़ी रुचि थी, साथ में वे बड़े दानवीर भी थे। अष्टमी - चतुर्दशी को रात्रि भोजन व हरी के सौगन्ध थे। उनके तीन पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम श्री कल्याणमलजी व दूसरे पुत्र का राजमलजी था। तीसरे पुत्र श्री सरदारमल जी अपने ताऊजी के यहाँ गोद चले गये थे।

श्री कल्याणमलजी सा. गोलेच्छा :

दीप्त ओज - बल, तप बल आज करें हम धारण,
शुद्धमना हम करें मनों से शोक निवारण।
तुम चिर सहिष्णु हम सहज कर सकें धीर शांत बन,
पूर्ण बनें हम सौम्य, सत्य पथ करें आपसे धारण॥

श्री कल्याणमलजी गोलेच्छा का बाल्यकाल ज्यादातर कोटा में आपकी बुआ सा. के पास ही व्यतीत हुआ था। बुआ सा. के कोई सन्तान नहीं होने के कारण आपके ऊपर उनका अत्यधिक स्नेह था। आपका विवाह प्रसिद्ध जैन तेरापंथ समाज के वरिष्ठ श्रावक सेठ श्री गुलाबचन्द जी सा. लूनिया की सुपुत्री

श्री सज्जनकुमारी जी के साथ हुआ जिन्होंने खरतरगच्छ संघ में जैन भागवती दीक्षा ग्रहण की तथा आगम-ज्योति प्रवर्तिनी श्री सज्जनकुमारी जी महाराज साहब के नाम से विख्यात हुयीं।

श्री कल्याणमलजी के कोई सन्तान नहीं हुई, अतः उन्होंने अपने छोटे भाई श्री राजमलजी के पुत्र विजयकुमार जी को पुत्र समान माना। श्री विजयकुमारजी गोलेच्छा के पुत्र श्री अजयकुमार, पुत्री सुश्री वन्दना एवं सुश्री नमिता के प्रति आपका असीम प्रेम था। उनके छोटे भाई श्री राजमलजी ने बड़े भाई सा. के साथ रहकर उनकी आजीवन सेवा की।

विवाह के पश्चात् आप कुछ वर्षों तक अपनी धर्मपत्नी श्री सज्जनकुमारीजी के साथ अपनी बुआ सा. के यहाँ रहे। वहीं से आपकी धर्मपत्नी में वैराग्य भावना जागी और उन्होंने दीक्षा लेने का निश्चय किया। सज्जनकुमारी जी ने जब आपसे दीक्षा की आज्ञा माँगी और आपने उनका संयम के प्रति गहरा लगाव देखा तो उन्होंने दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दी तथा दीक्षा के उपलक्ष में अपने आवासीय गृह (देरासर) में भगवान् ऋषभदेव की भव्य प्रतिमा की स्थापना भी करवाई।

श्री सज्जनकुमारी जी ससुराल में

नया घर, नया वातावरण, अपरिचित लोग—यही सब कुछ मिलता है नव-वधू को ससुराल में। इन्हीं लोगों और वातावरण के साथ उसे घुल-मिल जाना पड़ता है। जिस व्यक्ति को पहले कभी देखा तक नहीं उसे सर्वस्व समर्पण करके उसके व्यक्तित्व के साथ एकाकार होने में ही नववधू की सार्थकता मानी गयी है। इस समामेलन, समायोजन और समर्पण में श्वसुर पक्ष का सहयोग अपेक्षित होता है। वे यदि प्रेम से, वात्सल्य और स्नेह से नववधू को अपनावें, सास बहू को पुत्री से बढ़कर माने, ननद उसे अपनी बहन जैसा प्यार दे, ससुर अपनी पुत्री माने तभी सुखद वातावरण बनता है। साथ ही नववधू भी अपने विनय, शालीनता, कर्तव्यपरायणता, शिष्ट-मिष्ट वाणी से सबके हृदयों में अपना स्थान बनाती है।

ये सब गुण सज्जनकुमारी जी को माता ने जन्म-घूंटी के साथ ही पिला दिये थे और 12 वर्ष तक उनका सिंचन-संवर्धन होता रहा था, अतः वे शीघ्र ही समुराल में जाकर परिजनों में घुल-मिल गयीं। सभी उनके प्रशंसक बन गये।

पारिवारिक कर्तव्यों के साथ-साथ सज्जनकुमारी जी अपने स्वीकृत व्रत-नियमों का दृढ़ता से पालन करती थीं, किन्तु व्रत-नियमों का पालन करना उनके

पतिदेव को अच्छा नहीं लगता था। वे उनसे व्रत-नियम छोड़ने के लिए कहते। सज्जनकुमारीजी यद्यपि जवाब तो नहीं देतीं, पर बात को टाल जातीं और धर्माचरण नहीं छोड़तीं। इस पर पतिदेव जब कभी उग्र हो जाते तो सज्जनकुमारी जी का हृदय व्यग्र हो उठता, उनके मन में संसार से ग्लानि होने लगती और मानस में वैराग्य-भावना भर जाती, पर वे अपनी भावना को प्रकट भी नहीं करतीं; क्योंकि इससे परिवार में संक्लेश का वातावरण बन सकता था, जिसे वे नहीं चाहती थीं।

कोटा नगर में प्रवास

जीवन में नयी ऊर्जा प्राप्त होने के अनेक शुभ संयोग मिलते हैं। विवेकशील व्यक्ति उन अवसरों का सदुपयोग कर लेता है और अपने जीवन को नये आलोक से भर देता है जबकि सामान्य व्यक्ति नियति के संकेत को समझ ही नहीं पाता। ऐसा ही शुभ अवसर विवाह के तुरन्त तश्चात् श्री सज्जनकुमारी जी को मिला जब वे अपने पतिदेव के साथ अपनी भूआसासजी के घर कोटा गयीं। भूआसास सेठानी श्रीमती उमराव कुँवरबाई थीं जो सेठ श्री नथमल जी की पुत्री और कोटा के प्रसिद्ध रायबहादुर की पदवी से विभूषित माननीय सेठ श्री केसरीसिंह जी बाफना की धर्मपत्नी थीं। ये मंदिरमार्गी आम्नाय के अनुयायी थे।

आर्यारत्न श्री सज्जन श्री जी के जीवन को नया मोड़ देने में प्रमुख भूमिका कोटा के बाफना परिवार की रही थी अतः बाफना परिवार का संक्षिप्त विवरण (परिचय) देना यहाँ उचित होगा :

बाफना वंश का उदय :

पूज्येश्वर बड़े दादा गुरुदेव ने प्रसिद्ध राजा भोज के वंशजों, पवांर क्षत्रियों को जैन धर्म में दीक्षित कर सम्यक्त्वधारी बनाकर ओसवाल जाति में गौरवशाली बाफना वंश की स्थापना की थी। बाफना वंश का इतिहास बड़ा ही समुज्ज्वल है। इस वंश का सबसे प्राचीन इतिहास जैसलमेर में अमरसागर नामक सरोवर एवं उद्यान में लगे हुए एक शिलालेख से मिलता है जो सेठ श्री हिम्मतरायजी बाफना ने वहाँ लगाया था। उसके वंश में देवराजजी बाफना तथा उनके पुत्र गुमानचन्दजी बाफना थे। गुमानचन्दजी के पाँच पुत्र थे—सवाईरामजी, मगनीरामजी, जोरावरमलजी और प्रतापचन्दजी। सर्वप्रथम सेठ बहादुरमल जी जैसममेर से कोटा आये और चम्बल नदी के तट पर बसे कुनाड़ी नामक छोटे से ग्राम में दूकान से व्यापार आरंभ किया। थोड़े ही दिनों में उनका व्यापार उन्नति के शिखर पर चढ़ गया। उन्होंने करोड़ों की सम्पत्ति उपार्जित करली। जैसलमेर से अपने लघु भ्राताओं को भी बुला लिया। सब भाईयों

ने मिलकर क्रमशः 350 दुकानें भारत के विभिन्न नगरों में स्थापित कीं। चीन, जापान आदि दूसरे देशों में भी दुकानें खोलकर वहां भी व्यापार करने लगे।

सेठ बहादुरमल जी तत्कालीन केन्द्रीय सरकार की देवली ऐजेन्सी के अनेक रियासतों के खजांची (ट्रेजरर) थे। आपको कोटा राज्य की ओर से चांदी की छड़ी, अडानी, छत्र, म्याना, पालकी, ताम-झाम, हाथी, घोड़ा मय सोने के साज के और कई पट्टे-परवाने मिले हुए थे। बूंदी से रायमल और टोंक राज्य से खुर्रा नामक गांव जागीर में प्राप्त हुए थे।

सेठ साहब की धार्मिक प्रवृत्ति तथा देव-गुरु के प्रति महान् श्रद्धा का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि जहाँ-जहाँ दुकानें थीं वहाँ-वहाँ उन्होंने मन्दिर-देरासर बनाये थे और सारा प्रबन्ध उनकी दुकानों की ओर से होता था, जो आज भी कई स्थानों पर दृष्टिगोचर है। सेठ श्री बहादुरमल जी की भावना श्री शत्रुञ्जय का संघ निकालने की थी किन्तु वह पूर्ण नहीं हो सकी और उनके स्वर्गवास के बाद सुयोग्य दत्तक पुत्र श्री दानमल जी साहब ने वह संघ निकालकर अपने स्वर्गीय पिता की अभिलाषा पूर्ण की। उनका स्वर्गवास वि.सं. 1890 में हो गया।

ऐतिहासिक शत्रुंजय संघ :

सेठ श्री दानमल जी ने वि. सं. 1891 में श्री शत्रुञ्जय का विशाल संघ निकाला। इस संघ में वृहत् खरतरगच्छीय श्रीमज्जिनमहेन्द्रसूरिजी महाराज आदि 1000 साधु-साध्वी एवं यति आदि पूज्य वर्ग था। संघ में कुल 30 हजार व्यक्ति थे। इस संघ की रक्षा के लिए अंग्रेज सरकार तथा उदयपुर, कोटा, बूँदी, टोंक, जैसलमेर व इन्दौर की स्थानीय स्टेटों ने स्वयं के व्यय से अपनी-अपनी सेनायें भेजी थीं, जिनमें 1500 अश्वारोही, 4000 पैदल, 4 तोपें, हाथी, नगारे, निशान, छड़ी-दार, चोपदार आदि थे।

यह संघ मार्ग में आने वाले जैन मन्दिरों, दादाबाड़ियों एवं धर्मशालाओं का जोर्णोद्धार कराता हुआ साधर्मीवात्सल्य की प्रभावना आदि करता हुआ क्रमशः तीन मास में श्रीसिद्धाचल जी पहुँचा था। इसके उपलक्ष्य में ओसवाल समाज ने आपको 'संघवी' पद पर अधिष्ठित किया। जैसलमेर महारावल ने लौद्रवा ग्राम जागीर में प्रदान किया। संघ की व्यवस्था में 20 लाख रुपयों का सद्व्यय करके महान् पुण्य और अमरकीर्ति प्राप्त की। कितने ही मन्दिरों और दादाबाड़ियों का निर्माण भी कराया जो आज भी उनकी पुण्य गाथा का मूक गौरवगान कर रहे हैं।

श्री केसरीसिंह जी बाफना :

सेठ श्री दानमल जी के ही प्रपौत्र स्वनाम धन्य श्री केशरीसिंह जी साहब थे। रतलाम एवं कोटा दोनों ही स्थानों पर उनको अनेक अधिकार प्राप्त थे। सेठ चांदमल जी साहब बाफना ने निःसन्तान होने के कारण उनको अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। रतलाम के उद्यापन महोत्सव का वर्णन 'पुण्य जीवन' में किया गया है। सेठ केशरीसिंह जी साहब को रतलाम नरेश की ओर से राज्यभूषण, इण्डिया गवर्नमेंट की ओर से सन् 1912 में 'राय साहब', सन् 1916 में 'रायबहादुर' तथा सन् 1925 में 'दीवान बहादुर' की सम्माननीय उपाधियां प्राप्त हुई थीं।

श्री केशरीसिंह जी बड़े ही धर्मनिष्ठ, भद्र प्रकृति, निरभिमानी, दानवीर और उदार महानुभाव थे। इतनी सम्पत्ति के स्वामी और कई उपाधियों से विभूषित होने पर भी आप में अभिमान का अंश तक नहीं था। वे बड़े ही विनम्र स्वभाव वाले दयालु व्यक्ति थे। उनके तीन पुत्र हैं, श्री वुद्धसिंह जी कोटा में रहते हैं तथा जैसलमेर तीर्थ के ट्रस्टी हैं। धर्मप्राण सुशिक्षित विनम्र स्वभाव के हैं। श्री पवित्र-कुमार सिंह जी व अशोककुमार सिंह जी दिल्ली में रहते हैं।

सेठानी श्रीमती गुलाबसुन्दरी जी बाफना भी अत्यन्त धर्मप्राण, देवगुरु की परम भक्त एवं आदर्श श्राविका-रत्न हैं। लाखों रुपयों का धार्मिक कार्यों में सद्व्यय करती हैं। पूज्याश्री सज्जन श्रीजी म. सा. की दीक्षा-भावना को सफल बनाने में आपका ही पूर्ण सहयोग रहा था। यद्यपि सेठ श्री कल्याणमल जी सा. सज्जनकुमारी जी को उनके आग्रह के अनुसार दीक्षा की आज्ञा दे चुके थे, तथापि उनके अनेक आग्रह थे, जैसे—अमुक के पास, अमुक जगह तथा अमुक समय में ही आज्ञा दूँगा, आदि-आदि। उस समय सेठ श्रीमान् केशरीसिंह जी सा. एवं सेठानी सा. श्री गुलाब सुन्दरी जी बाफना ने कल्याणमल जी सा. से यह स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारा काम तो मात्र आज्ञा देने का था सो दे दी। अब शेष बातों के लिए सोचने की जिम्मेदारी तुम को नहीं देनी है, उसके लिए हम लोग काफी हैं। उसके पश्चात् श्री कल्याणमल सा. कुछ बोल न सके। उन्होंने अपने फूफा सा. एवं बुआ सा. को सदा से ही माता-पिता के समान सम्मान दिया था। इस प्रकार श्रीमान् एवं श्रीमती बाफना जी के पूर्ण सहयोग से पूज्या प्रवर्तिनी श्री जी की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। सर्वप्रथम मूर्ति-पूजक धर्म के प्रति आस्था भी प्रवर्तिनी श्री जी को यहीं से, प्राप्त हुई थी।

भुआ-सा. से सद्प्रेरणा :

भुआसा. ने श्री कल्याणमल जी को काम सीखने के लिए अपने पास बुलाया

था, अतः सज्जनकुमारी जी को भी उनके पास रहने का अवसर मिल गया। मआसा. अपनी धर्म-क्रियाओं में बहुत ही तत्पर और दृढ़ थीं। उनके घर का खान-पान, रहन-सहन पूर्णतः सात्विक था, वातावरण भी धर्ममय था। उनका व्यक्तित्व काफी प्रभावशाली था। घर में तो उनका प्रभाव था ही, समाज में भी काफी प्रतिष्ठा थी। परिवार में उनकी इच्छा को ही आज्ञा मानकर शिरोधार्य किया जाता था। सज्जन-कुमारी जी को वहाँ का वातावरण और मुआसा. का स्वभाव बहुत पसंद आया। इसके अतिरिक्त वहाँ की रुचि जमने का एक और भी कारण था, वह था सेठानी नंदकुंवरबाई का साथ जो सज्जनकुमारी जी की हम उम्र (समवयस्क) थीं। उनका विवाह सज्जनकुमारी जी के विवाह के दो महीने बाद हुआ था। वे सेठ केसरीसिंह जी की द्वितीय पत्नी थीं। यह विवाह सेठसा. की पहली धर्मपत्नी उमरावकुंवर जी ने स्वयं आग्रह करके कराया था; क्योंकि उमरावकुंवरजी के दो पुत्र हुए थे किन्तु उनमें से कोई जीवित नहीं बचा था और उसके बाद अनेक वर्षों तक उनके कोई संतान नहीं हुई थी। वंश को आगे चलाने की दृष्टि से उमरावकुंवरजी ने आग्रह करके नंदकुंवर बाई का विवाह अपने पति सेठ केसरीसिंह जी के साथ कराया था। सम-वयस्क होने के कारण सज्जनकुमारी जी और नंदकुंवर जी में सहज ही गहरा प्रेम हो गया।

उस समय पूज्य सुमतिसागर जी म.सा. और मणिसागर जी म.सा. कोटा में विराजते थे। कारण था—आगम, शास्त्रादि की उचित मुद्रण व्यवस्था हेतु एक जैन प्रेस की स्थापना करवाना। उमरावकुंवरबाई ने सेठ साहब से नई सेठानी नंदकुंवरबाई को धर्म सिखाने का आग्रह किया तो उन्होंने जयपुर विराजित पूज्य प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्री जी म. सा. और पूज्य श्री उपयोगश्री जी म.सा. आदि साध्वियों से कोटा पधारने की विनती की। सेठ साहब की विनती को सम्मान देकर साध्वीवृन्द कोटा पधारीं। साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ के एकत्रीकरण से कोटा नगर में धर्म की गंगा बहने लगी। चातुर्मास में खूब धर्म-ध्यान-तपस्या आदि हुए। साधु-साध्वियों के प्रवचनों से प्रेरित होकर लोगों ने अनेक प्रकार के व्रत-प्रत्याख्यान-नियम आदि ग्रहण किये।

सेठानी उमरावकुंवर बाई नई सेठानी नंदकुंवरबाई और सज्जनकुमारीजी को अपने साथ लेकर व्याख्यान आदि में जाती थीं। गुरुदेव और गुरुवर्या की अमृतोपम वाणी से सभी कोटा निवासियों को आकर्षित व प्रभावित किया था। सज्जनकुमारीजी और नंदकुंवर जी तो विशेष रूप से प्रभावित थीं। ज्ञानश्रीजी म.सा. ज्ञान की आगार और क्षमता, समता व सरसता की प्रतिमूर्ति थीं। पूज्या उपयोगश्री जी का अंग-सौष्ठव अनुपम था, उनकी प्रवचन-कला में जादू था, वाक्चातुर्य अनूठा था और

कंठ इतना सुरीला था कि श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते थे। गुरुर्या के इन गुणों से सज्जनकुमारीजी बहुत प्रभावित हुईं और उनसे धार्मिक अध्ययन करने की इच्छा प्रकट की।

सज्जन व्यक्ति की कोई भी सदिच्छा अपूर्ण नहीं रहती। स्वतः ही ऐसे निमित्त मिल जाते हैं कि उनकी इच्छा पूरी हो जाती है। उमरावकुंवरबाई ने पूज्य श्री से निवेदन किया—महाराजसा. नई सेठानी (नंदकुंवरबाई) और मेरे भतीजे की बहू (सज्जनकुमारी) को धर्म सिखाने की कृपा करें। भतीजे की बहू तेरापंथियों की लड़की है, थोकड़े, बोल आदि तो याद हैं, किन्तु मंदिरमार्गी परम्परा से अनभिज्ञ है। मंदिर तथा पूजा आदि के विधि-विधानों में उसकी श्रद्धा जाग्रत हो जाये, ऐसी कृपा करायें। महाराजश्री ने स्वीकृति दे दी। दूसरे दिन से ही नन्दकुंवरबाई और सज्जन-कुमारीजी का धार्मिक अध्ययन शुरू हो गया।

जिज्ञासाओं का समाधान

सज्जनकुमारीजी में जिज्ञासावृत्ति तीव्र थी। वे गुरुवर्याश्री के सामने प्रायः इस प्रकार की जिज्ञासाएँ रखतीं—

—मन्दिर शाश्वत हैं या अशाश्वत ?

—धर्मों में इतने मतभेद क्यों हैं ?

—क्रियाओं तथा विधि-विधान में अन्तर क्यों है ?

—यद्यपि शास्त्र (आगम) सबके एक हैं पर मान्यताओं में इतना अन्तर क्यों है ?

इसी प्रकार की अन्य जिज्ञासाएँ आप रखतीं और गुरुवर्याश्री शास्त्रीय उदाहरणों द्वारा उनका समाधान करतीं।

साध्वीजी के बताए अनुसार आपने कई ग्रन्थों का अध्ययन करके नंदीश्वर द्वीप, शाश्वत प्रतिमाओं, मेरु पर्वतों आदि का ज्ञान प्राप्त किया। परिणामतः मंदिर, जिनदर्शन-वन्दन, प्रतिमा-पूजन आदि के प्रति आपकी दृढ़ श्रद्धा बन गई। इसके साथ-साथ आपने स्वतः प्रेरित होकर मंदिर-मार्गी सामायिक-प्रतिक्रमण तथा जिन-प्रतिमा दर्शन-वन्दन-पूजन की विधियाँ विस्तार से सीखीं और उसी के अनुसार सामायिक आदि करने लगीं। जिन-प्रतिमा दर्शन-वन्दन-पूजन आपके जीवन के नित्य नियम-से बन गये। आपने गुरुवर्याश्री से सप्तस्मरण, गौतमरास, शत्रुञ्जयरास आदि भी सीखे। वे जब इन्हें प्रतिदिन प्रातः सेठानी उमरावकुंवर बाई सा. को सुनातीं तो वे हर्ष-विभोर हो उठतीं।

इस प्रकार धार्मिक क्रियाओं और पारिवारिक स्नेह-सुमेल में दो-ढ़ाई साल कब बीत गये, पता ही नहीं चला। किन्तु, अचानक इस व्यवस्था में परिवर्तन आया, हुआ यह कि उमराव कुँवरबाई जी एकाएक ही अस्वस्थ हो गईं और चिकित्सा के लिए उन्हें जयपुर लाना पड़ा। आप भी इनके साथ जयपुर आ गईं। चिकित्सा प्रारम्भ हो गई।

एक शुभयोग, एक अन्तराय :

उन दिनों (वि. सं. 1980 में) जयपुर में पूज्याश्री हुलासश्री जी म.सा. तथा पूज्या श्री चम्पाश्री जी म.सा. (जो महत्तरा के पद से विभूषित थीं तथा जिनका सं. 2045 में स्वर्गवास हो चुका है) इमली वाले उपाश्रम में विराज रही थीं। सेठानीजी की अस्वस्थता के बारे में सुनकर वे उन्हें दर्शन देने पहुँचीं। सेठानी जी की भावना को मान देकर प्रतिदिन दोनों साध्वीश्री दर्शन देने पधारतीं और मंगल पाठ सुनातीं। कुछ तो श्रद्धापूर्वक मांगलिक श्रवण का प्रभाव और कुछ समुचित चिकित्सा का असर, सेठानी जी के स्वास्थ्य में दिनोंदिन सुधार आने लगा। स्वास्थ्य सुधर जाने पर भी चिकित्सकों ने कुछ दिन और आराम करने का सुझाव दिया। सज्जनश्री जी भी इमली वाले उपाश्रय में जाने लगीं तथा प्रतिक्रमण आदि सीखने लगीं। आंठ दिन में राइ-देवसी प्रतिक्रमण सीख लिया। एक दिन में भक्तामर स्तोत्र, दो दिन में 'अजित शान्ति' तथा डेढ़ दिन में 'बड़ी शान्ति' सीख ली। इसके अतिरिक्त जो भी पाठ शेष थे, वे भी अत्यन्त अल्प समय में उन्होंने सीख लिए।

आपकी तीव्र स्मरणशक्ति, शालीन स्वभाव, शिष्ट-व्यवहार आदि से गुरुवर्या पूज्या श्री हुलास श्री जी म.सा. तथा पूज्या श्री चम्पाजीजी म. सा. बहुत प्रभावित हुईं। वे परस्पर विचार करतीं कि सज्जनकुमारी जैसी बुद्धिशालिनी और प्रतिभाशालीनी युवती यदि दीक्षा ले ले तो जैन शासन के चार चांद लग जाएँ। यदा-कदा ये शब्द सज्जनकुमारीजी के कानों में भी पड़ जाते। सहज चिंतन की रेखाएँ उभरतीं और उनकी सुप्त वैराग्य-भावना पुनः अंगड़ाई लेने लगतीं। क्रमशः सोलह वर्ष की अवस्था में सुप्त वैराग्य भावना पुनः मानस में जाग उठी।

किन्तु; अभी समय परिवर्तन नहीं हुआ था। काल-लब्धि नहीं आई थी। प्रत्याख्यानीकषाय का क्षयोपशम नहीं हुआ था; अतः दीक्षा की बात तो दूर, धार्मिक क्रियाओं में भी एक अन्तराय आ गयी। हुआ यह कि बुआ सा. तो स्वस्थ होकर कोटा लौट गयीं। किन्तु वे जयपुर में ही रह गईं। उनके सास-ससुर और पतिदेव ने मन्दिर आना-जाना तो बन्द किया ही धार्मिक क्रियाओं पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। मन्दिर, उपाश्रय जाना बन्द हो गया। इस स्थिति से उनको दुःख तो

हुआ पर मन में यह सोचकर कि, अभी निकाचित चारित्रमोहनीय का उदय चल रहा है – मन में समता धारण कर ली। परिवार की शान्ति के लिए उन्होंने मौन का आश्रय लिया।

समता का अभिप्रायः निष्क्रियता नहीं है। सज्जनकुमारीजी निष्क्रिय होकर नहीं बैठ गयीं, अपितु अपनी दीक्षा-ग्रहण की भावना को साकार रूप देने का हर संभव प्रयास करती रहीं। इन प्रयासों से यद्यपि उनका पारिवारिक जीवन संघर्षमय बन गया, परन्तु उन्होंने अपना बुद्धि-सन्तुलन नहीं खोया, संक्लेष की स्थिति उत्पन्न नहीं होने दी। इस विषम परिस्थिति में भी वे ज्ञानार्जन एवं तपस्या आदि निरन्तर करती रहीं।

विराग की धुन :

अपनी ससुराल में घर का कार्य निबटाकर सज्जनकुमारीजी एकांत में बैठ जातीं। इसी समय में उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति का प्रयोग कर अनेक भजन, वैराग्योत्पादक सज्झाय, स्तुति, चैत्यवन्दना आदि की रचनाएँ कर डालीं। कवित्व-शक्ति उनको जन्मजात संस्कारों में अपने पिताश्री से मिली थी। दीक्षा के बाद इन रचनाओं के संकलन 'सज्जन विनोद', 'कुसुमांजलि', 'जैन गीतांजलि, नाम से प्रकाशित हुए हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर श्रोता आज भी भक्ति-रस से सराबोर हो जाते हैं। लघुवय की इन रचनाओं से प्रवर्तिनी श्रीजी की सहज प्रतिभा का अनुमान स्वतः हो जाता है।

इस के अतिरिक्त खाली समय का उपयोग उन्होंने विभिन्न प्रकार की अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने में भी किया। उनके पिताश्री के यहाँ सभी प्रकार की पुस्तकों का संग्रह था, जिनमें उपन्यास, कहानी, चरित्र, पत्र-पत्रिकाएँ आदि थे जो उनकी अध्ययन-रुचि के कारण अछूती नहीं रही होंगी। इन पुस्तकों को पढ़ने से उनके व्यावहारिक ज्ञान में तीव्रता से वृद्धि हुई। जब उन्होंने पंजाब मैट्रीक्यूलेशन की मैन्युअल ग्रामर ऑफ संस्कृत पढ़ी तो वे संस्कृत के काव्य-महाकाव्य आदि पढ़ने/समझने लगीं। रुचि और बढ़ी तो 'अमरकोश' का एक खण्ड भी कण्ठस्थ कर लिया। (अमरकोश पूर्ण-रूप से संस्कृत भाषा में रचा गया है। इसके तीन खण्ड हैं और इसमें एक-एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं।) इस प्रकार सज्जनकुमारी जी का अध्ययन बराबर चलता रहा।

मन्दिर-उपाश्रम जाने का सिलसिला कभी चलने लगता और कभी टूट जाता, किन्तु साधु-साध्वियों के दर्शन होते ही रहते थे। कारण यह था कि उनके निवास स्थान – 'कटले' में काफी लम्बी-चौड़ी जमीन पड़ी थी। (इस जमीन पर वर्तमान में

अग्रवाल कॉलेज है) अतः साधु-साध्वी स्थंडिल के लिए वहाँ पधारते थे, अतः उनको आते-जाते अनायास ही साधु-साध्वियों के दर्शनों का लाभ प्राप्त हो जाता था। साथ ही सीखने व ज्ञानाभ्यास की प्रेरणा भी मिल जाती थी। 'कौमुदी' सीखने की प्रेरणा उनको पूज्याश्री सत्यश्री जी म. सा. से मिली थी। पूज्याश्री पधारतीं तो पाठ ले लेतीं और मौका देखकर सुना भी देतीं।

सूत्राध्ययन की रुचि उनमें प्रारम्भ से ही थी; क्योंकि वे जानती थीं कि ज्ञान ही प्रकाश है, मिथ्यात्व का अन्धकार ज्ञान से ही दूर होता है, श्रद्धा भी ज्ञान से पुष्ट होती है, ज्ञान-ज्योति से कर्मों का भी क्षय होता है और ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। जैसा कि एक कवि ने कहा है—

'कोटि जन्म तप तपें, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन मांहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते॥
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
इहि परमामृत जन्म-जरा-मृति-रोग-निवारन॥'

ज्ञान का महत्त्व तो गीता में भी स्वीकार किया गया है—

'ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरूते तथा॥"

अतः, गृहकार्य से निवृत्त होकर वे सूत्र-स्वाध्याय में प्रवृत्त हो जातीं। उनके पिताश्री के यहाँ अमोलक ऋषिजी महाराज कृत सूत्रों के हिन्दी अनुवाद की प्रतियाँ उपलब्ध थीं, वे सब भी उन्होंने पढ़ीं। इनसे आपका ज्ञान और भी गहरा हुआ।

तपाराधना :

ज्ञानाभ्यास से वे तप की महिमा से भी परिचित हो गई थीं। दशवैकालिक में तो धर्म को अहिंसा, संयम और तप रूप ही बताया है। वे जानती थीं कि कर्मों की निर्जरा में तप बहुत सहायक होता है, इसी से कर्मों की निर्जरा होती है। तप से ही आध्यात्मिक परिपूर्णता की सिद्धि होती है। आपके मानस में सहसा विचार उभरे—मेरा अन्तराय कर्म चल रहा है, चारित्रमोहनीय प्रबल है, तभी तो मेरी दीक्षा-भावना सफल नहीं हो रही है, अतः तप करना चाहिए, जिससे कर्मों के बन्धन शिथिल हों और दीक्षा के भाव सफल हों। अतः, उन्होंने कई प्रकार की तपाराधनाएँ कीं, यथा—उपधानतप, नवपदओली, विंशति स्थानक तप, पक्खवासा, सोलिया, मासक्षमण, कल्याणक, वर्षीतप आदि।

पूज्या सज्जनश्री जी नवपद ओली की महिमा से तो परिचित थीं ही अतः इस तप की आराधना उन्होंने प्रारम्भिक आयु में ही शुरू कर दी। शहर में साध्वीजी

महाराज होतीं तो उनके पास चली जातीं, अन्यथा मंदिर में ही अन्य साधर्मी महिलाओं के साथ नवपद ओली की साधना शुरू कर देतीं। इस प्रकार उनके 18-19 ओलियाँ हो चुकी थीं।

वि. सं. 1994 में पूज्या प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म. सा. तथा उपयोगश्रीजी का अपनी शिष्या समुदाय के साथ जयपुर में चतुर्मास हुआ। उनकी निश्रा में नवपद की ओलियाँ आपने बड़ी धूमधाम से सम्पन्न कीं। वि.सं. 1996 में पुनः तपस्याओं की लहर आई। उस वर्ष भी पूज्या प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म.सा., उपयोगश्री जी म. सा. अपनी गुरुबहनों के साथ जयपुर में विराज रही थीं। वे तपस्या आदि के लिए प्रेरणा देती रहती थीं। इसी वर्ष फाल्गुन चौमासी का प्रतिक्रमण चल रहा था। अन्तिम कायोत्सर्ग के पश्चात साध्वीजी ने वर्षी तप की प्रेरणा दी। भावना ने साकार रूप लिया। बहनों की प्रार्थना पर वहाँ विराजित आठ साध्वीजी (पू श्री समर्थश्री जी म. सा., श्री चरणश्री जी म. सा., श्री इन्द्रश्री जी म. सा., सत्प्रेरिका श्री उपयोगश्री जी म. सा., श्री सुमनश्री जी म. सा., श्री जीवनश्री जी म. सा., श्री विचित्रश्री जी म. सा. एवं वीरश्रीजी म. सा.) ने भी वर्षी-तप करने का निश्चय किया। सोने में सुहागा हो गया, लगभग 40-45 श्रावीकाएँ भी तैयार हो गईं।

श्री सज्जनकुमारी जी भी उन दिनों उपाश्रय में जाती रहती थीं। आपको वर्षी तप की बात ज्ञात हुई तो आपने भी वर्षी-तप करने की भावना पतिदेव और सासजी के समक्ष रखी। सौभाग्य ही था कि आपको अनुमति मिल गई। प्रसन्नता-पूर्वक आप वर्षी-तप की साधना में सम्मिलित हो गईं। सभी तपस्वी बहनों की तपाराधना निर्विघ्न चल रही थी। छह महीने व्यतीत हो चुके थे।

एक बार सभी की भावना बरखेड़ा तीर्थ के दर्शनों की हुई। यह तीर्थ जयपुर से 10 कोस दूरी पर है। कहते हैं, यहाँ विराजित ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा का अवतरण एक तालाब से हुआ था। इस भावना को मण्डल की प्रमुखा पूज्या श्री उपयोगश्री जी ने अपनी सहमति प्रदान कर दी। परमभक्त श्राविका-श्रेष्ठा अखण्ड सौभाग्यवती मखाणी बाई ने अपने उद्‌गार व्यक्त किये—'बरखेड़े का तो छः री पालित संघ निकालना चाहिए।' इस पर शिखरू बाई सा. तुरन्त बोल उठीं—'संघ तो आप जैसी भाग्यशाली ही ले जा सकती हैं।' मखाणीबाई के बात छू गई। उन्होंने घर आकर अपने पति (धर्मनिष्ठ श्रावक श्रेष्ठ मांगीलाल जी सा. गोलेच्छा) के समक्ष बरखेड़े संघ को ले जाने की बात रखी तो प्रसन्न होकर बोले—'भावना बहुत शुभ है, अवश्य संघ ले जाओ। अभी तो मुनिराजों (दर्शनविजयजी आदि, जो त्रिपुटी

के नाम से प्रसिद्ध थे) का भी संयोग है। ऐसा स्वर्ण अवसर सौभाग्य से ही मिलता है। इस अवसर को चूकना नहीं चाहिए।'

श्री मांगीलाल जी की स्वीकृति से सभी ओर हर्ष की लहर फैल गई। तीन-चार श्रावकों को साथ लेकर श्री मांगीलाल जी ने श्री दर्शनविजय जी म. सा. के समक्ष संघ निकालने और उसमें उनके सम्मिलित होने की प्रार्थना की तो म. सा. ने भी सहमति दे दी। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया के दिन, जब बरखेड़ा तीर्थ का वार्षिक उत्सव मनाया जाता है, उस अवसर पर संघ ले जाने का निश्चय हो गया। मांगीलाल जी गोलेच्छा से श्री सज्जनश्री जी के परिवार का गोत्रीय सम्बन्ध तो था ही, निकट का कौटुम्बिक पारिवारिक सम्बन्ध भी था, अतः इनके परिवार से भी संघ में सम्मिलित होने का आग्रह किया गया।

फाल्गुन कृष्णा 14, संध्या के शुभ मुहूर्त में खूब धूमधाम एवं हर्षोत्सव के साथ चतुर्विध संघ ने जयपुर से प्रस्थान किया। इस संघ में लगभग 1200 श्रावक-श्राविका, पू. दर्शनविजय जी आदि 3 मुनिराज और पू. प्रव. श्री ज्ञानश्री जी म. सा, श्री उपयोगश्री जी म सा. तथा 8 साध्वियाँ थीं। सज्जनकुमारी जी तो साथ थी हीं।

बरखेड़ा तीर्थ-छः री पालित संघ

संघ बड़े हर्षोल्लास और बैंडबाजे के साथ बरखेड़ा तीर्थ फाल्गुन शुक्ला 2 के दिन पहुँचा। वहाँ बड़े ठाठ-बाट के साथ स्नान-पूजा हुई। संघपति श्री मांगीलाल जी गोलेच्छा को माला पहनाई गई। मध्यान्ह में बड़ी पूजा (सत्तरहभेदी पूजा) तथा उसके उपरान्त स्वामी-वात्सल्य का कार्यक्रम रखा गया। सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए। पूज्य गुरुदेव और साध्वीजी म. सा. के सान्निध्य में सर्व संघ ने संघपति श्री मांगीलालजी गोलेच्छा का अभिनन्दन कर सम्मान किया। वस्तुतः, सात दिनों का यह छोटा और मधुर संघ प्रवास जयपुर के इतिहास में अपनी अमर छाप छोड़ गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे आयोजन पुण्यानुबन्धी पुण्य के कारण बनते हैं, साथ ही इनसे जैन शासन की प्रभावना में वृद्धि होती है। वहाँ से गुरुदेव (तीनों मुनिराज) तो आगे की ओर विहार कर गये, किन्तु साध्वी समुदाय वापिस जयपुर आ गया। उसके दो कारण थे—प्रथम, जयपुर संघ का अत्याग्रह और द्वितीय वर्षीतप की साधना। इस तप का पारणा जयपुर में ही करना उचित समझा गया।

वर्षीतप का पारणा अक्षय तृतीया के दिन जयपुर रेलवे स्टेशन के समीप पुगलियों के मन्दिर (जहाँ ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा विराजमान है और उसी से जुड़ी हुई धर्मशाला है) में बड़ी धूमधाम से अठाई महोत्सवपूर्वक स्वयं श्रीमान्

गोकुलचन्दजी पुगालिया की धर्मपत्नी की ओर से सम्पन्न हुआ। उनकी उत्कृष्ट भावना को देखकर संघ की अनुमति से उन्हें यह लाभ प्रदान किया गया था।

धर्माराधना का प्रभाव

वर्षीतम तथा त्याग-संयम-तप की रुचि से श्री सज्जनकुंवरजी के वैराग्य-संस्कार दिनोंदिन दृढ़ होते जा रहे थे। इन सबका प्रभाव आपके परिजनों पर भी पड़ना शुरू हो गया। आपके विचारों का सब पर असर होने लगा। सत्संगति तो पापी को भी धर्मात्मा बना देती है तथा धर्म-विरोधी को धर्माराधक बना देती है। इसी क्रम में श्री कल्याणमल जी सा. की जीवन रूपी ऊसर मनोभूमि भी धर्म की दृष्टि से उर्वर होने लगी थी।

उपधान तप : हर्ष की लहर

वि. सं. 1998 में चारित्रनिष्ठ पूज्य गुरुदेव मणिसागरजी म. सा. एवं बालमुनि श्री विनयसागरजी म. सा. जयपुर संघ की आग्रहपूर्ण विनती को स्वीकार कर चातुर्मास हेतु जयपुर पधारे। धूमधाम से उन्होंने नगर प्रवेश किया। गुरुदेव के अमृतोपम जोशीले प्रथम प्रवचन ने धर्म-ध्यान की सुरसरि प्रवाहित कर दी, जनता बहुत प्रभावित हुई। यहाँ तक कि कभी प्रवचनों में न आने वाले सेठ सा. श्री कल्याणमल जी भी प्रतिदिन प्रवचनों में आने लगे। चातुर्मास के प्रारम्भ में ही धर्मनिष्ठ श्रावकों ने महाराज साहब से उपधान तप करवाने की प्रार्थना की। महाराज साहब ने स्वीकृति देने के साथ ही श्रावकों से पूछ लिया–इस तप की आराधना के लिए आप लोगों ने कहाँ और कैसा स्थान चुना है ?

श्रावकगण अभी स्थान के बारे में सोच ही रहे थे कि सेठ कल्याणमलजी साहब ने तुरन्त खड़े होकर विनम्र स्वर में कहा—"भगवन् ! उपधान तप का कार्यक्रम विधि-विधान आदि कटले में (जहाँ उनकी बहुत लम्बी-चौड़ी जगह थी और वहीं वे निवास भी करते थे—वर्तमान में इस जगह पर अग्रवाल कॉलेज है) हो तो बहुत सुन्दर रहे। मैं अपने को बहुत सौभाग्यशाली समझूँगा।" सेठ कल्याणमलजी के इन शब्दों को सुनकर सभी उपस्थित जन चकित रह गये। जो व्यक्ति कुछ दिन पहले तक धर्म के नाम से दूर भागता था, वह ऐसी प्रार्थना कर रहा है। खैर, संघ ने सहमति दी और महाराज साहब ने भी अनुमति दे दी। सेठ कल्याणमलजी सा. हर्षित हो गये और उपधान के लिये तैयार भी। घर पहुँचे और परिचतों को उन्होंने जब यह सब बताया तो पहले तो किसी को विश्वास ही नहीं हुआ, और जब विश्वास हुआ तो सभी हर्षित हुए। अपने पति की इस बदली प्रवृत्ति को देखकर सज्जनकुमारीजी के तो हर्ष का ठिकाना न रहा।

मनुष्य की प्रवृत्ति को बदलते देर नहीं लगती, चाहिए सिर्फ प्रेरक निमित्त। सेठ सुददर्शन का निमित्त पाकर अर्जुनमाली बदल गया था और भगवान् महावीर की संगति से मुक्त हो गया था। वास्तविक स्थिति यह है कि मनुष्य की इच्छा-शक्ति प्रबल होनी चाहिए। यह शक्ति होती तो सब में है, पर सुप्त या अर्धसुप्त दशा में पड़ी रहती है। जैसे ही कोई प्रबल निमित्त मिला कि यह शक्ति जागृत हो जाती है। पूज्य मणिसागरजी म.सा. के रूप में ऐसा ही प्रबल निमित्त सेठ कल्याणमलजी को मिला और उनकी प्रवृत्ति धर्माभिमुख हो गई।

आसोज शुक्ला 10 के मंगलमय शुभ दिवस में पूज्य गुरुदेव मणिसागरजी म. सा., बालमुनि श्री विनयसागरजी म. सा. तथा तत्रस्थ विराजित जापपरायण प्रव. महोदया श्री ज्ञानश्री जी म. सा., मधुर गायिका पूज्य श्री उपयोगश्रीजी म.सा., जैन कोकिला पूज्या श्री विचक्षणश्री जी म. सा. आदि की पावन निश्रा में उपधान तप शुरू हो गया। सेठ कल्याणमलजी ने भी अपनी धर्मपत्नी श्री सज्जन-कुमारीजी के साथ उपधान तप शुरू कर दिया।

उपधान एक कठिन तपस्या है जिसमें 51 दिनों तक, एक दिन उपवास और दूसरे दिन एकासना किया जाता है। तथापि सभी प्रसन्न थे, साथ ही चकित भी थे। लोग सोचते—जो व्यक्ति कभी नवकारसी भी नहीं करता, रात्रि भोजन का भी जिसके त्याग नहीं, ऐसा व्यक्ति कैसे इस कठिन तपस्या को पार लगायेगा? लेकिन श्री कल्याणमलजी ने सफलतापूर्वक उपधान तप की साधना तो की ही, एक दिन का भोजन भी आपकी ओर से हुआ। इसलिए कहा गया है कि सन्त-संगति काँच को भी हीरा बना देती है। मानव को सदा ही ज्ञानियों की, चारित्रात्माओं की संगति करनी चाहिए।

उपधान तप की पूर्णाहुति के दिन क्रमशः निकट आने लगे। अठाई महोत्सव, महापूजन आदि शुरू हुए। स्थानीय भजन-मण्डलियों ने प्रभु-पूजा में भक्तिपूर्ण सहयोग दिया। अन्तिम दिन कटले के विशाल प्रांगण में पू. गुरुदेव श्री और पू. साध्वीजी म. की निश्रा में हर्षोल्लास के साथ उपधान तप सम्पन्न हुआ।

सबसे अधिक उल्लास और हर्ष पू. सज्जनकुमारीजी के मन में था जिन्हें अब अपना लक्ष्य सहज और समीप दिखायी दे रहा था। उनकी तपाराधना इतनी सफलीभूत होगी, वे स्वयं आश्चर्यचकित थीं!

राग पर विराग की विजय

राग और विराग के पथ भिन्न दिशाओं में जाते हैं। दोनों के बीच सदा द्वंद्व की स्थिति बनी रहती है, न केवल मन और भावनाओं में अपितु व्यवहार में भी दोनों का मेल नहीं हो पाता। जहाँ एक है वहाँ से दूसरे को जाना होता है। श्री सज्जन कुमारी जी के मन की तीव्र वैराग्य भावना में सांसारिक आकर्षण का कोई स्थान नहीं था, किन्तु वे एक सम्भ्रान्त परिवार की कुलवधू थीं, अनेक सामाजिक नियमों और कुल-वंश की मर्यादाओं से बँधी हुयी थीं अतः उनकी विराग भावना साकार रूप नहीं ले पा रही थी। उधर श्री कल्याणमल जी गोलेच्छा ने पूरी धार्मिक भावना एवं उत्कृष्ट तपोनिष्ठा के साथ उपधान तप की साधना सफलतापूर्वक सम्पन्न कर ली थी; किन्तु वे अभी तक अपनी धर्म-पत्नी सज्जनकुमारी जी को दीक्षा की अनुमति देने का मन नहीं बना पाये थे। जब भी सज्जनकुमारी जी अपनी वैराग्य भावना उनके सामने व्यक्त करतीं तभी पारिवारिक वातावरण विषम बन जाता। वे मन ही मन सोचकर रह जातीं कि अभी काल-लब्धि नहीं आई है, समय परिपक्व नहीं हुआ है, चारित्रमोहनी का उदय है, इसीलिए दीक्षा में अन्तराय उत्पन्न हो रही है। किन्तु उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा था। यही सोचकर कि धीरे-धीरे वातावरण अनुकूल बनेगा। वे मन को समझा लेतीं :—

धीरे-धीरे रे मना ! धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ।।

आखिर अनुमति मिली

और, समय गुजरता रहा। कुछ ही दिनों बाद फल आने के आसार भी दिखाई देने लगे। अनुकूल सम्भावनाएँ नजर आने लगीं। हुआ यह कि वि. सं. 1998 के माघ मास में परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री आनन्दसागर सूरिजी म. सा. पूज्या प्रवर्तिनी शान्तरसनिमग्ना श्री ज्ञानश्री म.सा. को दर्शन देने हेतु जयपुर पधारे। श्री ज्ञानश्रीजी म. जयपुर में ठाणापति के रूप में विराजित थीं। परम श्रद्धेय सूरिजी म. सा. को जब श्री सज्जनकुमारी जी की दृढ़ वैराग्य-भावना की जानकारी हुई तो वे बहुत प्रसन्न हुए। वे सज्जनकुमारीजी के शांत, निश्छल व सौम्य स्वभाव, विद्वत्ता, कवित्व - शक्ति आदि से पूर्व परिचित थे, अतः उन्होंने स्वयं जयपुर पधार कर श्री कल्याणमलजी को दीक्षा की अनुमति देने की प्रेरणा करना उचित समझा।

जापपरायणा श्री ज्ञानश्रीजी म. सा., परोपकारिणी मंडलप्रमुखा उपयोगश्रीजी म. सा. आदि की सद्प्रेरणाओं और सत्प्रयत्नों तथा सेठ केसरीसिंहजी बाफना तथा सेठानीजी श्री गुलाबसुन्दरीजी, कोटा (भूआ सा.) के श्रम से सेठ कल्याणमलजी के मानस में परिवर्तन होने लगा था। गुरुदेव की प्रेरणा का शुभ परिणाम भी निकला। उनके मन में विचार घुमड़ने लगे—मैंने हर सम्भव प्रयत्न करके देख लिया लेकिन सज्जनकुमारीजी की वैराग्यभावना दृढ़ हैं। उनकी सांसारिकता में बिल्कुल रुचि नहीं है। आखिर कब तक उन्हें इस तरह रखा जा सकता है? व्यर्थ है रोकना। मैं क्यों अंतराय कर्म बाँधूं? अब तक उनको व्यर्थ ही रोकता रहा। यों विचार करते हुए अन्त में दीक्षा की अनुमति देते हुए उन्होंने कहा—"मेरी ओर से आज्ञा है। ये (सज्जनकुमारी जी) अपनी वैराग्य भावना पूर्ण करें, दीक्षा लें और साध्वी बनकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र में निरन्तर प्रगति करें।"

भागवती दीक्षा :

दीक्षा की अनुमति से सज्जनकुमारी जी को अत्यधिक हर्ष हुआ, आत्मिक सुखानुभूति हुई। उनकी भावना पूर्ण होने जा रही थी। दीक्षा का मुहूर्त निकलवाया गया। पंडित ने पंचांग देखकर आषाढ़ शुक्ला दूज का दिन शुभ बताया। दीक्षा-तिथि का निर्णय हो गया। तिथि का निर्णय होते ही पूज्यवर्या श्री उपयोग श्रीजी म. सा. ने वैराग्यवती सज्जनकुमारी जी को साधु प्रतिक्रमण प्रारम्भ करवा दिया, जिसे अपनी कुशाग्रबुद्धि से उन्होंने 5-6 दिन में ही पूर्ण कर लिया और 360 गाथाओं का पाक्षिक-सूत्र भी केवल दो ही दिनों में पूर्ण कर लिया। अब आपके पितृगृह तथा श्वसुरालय में दीक्षा की तैयारियाँ होने लगीं। आपके साथ ही वैरागिन चौथीबाई कोचर की भी दीक्षा निश्चित थी।

दीक्षा-दिवस आ पहुँचा। सज्जनकुमारी जी के लिए आज सोने का सूरज उगा था। उनके हृदय में ऐसी खुशी थी जैसे उनको अमूल्य मणि मिल गई है। उनकी रोम-राजि विलसित थी। रग-रग से वैराग्य का दिव्य-रस छलक रहा था।

प्रातःकालीन नित्य-नैमित्तिक क्रियाएँ; यथा—सामायिक, प्रतिक्रमण, माला, पाठ-सप्तस्मरण, भक्तामर आदि सम्पन्न कर, सांसारिक रीति-रिवाजों से निवृत्त हो, स्नान आदि से शुचिता धारणकर सज्जनकुमारी जी अपने निवास-स्थान पर ही दीक्षोपलक्ष्य में, स्वयं अपने द्वारा बनाये हुए लघु देरासरवत नूतन जिनमन्दिर में पूजा हेतु पधारीं। आज द्रव्य-पूजा का आखिरी दिन था, अतः बहुत ही भक्ति-भाव और उल्लास के साथ स्नान-पूजा सहित अष्ट प्रकारी पूजा की, उसके पश्चात् चैत्यवन्दनादि भाव-पूजा से आप निवृत्त हुईं।

मुमुक्षु की भावनाओं के ठीक विपरीत श्रावक समुदाय और परिजनों की भावनाएँ ऐसे अवसरों पर परिलक्षित होती हैं। एक के मन में संयम पथ पर बढ़ने का उत्साह और उल्लास होता है तो दूसरों के मन में उसको महोत्सव का स्वरूप देने की आतुरता। संसारी जीव सांसारिक वैभव-विन्यासों से ही अवसरों का समायोजन करते हैं। ठीक इसी प्रकार वैरागिन सज्जनकुमारीजी जहाँ संयम पथ पर अग्रसर होने को आतुर थीं। परिजन और श्रावक दीक्षा-महोत्सव को भव्यतम रूप देने को उत्सुक थे। वरघोड़े की तैयारियाँ हो रही थीं। हाथी, घोड़े, बैंडबाजों व गीतों की मधुर ध्वनियों व मंडल-विधान आदि से वरघोड़े की शोभा में चार चाँद लग रहे थे। धर्मशाला से वरघोड़ा प्रारम्भ हुआ। वैरागिन सज्जनकुमारी तथा चौथीबाई शिविकाओं में विराजमान थीं, दोनों ओर चमर ढुलाए जा रहे थे। दोनों वैरागिनें उदार हृदय से वर्षीदान देती हुई आगे बढ़ती जा रही थीं। हजारों लोग भव्यता से आकर्षित और चकित थे। जैनों के लिए यह अवसर अजाना नहीं था किन्तु, जैनेतर लोग तो बहुत ही आश्चर्य कर रहे थे। सभी ओर से 'अहोधन्यं', 'अहोधन्यं' की गूँज हर्षित हृदय से निकल रही थी। लोग मुक्तकण्ठ से जैन शासन की अनुमोदना कर पुण्य-लाभ ले रहे थे।

जुलूस जौहरी बाजार से होकर नथमलजी (सज्जनकुमारीजी के दादा-ससुर साहब) के कटले जा पहुँचा। हजारों लोग इकट्ठे हो गये; क्योंकि लोगों के लिए दीक्षा का प्रसंग नया ही था। सभी लोग देखने के लिए लालायित थे। कटले का विशाल प्राँगण जनमेदिनी से खचाखच भर गया था। जयपुर के आस-पास के लोग भी आये थे। शामियाना खचाखच भर जाने से लोग वृक्षों पर भी बैठे थे, इस आशा के साथ कि सम्पूर्ण दृश्य दिखाई दे।

पूर्व दिशा में लगभग दो फुट ऊँचा, पूरा लम्बा-चौड़ा स्टेज बना था। उसके ठीक बीचोंबीच भगवान् का 'समोसरण' था। ठीक सामने पूज्य गुरुदेव मणिसागरजी म.सा. एक ऊँचे पद पर विराजित थे। उसी ओर एक पड़े पट्टे पर प्रव. श्री ज्ञानश्रीजी म. सा., श्री उपयोगश्रीजी म. सा. आदि अपने साध्वीमंडल के साथ विराजित थीं। पूज्य गुरुदेव ने भगवान् महावीर की जयकार के साथ जनरव को शांत किया तथा क्रिया प्रारम्भ करवाई। सेठ श्री कल्याणमलजी एवं सर्व-संघ की सहमति से वैरागिन सज्जनकुमारीजी को उपस्थित जनसमूह के समक्ष चारित्रोपकरण शिरोमणी चारित्रालंकार रजोहरण प्रदान किया गया। दीक्षोपकरणों के साथ आप साध्वी-वेश धारण करने के लिए पार्श्व में चली गईं।

अब गुरुदेवश्री ने अपनी मधुर वाणी में त्याग, तप, संयम एवं दीक्षा के महत्त्व पर सारगर्भित प्रवचन दिया, जिसका संक्षिप्त हार्द इस प्रकार था :

'बन्धुओं ! जैन धर्म एव संस्कृति में श्रमण-जीवन को आदर्श माना गया है । यद्यपि श्रावक और श्रमण दोनों के जीवन का लक्ष्य त्याग है, तथापि श्रेष्ठता और ज्येष्ठता में श्रमण अग्रणी हैं । श्रावक को श्रमणोपासक कहा गया है क्योंकि वह श्रमणों के त्याग-तपस्यामय जीवन का अनुकरण करने वाला होता है । श्रमण-परम्परा का स्वाध्याय, ध्यान, त्याग व तप, ये चार चरण हैं । इन चारों का संगम ही श्रमण होता है ।

श्रमण दीक्षा ग्रहण करना कोई सरल कार्य नहीं है । श्रमण व्रतों का पालन खांडे की धार पर चलना है । जिसका चित्त समाहित है, परित्यक्त भोगों को पुनः भोगने की जिसमें इच्छा नहीं रह गई है, जो षट्काय (प्राणिमात्र) का प्रतिपालक है और पंचास्रवों से पूर्णतया विरक्त है, सम्यग्-ज्ञान-दर्शन चारित्र में जिसकी दृढ़ रुचि व प्रतीति है, वही श्रमण दीक्षा ग्रहण करता है और साधुत्व का पालन कर सकता है ।"

इस प्रकार आपने लम्बी देशना फरमाई । इसी प्रकार पू. साध्वीजी म. सा. ने अपने उद्‌गार व्यक्त किये ।

नामकरण :

सज्जनकुमारीजी श्वेत वस्त्रों में ओघा, डांडा व पात्रों से सज्जित होकर मंडप में पधारीं । उस समय वे सरस्वती के समान प्रतिभासित हो रही थीं । सभी की दृष्टि उनकी ओर उठ गई । क्रमशः आगे की क्रिया प्रारम्भ हुई । पूज्य गुरुदेव ने सज्जनकुमारीजी को प्रवर्तिनीवर्या श्री ज्ञानश्रीजी म. सा. की शिष्या घोषित किया और नाम दिया--सज्जनश्री (इस नामकरण के पीछे यह भी भावना थी कि आपके द्वारा रचित 250-300 स्तवन-सज्झाय आदि "सज्जन" नाम से ही प्रसिद्ध थे और इन स्तवनों की रचना आपने 15-16 वर्ष की आयु से शुरू कर दी थी । साथ ही नामानुरूप आपका जीवन भी था ।)

भागवती दीक्षा के बाद आपने संक्षेप में दीक्षित होने की खुशी प्रगट की । सज्जनकुमारीजी के साथ ही चौथीबाईजी कोचर की दीक्षा सम्पन्न हुई । उनका नाम विबुधश्री रखा गया और उनको बसन्तश्रीजी म.सा. की शिक्षा घोषित किया गया । सभी ने नूतन साध्वीजी की प्रभावना लेकर अपने-अपने स्थान के लिए प्रस्थान किया । श्रावक-श्राविकाओं तथा साध्वीजी म. के साथ नूतन साध्वी सज्जनश्रीजी दादाबाड़ी पधारीं । उस दिन आपके चौविहार उपवास था । आप जैसी विदुषी साध्वी को पाकर गुरुवर्याजी को तो हर्ष था ही, समस्त साध्वीमंडल भी पूर्ण हर्षित था ।

सं. 1999 का प्रथम वर्षावास–जयपुर

यद्यपि शास्त्रीय विधान के अनुसार दीक्षा के बाद ही विहार कर देना चाहिए; किन्तु आप विहार न कर सकीं क्योंकि आषाढ़ शुक्ला 2, सं. 1999 को आपकी दीक्षा हुई और वर्षावास से पहले ही बरसात प्रारम्भ हो गई; अतः आपका प्रथम वर्षावास गुरुवर्या पू. प्र. श्री ज्ञानश्री जी म. सा. के सान्निध्य में जयपुर में ही हुआ। इस वर्षावास में आपका शास्त्रीय अध्ययन प्रारम्भ हुआ। साधु-प्रतिक्रमण आदि तो आप पहले ही सीख चुकी थीं, अतः शेष साधु क्रियाएँ सीखीं और दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन किया। पं. मांगीलालजी से अवशिष्ट कौमुदी, अमरकोश तथा रघुवंश आदि भी संपूर्ण किए।

दीक्षा ग्रहण करने के 9 दिन उपरान्त, आषाढ़ शुक्ला 11 को बड़े दादा गुरु श्री जिनदत्तसूरिजी महा. के जयन्ती समारोह के शुभ अवसर पर आपने सार्वजनिक प्रवचन दिया। यद्यपि सार्वजनिक प्रवचन का वह आपका पहला मौका था तथापि वह प्रवचन इतना प्रभावशाली रहा कि श्रोतागण झूम उठे। साध्वीवृन्द भी आपकी व्याख्यान कला से चकित रह गया।

पू प्र. ज्ञानश्री जी म. का स्थिरवास

पू. प्रवर्तनी श्री ज्ञानश्रीजी म. सा. की पिछले दो-तीन वर्षों से शारीरिक अस्वस्थता चल रही थी और वे जयपुर ही विराज रही थीं। अस्वस्थता इतनी अधिक थी कि वे एक-दो मंजिल भी जातीं तो 3-4 डिग्री ज्वर हो जाता और उन्हें वापिस लौटना पड़ता। साधु-साध्वी के लिए भगवान की आज्ञा है—"**विहार चरिया मुणीणं पसत्था**"—मुनियों/साध्वियों के लिए सतत् विहार करना ही प्रशस्त है। एक दोहा भी इस विषय में प्रसिद्ध है—

बहता पानी निर्मला, बंधा गंदेला होय।
साधु तो रमता भला, दोष न लागे कोय॥

इसी भावना से पूज्या प्रवर्तिनी म. सा. शरीरबल क्षीण होते हुए भी आत्म-बल के सहारे विहार करतीं, लेकिन 1-2 मंजिल चलते ही उनका शरीर जवाब दे जाता और वापिस लौटना पड़ता। इस बार भी उन्होंने विहार का प्रयास किया; किन्तु वही स्थिति सामने आ गई। बुखार चार-पाँच डिग्री हो गया। चलने और आगे बढ़ने की सामर्थ्य न रही। यद्यपि जयपुर संघ आपश्री से पहले ही कई बार ठाणापति (स्थिरवास) विराजने की प्रार्थना करता रहा था, लेकिन इस बार तो श्रावक संघ का आग्रह बहुत बढ़ गया। प्रमुख श्रावक-श्राविकाओं ने यहाँ तक कह

दिया कि आपश्रीजी जब तक ठाणापति विराजने की स्वीकृति नहीं देंगी तब तक हम लोग मुँह में पानी भी नहीं लेंगे। आखिर अपनी शारीरिक अस्वस्थता और श्रावक-संघ के आग्रह भरे विनय को सम्मान देकर आपको ठाणापति विराजने की स्वीकृति देनी ही पड़ी।

इस प्रकार पू. प्र. श्री ज्ञानश्री जी म. सा. के लगभग 30 वर्षावास जयपुर में ही ठाणापति के रूप में हुए। ठाणापति रहने पर भी उनका किसी के प्रति कोई लगाव नहीं था, यहाँ तक कि अपनी शिष्याओं के प्रति भी नहीं। उनकी इतनी इच्छा अवश्य रहती कि जहाँ भी मैं रहूँ वहाँ व्यवस्थित रूप से व्याख्यान - चौपी आदि होते रहने चाहिएँ। इस दृष्टि से किसी योग्य साध्वीजी को अपने पास अवश्य रखती थीं।

म. सा. की चारित्र के प्रति अनुपम निष्ठा थी। नित्य-प्रति आप प्रातः दो-ढ़ाई बजे उठकर माला-ध्यान-जप-स्वाध्याय आदि धर्म-प्रवृत्तियों में लग जातीं। नवकार-मंत्र अथवा अजपाजाप तो सतत चलता ही रहता था। आपकी अप्रमत्त दशा अनुकरणीय थी। आपकी सरलता, सौम्यता भी देखते ही बनती थी। प्रवर्तिनी पद (सर्वोच्च पद) पाकर भी कभी आदेश की भाषा का प्रयोग नहीं करती थीं। आपको वचनसिद्धि भी प्राप्त थी। जो उनके मुख से निकल जाता, अवश्य पूरा होता। आपकी निर्दोष जीवनचर्या को देखकर चौथे आरे की साध्वियों का स्मरण हो आता था। ऐसी महान् गुरुवर्या की निश्रा में चरितनायिका सज्जनश्रीजी का प्रथम वर्षावास हुआ था।

बड़ी दीक्षा के लिए प्रस्थान

वर्षावास पूर्ण होते ही पूज्या प्रवर्तिनी जी ने साध्वी श्री सज्जनश्री जी को बड़ी दीक्षा कराने हेतु परोपकारिणी श्री उपयोगश्री जी म. सा., श्री बसन्तश्री जी म.सा. तथा उनके साथ ही दीक्षिता श्री विबुधश्रीजी म. आदि 7 साध्वियों को लोहा-वट-फलौदी की ओर प्रस्थान करवाया। सभी साध्वीजी म. की हार्दिक इच्छा प्रत्यक्ष प्रभावी दादा श्री जिनकुशल गुरुदेव के दर्शनार्थ मालपुरा जाने की थी, अतः मालपुरा की ओर विहार किया गया। साध्वी-मण्डल सातवें दिन पूज्य गुरुदेव के चरणों में पहुंचा, दर्शन किये। सभी के चित्त को प्रसन्नता के साथ हार्दिक शांति की अनुभूति हुई। दादाबाड़ी से निकट ही मालपुरा गाँव था, वहाँ के श्रावक भी दर्शन-वन्दन हेतु आ जाते, रात्रि में कथा-कहानी तथा प्रातः के प्रवचन होते। इस प्रकार धर्म-जागरण करते हुए वहाँ एक मास तक रहे। वहाँ से आपने टोडा, केकड़ी की ओर प्रस्थान किया।

प्रथम यात्रा—नये अनुभव

मार्ग के कई ग्रामों का आपने स्पर्श किया। आपकी मधुरवाणी से जनता प्रभावित होती तथा व्याख्यान-सज्झाय आदि का सुन्दर माहौल बनता तथा जनता की धर्म में रुचि बढ़ती। कई लोगों ने चलते-फिरते (त्रस-जीव) जीवों की संकल्प-पूर्वक हिंसा और मद्य-मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया। कई बहनों ने जूएं मारने तथा गाली-गलौच व अपशब्दों को बोलने का त्याग किया। पौष मास तो टोडा-केकड़ी में ही पूर्ण हो गया। माघ मास में सरवाड़, सराणा, ठाँठोरी, मसूदा आदि छोटे-छोटे ग्रामों में विचरण किया।

यद्यपि इन क्षेत्रों में जैनों की संख्या काफी थी, पर बहुत दिनों से साधु-साध्वियों का विचरण न होने से इनके धार्मिक संस्कार लुप्तप्रायः हो गये थे। कुछ क्षेत्रों में साधुमार्गी आम्नाय का प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर हुआ। इस अन्तराल का परिणाम यह हुआ कि मन्दिर के प्रति लोगों को अश्रद्धा हो गई। दर्शन, पूजन की बात तो बहुत दूर, लोगों ने मन्दिर जाना ही छोड़ दिया था। मन्दिरों के कपाट ही बन्द हो गये। इतना अवश्य था कि कोई मन्दिरमार्गी साधु-साध्वी आ जाते तो किवाड़ खोलकर उन्हें दर्शन करा देते थे, लेकिन वे भी यदाकदा ही आते, अतः मन्दिरों के किवाड़ अधिकांशतः बन्द ही रहते। स्थिति यहाँ तक आ गई थी कि मन्दिर जीर्ण-शीर्ण हो गये, धूल जम गई, अन्दर मकड़ियों ने जाले बुन दिये, चमकादड़ों ने निवास बना लिये, बिच्छू आदि उत्पन्न हो गये, सूक्ष्म जीवों की भरमार हो गई।

सज्जनश्री जी आदि साध्वी-मंडल का जब इन क्षेत्रों में विचरण हुआ तो लोग आपस में काना-फूसी करने लगे—बिना मुहँपत्ति वाले साधु-साध्वीजी महाराज भी होते हैं क्या? वन्दन करने का तो प्रश्न ही नहीं, कई लोग तो खिल्ली भी उड़ाते।

ऐसी विषम परिस्थितियों में साध्वी-मण्डल ने उन ग्रामों में विचरण किया। लोगों को प्यार से समझाया, ओजस्वी प्रवचन दिये, रुचिकर कहानियाँ और मधुर कण्ठ से राग-रागिनियाँ, स्तवन, सज्झाय, चौपी आदि सुनाये। इन प्रयासों से वहाँ की जनता का भ्रम दूर हुआ। वे यथार्थ से परिचित हुए। मन्दिरों के दरवाजे खुले तो वहाँ की दशा देखकर हृदय दुःख से भर गया। सफाई आदि के बाद लोग मन्दिर आने लगे, मन्दिरों की रौनक पुनः लौटी। प्रतिदिन प्रातःकाल भक्तामर, मांगलिक आदि का कार्यक्रम चलने लगा। लोग दर्शन-विधि भी भूल गये थे। इन्हें विधिपूर्वक दर्शन की विधियाँ सिखाई और कइयों को तो कण्ठस्थ भी कराईं। इनकी रुचि बढ़ी तो बहुत लोग पूजन-सेवा भी करने लगे। बहुत लोगों ने पुनः मन्दिरमार्गी

आम्नाय को स्वीकार कर लिया और दादा गुरुदेव श्री जिनकुशल सूरि के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर मालपुरा जाने को उत्सुक भी हुए ।

जनता यहाँ तक प्रभावित हुई कि चातुर्मास के लिए आपसे विनती करने लगी; किन्तु आप को बड़ी दीक्षा के लिए लोहावट-फलौदी पहुँचना था, इसलिए धर्म-जागरण और धर्म की प्रभावना करती हुयीं आप आगे बढ़ती गयीं तथा मार्गस्थ ग्रामों में शासन प्रभावना करती हुयीं ब्यावर, जैतारण, बिलाड़ा आदि में सात-सात, आठ-आठ दिन रुककर कापरड़ा तीर्थ पहुंचीं और वहाँ प्रवास के बाद फाल्गुन सुदी 11 को जोधपुर (सूर्यनगरी) पहुँचीं ।

सूर्यनगरी में :

जोधपुर में साध्वी सज्जनश्रीजी की नानी-ससुराल थी । मूथाजी, जो इनके नाना-ससुर थे, का नगर के बाहर बनवाया हुआ एक मन्दिर है जो 'मूथाजी के मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है । साध्वी-मंडल उस मन्दिर में ही कुछ दिन के लिए ठहरा । प्रवचन आदि का वहाँ खूब प्रभाव रहा । मूथा परिवार ने भरपूर लाभ लिया ।

वहाँ स आप सभी शहर में केशरियानाथ जी की धर्मशाला में विराजित पूज्यवर्या श्री लालश्री जी म. सा., श्री धर्मश्री जी म. सा. आदि (जो वहाँ ठाणापति के रूप में विराज रही थीं) और श्री फूलश्री जी म. सा. के दर्शन हेतु पधारीं । मधुर मिलन हुआ । उन्होंने आप लोगों का हर्षपूर्वक स्वागत किया । यद्यपि वहाँ आपका 3-4 दिन रुकने का विचार था, किन्तु पूज्या साध्वियों के आग्रह तथा श्रावकों की भावभरी विनती ने नवपद-ओली तक रुकने को विवश कर दिया ।

आपकी प्रेरणा से कई श्रावकों ने नवपद-ओली तप की आराधना शुरू की । प्रातः 'श्रीपाल चरित्र' श्री सज्जनश्रीजी सुनातीं और मध्याह्न में ओली की क्रिया आप तथा पूज्या उपयोगश्रीजी विभिन्न राग-रागनियों से करवातीं । वातावरण बहुत ही आनन्दमय बन जाता । सभी अध्यात्मरस में डूब जाते । धर्म का रंग ऐसा जमा कि जोधपुर के श्रावक-श्राविकाओं ने चातुर्मास के लिए पुरजोर विनती की; किन्तु आपश्री ने पहले ही फलौदी चातुर्मास की स्वीकृति दे दी थी अतः जोधपुर का चातुर्मास स्वीकृत नहीं हो सका । लगभग सवा महीना जोधपुर से तिंवरी-ओसियां तीर्थ की यात्रा करती हुयीं आपका तपस्वी बापजी की पुण्य भूमि लोहावट पधारना निश्चित हुआ । पू. प्रेमश्रीजी म. सा., पूज्य पवित्रश्रीजी म.सा. आदि वहाँ विराजित थीं । सबके मधुर मिलन हुए । कुछ दिन वहाँ रुककर आप ने फलौदी की ओर कदम

बढ़ाए। मार्ग में पलाना स्टेशन, जो फलौदी से मात्र दो मंजिल दूर था, वहाँ धर्मशाला में ठहरीं।

फलौदी संघ को ज्यों ही मालूम हुआ कि आप पलाना पधार गयी हैं तो श्री गुलाबराय जी सा. बरड़िया (पू. श्री उपयोगश्रीजी के सांसारिक जीवन के पति) ने वहाँ स्वामि-वात्सल्य रखा। आप के दर्शनार्थ उमड़ आई जनता का हार्दिक स्वागत-सत्कार किया तथा भोजन आदि से तृप्त किया। पलाना स्टेशन पर लगभग 500 व्यक्तियों का स्वामी-वात्सल्य था।

फलौदी चातुर्मास (सं. 2000)

सद्ज्ञान गोष्ठी कराते हुए साध्वी-मंडल का फलौदी की सीमा में पदार्पण हुआ। जय-जयनाद से हर्षोल्लासपूर्वक नगर-प्रवेश कराया गया। बैण्ड-बाजों की मधुर ध्वनियों के साथ आप सब धर्मशाला में पहुँचीं। वहाँ मंगल प्रवचन हुआ, जो बहुत प्रभावशाली रहा। संघ के आग्रह पर आपने प्रतिदिन व्याख्यान देना स्वीकार किया। वहाँ से आप शीतलपुरा के उपाश्रय में पधारीं। वहाँ विराजित पू. श्री ताराश्री जी म. सा., हितश्री जी म. सा. आदि के दर्शन तथा विधिपूर्वक वन्दन करके आशीर्वाद प्राप्त किया।

उन दिनों फलौदी एक प्रकार से धर्मक्षेत्र बना हुआ था। नगर के लगभग 1200 परिवार और सभी धार्मिक, नौ अत्यन्त सुन्दर विशाल जिनमन्दिर तथा चार विशाल दादाबाड़ियाँ जिनमें भक्तजनों की भीड़ लगी रहती। उपाश्रय भी अनेक, जिनमें साधु-साध्वी विराजते और श्रावक-श्राविकाओं की धर्मक्रियाओं से वे गूँजते रहते। फलौदी में अनेक भव्यात्माओं ने चारित्र धर्म स्वीकार किया है तथा आत्म-कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण करके जिनशासन को दीपाया है। उन्हीं में मण्डलाधिनायिका परमश्रद्धेया पुण्यशालिनी पुण्यश्रीजी म.सा., उपयोगीश्रीजी म.सा. भी थीं। इन पूज्यवर्याओं की तपःपूत पावन जन्मभूमि-फलौदी (फलवर्द्धि) नगरी में आकर पूज्या सज्जनश्रीजी ने स्वयं को धन्य माना।

बड़ी धर्मशाला में प्रातः साढ़े आठ से साढ़े नौ बजे तक आप प्रवचन फरमातीं और मध्याह्न में पूज्या उपयोगश्री जी म.सा. 'महाबल-मलया' की चौपी मधुर स्वर में सुनातीं। प्रवचन और चौपी सुनकर श्रोतागण बहुत प्रभावित होते। क्रमशः प्रवचन प्रभा की रश्मियाँ विकीर्ण होने लगीं। जो एक बार सुन लेता, बार-बार आता। भीड़ बढ़ने लगी। बड़ी धर्मशाला का विशाल हॉल भी श्रोताओं से खचाखच भर जाता।

आपकी प्रवचन कला की विशेषता थी कि आप शास्त्रीय तत्त्व के अपने वर्ण्य विषय को उदाहरणों और पटकथाओं से पुष्ट करतीं। आपकी भाषा प्रांजल और प्रवाहमय होती। वाणी में ओज-तेज-संप्रेषणीयता तथा भावों को वहन करने की क्षमता थी। यही कारण था कि लोग आपका व्याख्यान सुनने उमड़े आते थे।

फलौदी में उन दिनों अनेक तत्त्वरसिक, आगमज्ञ श्रावक भी थे, उनमें फूलचन्द जी झाबक, मेघराजजी मुणोत, रेखचन्द जी लूँकड़, कँवरलालजी गोलेच्छा आदि मुख्य थे। ये लोग प्रवचन तो सुनते ही थे, अतिरिक्त समय में तत्त्व-चर्चा भी करते और प्रश्नों का शास्त्रीय समाधान पाकर और भी प्रभावित होते।

नगर की अनेक कन्याएँ भी आपके पास प्रतिक्रमण सीखने आतीं और उपाश्रय में ही रात्रि शयन करतीं। इन सब धार्मिक प्रवृत्तियों और वातावरण का ऐसा प्रभाव हुआ कि दो बहनों में सहसा वैराग्य का अंकुर उदित हुआ। उनमें एक थीं सुखलालजी गोलेच्छा की सुपुत्री एवं श्री लालवानीजी की पुत्रवधू इन्द्रादेवी। ये सद्यः परिणीता थीं और 15 वर्ष की अल्पायु में सांसारिक भोगों को त्यागकर संयमी जीवन ग्रहण करने के लिए उद्यत हो गई थीं। दूसरी थीं—श्रीमान् सोहनराज जी सा. झाबक की सुपुत्री पुष्पाकुमारी। ये समुदाय प्रमुखा पूज्या श्री चम्पाश्री जी की शिष्या घोषित हुईं और उनका दीक्षोपरान्त नाम दिया गया—जितेन्द्रश्री जी। विनय-वैयावृत्य करती हुई आज भी निरन्तर आप अपना जीवन सफल बना रही हैं।

इसी चातुर्मास में अभिवृद्धिरूप पंचरंगी तप, सामूहिक आयम्बिल, एकासन, अठाई, इग्यारह, पन्द्रह, क्षीरसागर, गौतम पात्र, आदि अनेक प्रकार की तपस्याओं की झड़ी लग गई। इस प्रकार फलौदी चातुर्मास सभी दृष्टियों से पूर्ण सफल रहा तथा संघ की प्रभावना में आपके कारण चार चाँद लग गये।

आचार्यप्रवर का फलौदी आगमन

उसी समय (वि. सं. 2000 में) आचार्य सम्राट् श्रीमज्जिनहरिसागर सूरीश्वर जी म. सा. का चातुर्मास सुप्रसिद्ध तीर्थ जैसलमेर में था। चातुर्मास पूर्ण कर आप फलौदी पधारे। श्रीसंघ ने बहुत ही उत्साहपूर्वक पूज्येश्वर का नगर-प्रवेश कराया। यद्यपि गुरुदेव का लक्ष्य ज्ञान-भण्डार को सुव्यवस्थित कराने के लिए लोहावट पधारना था; किन्तु भक्तों के अत्याग्रह के कारण कुछ दिन आप फलौदी ठहरे। व्याख्यान का क्रम चालू किया। प्रवचन का लाभ सज्जनश्रीजी आदि साध्वी-मंडल ने भी लिया। संघ ने पू. गुरुदेव से होली चातुर्मास फलौदी में ही करने की भावभरी विनय की, किन्तु पू. गुरुदेव को लोहावट जाना था और पू. सज्जनश्रीजी की बड़ी दीक्षा

भी करवानी थी; अतः बड़ी दीक्षा के लिए फाल्गुन शुक्ला 5 का दिन निर्णीत कर आप लोहावट पधार गये।

पू. उपयोगश्री जी म. सा. को भी बड़ी दीक्षा के प्रसंग से ही लोहावट जाना था; किन्तु अभी दो महीने बाकी थे। फिर, पू. सज्जनश्री जी पं.श्री ब्रह्मदत्तजी से 'तिलकमंजरी महाकाव्य' का अध्ययन कर रही थीं और जनता का भी अत्यधिक आग्रह था; अतः साध्वी-मंडल फलौदी में ही विराजता रहा।

इसी बीच एक वयःस्थविरा साध्वीजी असाध्य रुग्ण हो गईं। पू. सज्जनश्री जी में सेवा-वैय्यावृत्य की भावना प्रारम्भ से ही अधिक रही है, ग्लान-रुग्ण की सेवा को वे अपना पुनीत कर्तव्य मानती हैं, अतः आप वयःस्थविरा रुग्ण साध्वी जी की सेवा में तन-मन से लग गईं।

लोहावट की ओर

फाल्गुन मास शुरू हो गया था तथा अध्ययन भी प्रायः सम्पूर्ण था, अतः तत्र विराजित साध्वियों से आज्ञा लेकर आपने लोहावट की ओर प्रस्थान किया। आपके साथ दीक्षित विबुधश्री जी की बड़ी दीक्षा भी होनी थी, साथ ही अन्य सात साध्वियों की भी बड़ी दीक्षा का कार्यक्रम था। वीरश्रीजी म.सा. व हेमश्रीजी को दशवैकालिक के योगोद्वहन करने थे। इस प्रकार 10 साध्वीजी महाराज योगोद्वहन करने वाली थीं। शुभ दिन से योगोद्वहन प्रारम्भ हो गये। इस उपलक्ष्य में दो अष्टान्हिका महोत्सव हुए, अर्थात् योगोद्वहन के साथ ही पूजाओं का क्रम भी प्रारम्भ हो गया। प्रभु-भक्ति का सुन्दर रसप्रद वातावरण बन गया। सज्जनश्रीजी व उपयोगश्रीजी म.सा. को पूजाओं का बहुत शौक था। जब आप वीणा-जैसे मधुर स्वर में पूजा गातीं तो जन-समूह भक्ति-रस में निमग्न होकर झूम उठता।

मंगलमयी बड़ी दीक्षा

जिस उपलक्ष्य में यह महोत्सव हो रहा था, 'बड़ी दीक्षा' का वह शुभ दिन, फाल्गुन शुक्ला पंचमी, आ पहुँचा। सभी योगोद्वाहिकी साध्वीजी केशर के छपे हुए कपड़े पहनकर गुरुवर्या और गुरु-बहनों के साथ बड़ी दीक्षा के लिए निश्चित स्थान चम्पाबाड़ी में पहुँचीं। चम्पाबाड़ी लोहावट ग्राम के बाहर है जहाँ पूज्य गुरुवरों एवं तपस्वीवर पूज्य छगनसागर जी म. सा. की चरणपादुकाएँ और मूर्तियाँ विद्यमान हैं। इस पावन स्थल में लोगों की भीड़ पहले से ही मौजूद थी। जयपुर, जोधपुर, फलौदी आदि से बड़ी दीक्षा वाली साध्वीजी के परिजन व अन्य श्रावक-श्राविकाएँ भी बड़ी संख्या में आये थे। लोहावट श्री संघ ने भी इस विशाल समारोह में मुक्तहस्त से द्रव्य

का सदुपयोग कर पुण्यानुबन्धी पुण्य का उपार्जन किया तथा वि.सं. 2000, फाल्गुन शुक्ला 5 को परम श्रद्धेय शासन सम्राट् श्रीमज्जिनहरिसागरसूरीश्वरजी के वरद् हस्त से बड़ी दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

बड़ी दीक्षा के उपरान्त साध्वी-मंडल ने पू. गुरुवर्या के चरणों में पहुँचने के लिए जयपुर की ओर कदम बढ़ाये। मार्ग में ओसियाँ तीर्थ के दर्शन किये और सीधे मेड़ता रोड, पुष्कर होते हुए अजमेर पहुँचे। इधर पू. चम्पाश्री म. सा, श्री धर्मश्री जी म. सा. आदि जयपुर चातुर्मास करके दूई-दाँतरी होते हुए किशनगढ़ पहुँच चुके थे। पू. उत्तमश्रीजी म. सा. का वर्षी तप चल रहा था। किशनगढ़ श्रीसंघ का ऐसा आग्रह था कि तप का पारणा वहीं हो, अतः आप वहीं विराज रही थीं। सज्जनश्रीजी आदि साध्वियाँ भी किशनगढ़ श्री संघ के अत्यधिक आग्रह के कारण पारणा होने तक वहीं रुकीं। पारणा के पश्चात ही उन्होंने जयपुर की ओर प्रस्थान किया।

इसी क्रम में सं 2001 की वैशाख शुक्ला 6 को दाँतरी ग्राम में श्री सुख लाल जी गोलेच्छा की सुपुत्री इन्द्राकुमारीजी की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। उन्हें राजेन्द्रश्री जी नाम देकर पू. उपयोगश्री जी म. सा. की शिष्या घोषित किया गया। दाँतरी से नूतन दीक्षिता साध्वी श्री राजेन्द्रश्री जी को साथ लेकर आप जयपुर पधारीं।

□

संयम पथ पर बढ़ते चरण

संयम पथ को काँटों से भरा—कंटकाकीर्ण पथ कहा गया है। अनेक दुरूह परिषहों से सम्पृक्त बताते हुए संयमी जीवन को अति दुष्कर माना गया है; किन्तु जिनके मन में तीव्र वैराग्य भावना, संसार से विरक्ति और संयमी जीवन में पूर्ण आस्था भरी हो उनके लिए वह कंटकाकीर्ण पथ पुण्य-पथ बन जाता है। श्रमण का हर चरण आनन्द की अनुभूति करता हुआ आगे बढ़ता है और काँटे फूल बनकर उसकी अगवानी करते हैं। ऐसा ही सात्विक उत्साह था पूज्या सज्जनश्री जी के मन में संयम के प्रति।

विक्रमी संवत् की इक्कीसवीं सदी प्रारम्भ हो चुकी थी। बड़ी दीक्षा के साथ साध्वी श्री सज्जनश्री जी ने संयम-साधिका का पूर्ण स्वरूप ग्रहण कर लिया था। संयम पथ पर आपके प्रथम पड़ाव का गौरव मिला जयपुर नगर को, जहां आपने वैराग्य के संस्कार, शिक्षा आदि प्राप्त किये थे।

जयपुर चातुर्मास (सं. 2001)

पूज्या सज्जनश्री जी का यह चातुर्मास पूज्या गुरुवर्या श्री ज्ञानश्रीजी म.सा. के सान्निध्य में हुआ। इस चातुर्मास के पश्चात् सेठ श्री केसरीमलजी बाफना ने अगला चातुर्मास कोटा नगर में करने की विनती की। सेठ-साहब पू. सज्जनश्री जी के फूफी-श्वसुर थे तथा विवाह के पश्चात् आपको उन्हीं के यहाँ संवेगीधर्म की प्राप्ति हुयी थी तथा आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ था। अन्ततः, होली चातुर्मासी के समय कोटा चातुर्मास की स्वीकृति दे दी गई।

कोटा चातुर्मास (सं. 2002)

पू. प्रवर्तिनीजी म. सा. की आज्ञा से मण्डल संचालिका उपयोग श्रीजी म.सा., सज्जनश्री जी म.सा., सुमनश्री जी म.सा., राजेन्द्रश्री जी म.सा. आदि मार्ग के अनेक स्थानों को स्पर्श कराते हुए कोटा नगर जा पहुँचे। कोटा श्रीसंघ एवं सेठ श्री केसरीसिंह जी बाफना ने आपका भावभरा स्वागत किया। हर्षोल्लास एवं शाही बैंड-बाजों के साथ आपका नगर प्रवेश कराया। चातुर्मास प्रारम्भ होने के साथ ही व्यख्यान एवं तपस्याओं की झड़ी लग गई। अठाई महोत्सव, साधर्मीवात्सल्य आदि भी खूब हुए। यह चातुर्मास पूर्णतः सफल रहा।

नागेश्वर में तीर्थोद्धार

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् नूतन दीक्षिता साध्वी श्री राजेन्द्रश्रीजी की बड़ी-दीक्षा के लिए सबको सैलाना पहुँचना था, अतः कोटा से प्रस्थान कर मानपुर-मन्दसौर-जावरा होता हुआ साध्वीमंडल नागेश्वर पहुँचा। नागेश्वर में तीर्थमण्डन प्रभु पार्श्वनाथ की मूर्ति विराजित है। उन दिनों उसकी पूजा एक संन्यासी सिंदूर और तेल विलेपन से किया करता था जो जैन पूजा-पद्धति नहीं होने के अलावा तीर्थंकर प्रतिमा की घोर आशातना थी। इस आशातना को देखकर गुरुवर्याश्री आदि को घोर दुःख हुआ। दो-तीन दिन सब वहीं रुके तथा श्रावकों को बुलाकर पूरी जानकारी ली। उन्होंने बताया—यह करतूत उस सन्यासी की ही है, वही ऐसी पूजा करता है, किसी की भी नहीं सुनता, मन्दिर की 709 बीघा जमीन का मालिक भी वही बना हुआ है। यह सब जानकर साध्वीजी का चित्त और भी खिन्न हो गया। आस-पास के ग्राम निवासियों को बुलवाकर स्थिति समझाई गई। आपकी प्रेरणा से आखिर उनमें धार्मिक उत्साह जागा और सभी ने तीर्थस्थल का उद्धार करने का संकल्प किया और देखते-देखते उस तीर्थ का उद्धार शुरू हो गया। आज वहाँ भव्य जिनालय, विशाल दादाबाड़ी और सुन्दर, सुव्यवस्थित धर्मशाला है तथा एक प्रमुख तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। यह सब आपकी ही सद्प्रेरणा का फल था।

नागेश्वर से मन्दसौर, जावरा होती हुई आप रतलाम पधारीं। वहाँ आप सेठ केशरीसिंहजी बाफना द्वारा बनवाई हुई कोठी में विराजीं। दूसरे दिन पौष बदी 10 (भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म-दिवस) थी। आप समीप ही स्थिति बिबड़ोद तीर्थ के दर्शनार्थ पधारीं। वहाँ पूजा तथा साधर्मीवात्सल्य भी था। संध्या को साध्वी-समुदाय पुनः रतलाम पधार गया। वहाँ से पूज्येश्वर वीर-पुत्र श्री आनन्द सागरजी म.सा. की निश्रा में बड़ी दीक्षा कराने हेतु सैलाना पधार गयीं।

सैलाना में

उस दिनों सैलाना के तत्कालीन राजा महाराज दिलीपकुमारसिंह के शासन की रजत जयन्ती मनाई जा रही थी। महाराज दिलीपसिंह पू. गुरुदेव वीरपुत्र म.सा. के सहपाठी रह चुके थे। एक दिन वे गुरुदेव के दर्शनार्थ पधारे। उस समय पूज्या सज्जनश्रीजी भी वहाँ विराज रही थीं। गुरुदेव के निर्देश से आपने एक भजन सुनाया। मधुर वाणी एवं स्वरयुक्त गायन को सुनकर राजा दिलीपसिंह भावविभोर हो उठे। उन्होंने जैन साध्वाचार की बहुत-बहुत प्रशंसा की।

नूतन दीक्षिता राजेन्द्रश्रीजी म.सा. की बड़ी दीक्षा के योगोद्वहन शुरू हो चुके थे और पू. सज्जनश्री जी म.सा. ने दशवैकालिक के अवशिष्ट अंश पूरे कर योगोद्वहन

शुरू कर दिये थे। बड़ी दीक्षा के दिन गुरुदेव की चरणपादुका स्थापन का समारोह भी था, अतः अठाई महोत्सव पूजन, भक्ति, रात्रि-जागरण आदि प्रारम्भ हो गये। राजेन्द्रश्रीजी म. के पारिवारिक सदस्य तथा आसपास के अन्य लोग बड़ी संख्या में आ गये थे। सबकी उपस्थिति में पू. गुरुदेव के कर कमलों से बड़ी दीक्षा का कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ। वहाँ से विहार कर आप पू. गुरुवर्याश्री के पास जयपुर पधार गयीं।

जयपुर में तीन चातुर्मास

संवत् 2003, 2004 व 2005 के तीन चातुर्मास सज्जनश्री जी म. ने गुरुणीजी श्री ज्ञानश्री जी म. सा. के सान्निध्य में जयपुर में ही सम्पन्न किये। ये चातुर्मास अत्यन्त घटना प्रधान रहे तो आपका व्यक्तिगत विकास भी पर्याप्त हुआ। व्याख्यान का कार्य आप स्वयं संभालती थीं।

प्रथम दो चातुर्मास सफलतापूर्वक व्यतीत होने पर वि. सं. 2005 में पू. आचार्यदेव श्री रत्नसूरीश्वरजी म. सा, उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी म. सा., प्रेममुनि जी म. सा., मेघमुनिजी म. सा. व मुक्तिमुनिजी म. सा. का जयपुर में पदार्पण हुआ। आपके प्रवचनों से प्रभावित हो जयपुर संघ ने आपसे तीसरे चातुर्मास की विनती की जिसे आचार्यदेव ने स्वीकार कर लिया।

इस चातुर्मास में व्याख्यान आचार्यदेव फरमाते थे, अतः व्याख्यान भार से मुक्त होकर आपने गुरुवर्याश्री प्रवर्तिनी महोदया एवं परोपकारिणी पू. उपयोगश्री जी म. सा. से तपस्या की आज्ञा मांगी। आज्ञा प्राप्त होने पर आपने व पू. जिनेन्द्रश्रीजी म. ने श्रावण बदी 7 से मास-क्षमण की तपस्या प्रारम्भ कर दी। आपके साथ श्रीमती कमला देवी ने भी तपस्या शुरू करी जो सेठ श्री हजारीमलजी बाँठिया की सुपुत्री थीं तथा युवावस्था से पहले ही विधवा हो चुकी थीं। वे पू. सज्जनश्री जी के गृहस्थ जीवन की सहेली रही थीं तथा जयपुर की प्रमुख श्राविका के रूप में प्रसिद्ध थीं। तीनों तपस्याएँ प्रारम्भ हुयीं, तेले के दिन से ही शासनदेवी के गीत प्रारम्भ हो गये जो एक महीने तक चलते रहे। नित्य प्रभावनाएँ होतीं—कभी-कभी दो-दो तथा तीन-तीन भी हो जातीं। पूर्णाहुति पर राजेन्द्रश्री जी म. सा. ने अठाई और बहुत से लोगों ने अट्ठम तप किये। अठाई महोत्सव, महापूजन, बरघोड़ा, रात्रि जागरण आदि धर्मानुष्ठान के सभी अभूतपूर्व कार्यक्रम सानन्द पूर्ण हुए। किन्तु, तपस्या के पारणे के पश्चात सहसा आपको टाईफाइड हो गया जो उचित औषधोपचार के पश्चात् ही ठीक हो पाया।

पू. सज्जनश्री जी को अध्ययन का बचपन से ही शौक था जो अन्त तक रहा। चातुर्मास के बाद शीतकाल में आपने पण्डित प्रवर वीरभद्रजी से "प्रमाणनयतत्त्व-लोक" का तलस्पर्शी अध्ययन किया।

वि. सं. 2006 में पू. गणिवर्यश्री बुद्धिमुनिजी म. सा. तथा रामानन्दजी म. सा. संघ की विनती को स्वीकार करके चातुर्मास हेतु जयपुर पधार गये थे। अतः इस वर्ष में भी प्रवचन कार्य से आप प्रायः मुक्त ही थीं, किन्तु मध्यान्ह में 'चौपी' आप ही बाँचती थीं। चौपी में आप जैन कवि केशवराज रचित 'रामयश रसायन' के साथ तुलसीकृत 'रामचरितमानस' और मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' के सम्बन्धित अंश भी सुनातीं, जिन्हें सुनकर जैन-अजैन सभी श्रोता मुग्ध हो जाते। प्राचीन उपाश्रय (जहाँ अभी विचक्षण भवन बना हुआ है) का हॉल खचाखच भर जाता। श्रोतागण राम के पवित्र चरित्र में इतने रसमग्न हो जाते, मानो सब कुछ उनके सामने ही घटित हो रहा हो। ऐसी अनुपम थी आपकी वक्तृत्व कला।

झुंझुनूं चातुर्मास (सं. 2006)

झुंझुनूं धार्मिक क्षेत्र के साथ-साथ ऐतिहासिक क्षेत्र भी है। यह क्षेत्र बहुत अनूठा है। ग्यारहवीं शताब्दी में परमश्रद्धेय दादा गुरुदेव श्री जिनदत्तसूरि जी म. का इसी क्षेत्र में विचरण हुआ था। यह उल्लेख उनके स्वयं के लिखे 'चर्चरी' ग्रन्थ में है। यहाँ की दादाबाड़ी की ऊँचाई अन्य दादाबाड़ियों की तुलना में काफी अच्छी है।

झुंझुनूं में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के 60 घर थे। सभी खरतरगच्छीय श्रीमाल गौत्र के और प्रायः सभी उच्च शिक्षा प्राप्त, कोई वकील तो कोई जज थे। श्री पूनमचन्द जी तो झुंझुनूं जिले के प्रसिद्ध वकील थे। धार्मिक क्षेत्र में भी झुंझुनूं संघ अग्रणी था। वहाँ विद्वान् साधु-साध्वियों के चातुर्मास होते ही रहते थे। यद्यपि वर्तमान में वहाँ 25-27 घर ही रह गये हैं। प्रायः सभी बम्बई, जयपुर आदि नगरों में जाकर बस गये हैं।

इसी झुंझुनूं संघ ने प्रवर्तिनी जी के समक्ष चातुर्मास हेतु विनती की। प्रवर्तिनीजी म. सा. ने निर्णीत शुभ दिवस में पू. सज्जनश्री जी, मण्डल-संचालिका पू. श्री उपयोगश्री जी म., पू. श्री शीतलश्री जी म. तथा राजेन्द्रश्री जी म. को झुंझुनूं चातुर्मासार्थ विहार करवाया। मार्गस्थ ग्रामों में वीरवाणी सुनाते, धर्म की वंशी बजाते, जनता को मांस, मद्य आदि अभक्ष्यभक्षण का त्याग कराते हुए आप झुंझुनूं की सीमा में पहुँचीं। श्रद्धालु संघ ने बड़ी धूम-धाम से नगर-प्रवेश कराया।

प्रातःकालीन व्याख्यान में 'श्री चन्द्र केवली चरित्र' प्रारम्भ किया गया। आपकी रोचक वक्तृत्व शैली को आज भी लोग याद करते हैं। पूजा, तपस्या आदि का वहाँ ठाठ लगा रहा। पूजा-प्रभावनाएँ भी खूब हुईं। तब से आज तक वहाँ के निवासी प्रति पूनम को रात्रि-जागरण व प्रभावना आदि करते आ रहे हैं।

श्री राजेन्द्रश्रीजी म. को वाराणसीय संस्कृत विश्वविद्यालय की ज्ञानप्रभा परीक्षा में सम्मिलित होना था और उसका परीक्षा केन्द्र फतेहपुर था, अतः झुन्झुनू चातुर्मास सानन्द पूर्णकर आप चिड़ावा, पिलानी होते हुए फतेहपुर पहुँचे। फतेहपुर में काफी जैन परिवार हैं। वहाँ भी व्याख्यान आदि का क्रम चलने लगा। लोग प्रभावित हुए। आपसे कुछ दिन वहीं विराजने का आग्रह किया गया, लेकिन आपको गुरुणीजी की सेवा में पहुँचना था, अतः परीक्षा दिलवाकर जयपुर की ओर प्रस्थान कर दिया।

साध्वी श्री राजेन्द्रश्री जी का स्वर्गवास :

साध्वी श्री राजेन्द्रश्री जी म. सा. का स्वास्थ्य झुन्झुनूं चातुर्मास में गड़बड़ रहने लगा था। कभी सर्दी-जुकाम-खाँसी बढ़ जाते तो कभी कम हो जाते। साधारण घरेलू उपचार चलते रहे पर कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। जयपुर आने पर तो खाँसी-जुकाम और बढ़ गये। कई वैद्यों का उपचार कराया गया पर सब व्यर्थ। आखिर स्पेशलिस्ट डॉक्टर को दिखाया गया। उसने फुल टेस्ट की सलाह दी। टेस्ट हुए। एक्स-रे रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि साध्वीजी को राजयक्ष्मा ने गम्भीर रूप से जकड़ लिया है।

उस युग में टी.बी. की कोई अक्सीर दवा नहीं थी। इस रोग का नाम ही भयंकर था। सुनते ही पू. सज्जनश्री जी चिन्तित हो गईं। तन-मन से आप राजेन्द्रश्री जी म.सा. की सेवा में जुट गईं। किन्तु उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता ही गया, शारीरिक शक्ति क्षीण होती चली गयी। डॉक्टर की चिकित्सा और आप की सेवा कोई काम नहीं आई। आखिर वि.सं. 2012 विजयादशमी के दिन 26 वर्ष की अल्पायु में ही उनकी आत्मा स्वर्ग को प्रयाण कर गई। सर्व साध्वीमंडल और श्री संघ को हार्दिक दुःख हुआ, पर काल-बली के सामने किसी का वश नहीं चलता।

श्री राजेन्द्रश्री जी म. ने 12 वर्ष की अल्प संयम पर्याय में वैयावच्च, अध्ययन, शासन सेवा के साथ-साथ विभिन्न तप - पंचमी, पखवासा, सोलिया, नवपद-ओली तप, दश पच्चक्खाण, बेला, तेला, अठाई आदि किये तथा अन्तिम समय में

गुरुमुख से निर्यामना स्वस्थ चित्त से सुनती हुई, सर्व प्रत्याख्यान के साथ नश्वर देह का त्याग किया। इस प्रकार आपने अपना श्रमणी-जीवन सफल बनाया।

जयपुर में सात चातुर्मास (सं. 2007 से 2013)

श्री राजेन्द्रश्री जी की अस्वस्थता के कारण पू. सज्जनश्री जी के वि सं. 2007 से 2013 तक के 7 चातुर्मास जयपुर में ही हुए। ये चातुर्मास आपने गुरुवर्याश्री के दर्शनार्थ आने वाले पूज्य श्रमण-श्रमणी के आदर-सत्कार और ज्ञानार्जन में व्यतीत किये।

वि. सं. 2012 में पूज्य प्रवर उपाध्याय महोदय श्री सुखसागर जी म. सा., पूज्य श्री मंगलसागर जी म. तथा उद्भत विद्वान् श्री कान्तिसागरजी म. सा. चातुर्मास हेतु गुलाबी नगरी जयपुर में पधारे। व्याख्यान के उत्तरदायित्व से आप मुक्त हुईं। समय का सदुपयोग करते हुए आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्यरत्न परीक्षा फर्स्ट डिवीजन में उत्तीर्ण कर ली।

प्रखर व्याख्याता पू. कान्तिसागर जी की सद्प्रेरणा से जयपुर संघ ने जैन श्वेताम्बर दादाबाढ़ी (मोती डूंगरी रोड़) में पू. प्रवर उपाध्याय श्री सुखसागर जी म.सा. के सान्निध्य में द्वितीय उपधान तप करवाकर अतुल लाभ लिया। श्रावक-श्राविकाओं ने उत्साहपूर्वक तपाराधना की और मालारोपण का कार्यक्रम भी बड़े अच्छे ढ़ंग से सम्पन्न हुआ। इस उत्सव के दौरान पूज्याश्री उपयोगश्रीजी म. सा. की संसारपक्षीया भतीजी तथा फलौदी निवासी श्रावक श्रेष्ठ श्रीमान् ताराचन्दजी की सुपुत्री किरण बाई वैराग्य भावना से प्रेरित हो आपके पास आईं। उस समय उनकी आयु कुल 11 वर्ष की थी।

वि.सं. 2013 में पूज्य आचार्य श्रीमज्जिनआनन्दसागर सूरीश्वर जी म. सा., पू. उपाध्याय श्री कवीन्द्रसागर सूरीश्वरजी म. सा., उपाध्याय श्री सुखसागर जी म. सा., गणिवर्य हेमेन्द्रसागरजी म. सा. तथा उदयसागर जी म. सा. की निश्रा में युगप्रधान दादा जिनदत्त सूरीश्वरजी म. सा. की पुण्यभूमि अजमेर में अखिल भारतीय खरतरगच्छ की सम्मति से उनका अष्टम शताब्दी समारोह आयोजित करने का निर्णय लिया गया। इस अवसर पर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका सम्मेलन का कार्यक्रम रखा गया और सभी पू. मुनिवरों तथा पू. साध्वियों को आमन्त्रित किया गया।

समीपस्थ क्षेत्रों में विचरण करने वाले सभी साध्वीजी म. सा. इस सम्मेलन में सम्मलित हुए तथा पू. श्रीउमंगश्रीजी म. सा., पू. श्री कल्याणश्रीजी म. सा.,

जैन कोकिला श्री विचक्षणश्रीजी म. सा. अपनी शिष्या मंडली सहित व पू. श्री अनुभवश्रीजी म.सा. तथा पू. प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी की प्रतिनिधि रूप पू. सज्जनश्री जी भी पधारीं। इस प्रकार कुल 55 साध्वीजी सम्मेलन में सम्मिलित हुयीं।

सम्मेलन की शोभा तो अभूतपूर्व थी ही, विशेषता यह थी कि सभी गच्छ वालों के बिना भेदभाव से सम्मिलित होकर सम्मेलन को सफल बनाया था। बड़े ही शानदार ढंग से विराट आयोजन के साथ सम्मेलन सम्पूर्ण हुआ। शताब्दी स्मारिका में इसका सचित्र वर्णन है। इस अवसर पर "जिनदत्तसूरि संघ" की स्थापना हुई जो निरन्तर प्रगति पथ पर है। सम्मेलन में आये हुए जयपुर संघ ने पू. प्रवर्तिनीवर्या की प्रेरणा से श्रद्धेय आचार्यश्री को जयपुर चातुर्मास की आग्रहभरी विनती की, जिसे आचार्य श्री ने स्वीकार कर लिया। पू. सज्जनश्री जी गुरुवर्या की सेवा में पधार गयीं।

परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्रीमज्जिनआनन्दसागर सूरीश्वरजी अपने शिष्य मंडल सहित चातुर्मास हेतु जयपुर पधारे। खूब धूमधाम से जयपुर संघ ने आपका स्वागत किया।

आचार्य प्रवर के सान्निध्य में प्रथम चातुर्मास :

आचार्य प्रवर के साथ पू. सज्जनश्री जी का यह पहला ही चातुर्मास था। उनकी शास्त्रोक्त ज्ञानयुक्त वाणी से आप बहुत प्रभावित हुईं। आपश्री को आचार्य-देव का अनुग्रह प्राप्त हुआ। आचार्यश्री की दीर्घ-दृष्टि से आपकी विलक्षण प्रतिभा छिप न सकी। पू. प्रवर्तिनी जी से उन्होंने कहा—आप बहुत भाग्यशाली हैं जो आपको ऐसी सुयोग्य, गुणवती शिष्या (सज्जनश्रीजी) प्राप्त हुई हैं। यह भविष्य में अपने गच्छ की कीर्ति को खूब दीपायेंगी। और, आचार्यजी के ये उद्‌गार कुछ ही समय में सत्य प्रमाणित होने लगे।

भगवती सूत्र का वाचन :

संघ के आग्रह से आचार्यश्री ने चातुर्मास में भगवती सूत्र का वचन किया किन्तु, सहसा आप अस्वस्थ हो गये। उन्होंने सज्जनश्री जी को बुलाया और व्याख्यान देने का आदेश फरमा दिया। आप विचार में पड़ गईं—"भगवती सूत्र तो मैंने कभी उठा कर देखा भी नहीं, कैसे व्याख्यान दे सकूंगी!" आपको विचारमग्न देखकर आचार्यश्री ने फरमाया कि विचार में क्यों पड़ गईं? तुम तो अत्यन्त विदुषी और प्रतिभा की धनी हो।

बस, आपने आचार्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और इष्टदेव का स्मरण कर पाट पर बैठ गईं। फिर एक सूत्र को लेकर आपने उसकी जो व्याख्या की, तर्क दिये और दृष्टान्तपूर्वक समझाया तो सभी आश्चर्यचकित रह गये। आचार्यश्री स्वयं सुन रहे थे, वे भी दंग रह गये। मन ही मन सोचने लगे—क्या गजब की बुद्धि है, क्या प्रतिभा है ? "भगवती" जो सबसे गूढ़ और कठिन अंग है, जिसकी व्याख्या करने में बड़े-बड़े धुरन्धर चकरा जाते हैं, उसके सूत्रों की एक-एक कली खोलकर रख दी है, अनुपम मेधा है इन साध्वीजी की !

व्याख्यान के बाद जब आचार्यश्री के समक्ष आप पधारीं तो उन्होंने हर्षित होकर आपकी प्रशंसा की और उपस्थित साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका आदि सभी के समक्ष कहा—"तुम तो कुशल व्याख्यात्री हो, भविष्य में इससे भी बढ़कर आगामों का ज्ञान प्राप्त करोगी, ऐसा मेरा विश्वास है।" आचार्यश्री के आशीर्वाद को सुनकर सभी उपस्थित जन हर्षित थे। वि. सं. 2013 का आचार्यश्री का वह चातुर्मास सानंद सम्पूर्ण हुआ।

शशिप्रभाश्री जी की दीक्षा

इस चातुर्मास के उपरान्त वैराग्यांकुरधारिणी किरण (जो अब 12 वर्ष की हो चुकी थी) ने अपनी मूआ (ज्ञानमंडल की संचालिका पूज्या उपयोगश्री जी म. सा.) से अपनी दीक्षा शीघ्र करवाने की विनती की, क्योंकि उनका वैराग्य पूर्ण पल्लवित हो चुका था। पूज्याश्री ने कुछ समय बाद उनकी भावना को साकार रूप देने का सुझाव दिया।

मुमुक्षु किरण का अध्ययन सुचारु रूप से चल रहा था। पंचप्रतिक्रमण कुछ ही समय में पूर्ण हो गया। तदुपरान्त संस्कृत चैत्यवन्दन स्तुति, जीव विचार नव तत्त्वादि चारों प्रकरण, तीन भाष्य, कर्मग्रन्थ आदि भी कुछ ही समय में कंठस्थ कर लिए। प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ जो सामूहिक होतीं, उनमें "वन्दित्तु" सूत्रादि बोलने का आदेश प्रायः किरण ही लेतीं और उनकी बोली मधुर, स्पष्ट व वजनी होने के कारण अन्य बहनें भी उनका बोलना ही पसन्द करतीं। मुमुक्षु किरण ने अपनी योग्यता, नम्रता और मधुर वाणी से सभी के मन-मस्तिष्क पर अपना अधिकार कर लिया। पू. उपयोगश्री जी भी मुमुक्षु किरण से सन्तुष्ट थीं, आप उसे दीक्षा योग्य समझने लगी थीं।

जयपुर श्रीसंघ को वैरागिन किरण की इतनी जल्दी दीक्षा का अनुमान नहीं था। जब दीक्षा महोत्सव का मुहूर्त निकल गया और तैयारियाँ होने लगीं तब कुछ प्रमुख श्रावकों ने बाल-दीक्षा कहकर उसका कठोर विरोध किया। यहाँ तक निश्चय कर लिया कि वैरागिन किरण की दीक्षा नहीं होने देंगे। इस विरोध के कारण पूज्य

गुरुदेव और पू. प्रवर्तिनी महोदया ने वैराग्यवती किरण की दीक्षा उस वर्ष स्थगित कर दी। इसे अन्तराय कर्म का ही प्रभाव माना जाना चाहिए कि दीक्षा में अवरोध खड़ा हो गया।

टोंक चातुर्मास (सं. 2014)

पू. सज्जनश्री जी का सं. 2014 का चातुर्मास टोंक में था और परम श्रद्धेय कवि सम्राट् श्री कवीन्द्रसागर जी म. सा. का चातुर्मास जयपुर में था। वैराग्यवती किरण की दीक्षा की बातें चल रही थीं, जयपुर वालों के विरोध को भी वे जानते थे और लगता था, ये लोग दीक्षा होने नहीं देंगे। पू. प्रवर्तिनी जी म. सा. की भी यही धारणा थी। फिर भी किसी प्रकार दीक्षा हो जाये, ऐसी उनकी हार्दिक इच्छा थी। किन्तु, वैराग्यवती किरण की अन्तराय टूटी, पुण्य का उदय हुआ। कुछ लोग विघ्न-संतोषी होते हैं तो कुछ विघ्ननिवारक भी। ऐसा ही हुआ। ब्यावर के अग्रगण्य श्रावक उदयचन्द जी कास्टिया जयपुर पधारे। उन्होंने म. सा. के दर्शन किये। चर्चा के दौरान संपूर्ण स्थिति से अवगत हुए तो बोले—यह सौभाग्य ब्यावर संघ को मिलना चाहिए। महाराज साहब! आप वैरागिन किरण तथा उसके परिजनों को इस तरह ब्यावर भेज दीजिए कि विघ्नसंतोषी जयपुर वालों को मालूम न पड़े। वहाँ दीक्षा सानन्द हो जाएगी। सर्वसम्मति से दीक्षा का निर्णय ले लिया गया। उदय-चन्द जी ब्यावर चले गये। ब्यावर संघ के श्रावक भी दीक्षा की बात सुनकर उनसे सहमत हो गये।

पू. प्रवर्तिनी महोदया ने प्रसिद्ध पण्डित श्री भगवानदासजी से दीक्षा का मुहूर्त निकलवाया तो मिगसिर बदी 6 का मुहूर्त निकला। जयपुर वालों ने फोन से सब समाचार ब्यावर दे दिये। दो दिन पहले वैरागिन किरण को ब्यावर के लिए रवाना कर दिया गया, उसके परिवार वाले भी पहुँच गये। जयपुर के मुख्य-मुख्य श्रावक-श्रीमान् हमीरमल जी सा. गोलेच्छा, सिरेहमलजी सा. संचेती, प्रेमचन्द जी सा. बांठिया आदि भी दीक्षा में सम्मिलित होने के लिए ब्यावर रवाना हो गये। शुभ दिन-मुहूर्त में पूज्या विज्ञानश्रीजी म. की निश्रा में ब्यावर स्थित दादाबाड़ी के विशाल प्रांगण में वैराग्यवती किरण की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। उन्हें "शशिप्रभाश्री" नाम दिया गया और पूज्या सज्जनश्रीजी म.सा की शिष्या घोषित किया गया।

नूतन साध्वी शशिप्रभाश्री की बड़ी दीक्षा कराने श्रद्धेय कवि सम्राट् अजमेर पधारे। ब्यावर से विज्ञानश्रीजी म.सा. आदि भी नूतन साध्वीजी को साथ लेकर अजमेर पधारे और टोंक से पू. सज्जनश्री जी भी सानन्द चातुर्मास पूर्णकर जयपुर जाती हुयी अजमेर पधारीं। इधर मणिप्रभाजी, जो जयपुर की ही लड़की हैं और जिनकी दीक्षा टोंक में हुई तथा पूज्या जैन कोकिला जी की शिष्या बनीं, उनकी भी

बड़ी दीक्षा अजमेर में कराने का विचार हुआ। अतः शशिप्रभाजी के साथ ही मणिप्रभाजी की बड़ी दीक्षा भी अजमेर में ही कवि सम्राट् के कर-कमलों से सं. 2014, मिगसिर सुदी 11 को सानन्द सम्पन्न हुई। बड़ी दीक्षा के पश्चात् पू. सज्जनश्री जी नूतन साध्वी श्री शशिप्रभाजी आदि के साथ प्र. महोदया के चरणों में जयपुर पधारीं। वहीं नूतन साध्वीजी के अध्ययन की व्यवस्था हुई और छोटी-मोटी अनेक परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके उन्होंने अच्छी योग्यता अर्जित कर ली।

'पुण्य जीवन ज्योति' का प्रणयन :

पूज्या सज्जनश्रीजी व्याख्यान-भार से मुक्त थीं, अतः पू. प्रवर्तिनी श्रीजी, पू. श्री उपयोगश्री जी और जैन कोकिलाजी की सत्प्रेरणा से आपने 'पुण्य जीवन-ज्योति' के लेखन का कार्य प्रारम्भ किया। आपका यह लेखन कार्य 500 पृष्ठों के एक अनूठे वृहत् सचित्र ग्रंथ के रूप में जनता के समक्ष आया जो अपने आप में एक इतिहास संजोए हुए है। इस ऐतिहासिक ग्रंथ में श्रमणी वृन्द की गौरवपूर्ण गाथा के साथ-साथ नारी जीवन का महत्त्व भी वर्णित हुआ है। आपकी परिष्कृत और परिमार्जित लेखनी से समुद्भूत यह एक ऐसी पुष्प मंजूषा है जिसमें विभिन्न आकृतियों के सुरभित स्वर-सुमन अपनी सुगन्ध विकीर्ण कर रहे हैं। वस्तुतः यह ग्रंथ-रत्न आपके गंभीर और तलस्पर्शी अध्ययन तथा प्रत्युत्पन्न मेधा का परिचायक है। इस प्रकार संवत् 2015 का चातुर्मास सानन्द संपूर्ण हुआ।

अप्रत्याशित वज्रपात

पूज्या विचक्षणश्रीजी म. सा. का सं 2016 का चातुर्मास जयपुर में था और टोंक संघ के आग्रह के कारण पू. सज्जनश्रीजी का चातुर्मास टोंक निश्चित हो चुका था। टोंक के लिए चातुर्मासार्थ आपने जयपुर से विहार भी किया, प्रथम मंजिल सांगानेर तक पधारीं भी, किन्तु मानों मन उखड़ रहा था, पांव आगे जाने को तैयार नहीं थे, कुछ अनहोनी घटित होने की आशंका बार-बार चित्त को उद्विग्न बना रही थी, अतः आप वापिस जयपुर लौट आयीं। टोंक संघ को ना करवा दी गयी।

आपका जयपुर में चातुर्मास सुन्दर ढंग से चल रहा था। कार्तिक माह में पू. प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी म. सा. के स्वास्थ्य में सहसा कुछ गड़बड़ी हुई। आयुर्वेदिक औषधियां चल रही थीं पर कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा था, स्वास्थ्य गिरता ही जा रहा था। गुरुवर्या की अस्वस्थ दशा से आप चिंतित थीं। इधर उपयोगश्रीजी म. सा. के पांव के अंगूठे में ठोकर लग जाने से अंगूठा पक गया तथा दर्द होने लगा। उपचार से भी कोई लाभ न हुआ। पीव पड़ गई और रिसने लगी। तब जयपुर की प्रसिद्ध लेडी डॉक्टर चन्द्रकांताजी को बुलाया गया।

कार्तिक कृष्ण 3 का दिन था। सन्ध्या का समय था। चौविहार का समय था। पू. विचक्षणश्री जी प्रतिदिन की भांति गोचरी करके दादाबाड़ी पधार गयी थीं। डाक्टर आयीं। पू. प्रवर्तिनी महोदया को देखकर लौट रही थीं कि उपयोगश्री जी म. सा. ने आवाज देकर बुलाया और कहा—डाक्टर साहब देखिए, मेरा अंगूठा पक गया है। 15-20 दिन हो गये, पीव रिसती रहती है, बन्द होती ही नहीं। पूज्यवर्या ने पट्टी खोली तो डाक्टर साहब ने देखकर कहा—यह तो गम्भीर मामला है, इंजेक्शन के बिना ठीक नहीं होगा। आपको पेनिसिलिन का इंजेक्शन लगा दूँ, जल्दी आराम हो जायेगा। इस पर पूज्यवर्या ने पू. सज्जनश्री जी से इंजेक्शन के बारे में पूछा तो उन्होंने सहमति व्यक्त कर दी। भावना यही थी कि शीघ्र आराम होगा, लेकिन कौन जानता था कि ऐसा आराम हो जायेगा कि यह शरीर ही छूट जायेगा! डाक्टर ने इंजेक्शन लगाया और नीचे उतरने लगीं। अभी वह बाहर तक भी जा नहीं पाई थीं कि पूज्यवर्या ने आपसे कहा—"सज्जनश्री जी! मेरे तो छाती में जलन हो रही है।"

आपने तुरन्त डाक्टर को आवाज दी। डाक्टर लौटीं। पूज्यवर्या की दशा देखकर चकित रह गईं। अचानक यह क्या हो गया? क्षण भर में समझ गईं—इंजेक्शन का 'रिएक्शन' है। अपना बैग टटोला, लेकिन पेनिसिलिन के रिएक्शन को समाप्त कर दे, ऐसा कोई इजेक्शन, टेबलेट या कैपसूल नहीं मिला। तुरन्त किसी को एक इंजेक्शन लेने के लिए दौड़ाया। किन्तु तब तक पूज्यवर्या बेहोश हो चुकी थीं। इंजेक्शन आने पर लगाया भी; परन्तु पेनिसिलिन का शॉक अपना काम पूरा कर चुका था, नया इंजेक्शन बेअसर साबित हुआ।

पू. श्री की जिह्वा बाहर निकल आई। पू. सज्जनश्री जी ने उनका सिर अपनी गोद में ले लिया। नब्ज टटोली तो गायब! सारा शरीर ठंडा पड़ चुका था। दूसरा डाक्टर बुलवाया गया। वह आया तब तक तो खेल खत्म हो चुका था, हंस उड़ चुका था। आपकी गोद में ही गुरुवर्या श्री की आत्मा ने स्वर्ग प्रयाण कर दिया था। नश्वर देह ही वहाँ पड़ी थी। सभी को अपार दुःख हुआ। पू. प्रवर्तिनी जी भी इस वज्रपात से विह्वल हो उठीं। संध्या समय श्राविकाएँ प्रतिक्रमण के लिए आती थीं, वे भी इस अघटित से घोर दुःखी हुयीं।

तथ्य यह है कि मौत बहाने ढूँढ़ती है। उपयोगश्री जी म. सा. के लिए पेनिसिलिन का इंजेक्शन ही काल का पैगाम बन गया। प्राणी हारता है और काल जीतता है, यहाँ भी काल विजयी हुआ।

उपयोगश्रीजी म.सा. विशिष्ट व्यक्तित्व वाली आर्यारत्न थीं। वे गुरु सेवा में सदा तत्पर रहती थीं। उत्तम संयमी जीवन, मधुर-गम्भीर वाणी, विशाल सहृदयता, उदारता, सुन्दर व्यवहार-कुशलता, अनुपम मेधा सभी कुछ था पूज्या उपयोगश्रीजी में। गुरुवर्या की सेवा में इतनी तत्पर कि मात्र तीन चातुर्मासों के अतिरिक्त अपनी गुरुवर्या से कभी अलग नहीं रहीं। निष्पृहता इतनी कि आपकी प्रेरणा से प्रभावित होकर जिन्होंने दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की उन सबको अपनी शिष्या न बनाकर गुरुवर्या की शिष्या घोषित किया। पू. सज्जनश्रीजी की दीक्षा में भी आपकी ही प्रेरणा और सद्प्रयत्न थे; किन्तु इन्हें भी गुरुवर्या पूज्या प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी म. सा. की शिष्या ही घोषित करवाया। ऐसी निस्पृह-सेवाभावी साध्वीरत्न के स्वर्गवास से पूरा समाज शोक सागर में निमग्न हो गया। शवयात्रा में हजारों की जनमेदिनी थी। सभी अपनी शोक-श्रद्धांजलि समर्पित कर रहे थे। दुःख तो साध्वी-मंडल को भी बहुत हुआ; किन्तु जैन साधना का प्रथम सोपान ही समता है, अतः समतापूर्वक इस वज्र प्रहार को साध्वी-मंडल ने सहन किया।

पूज्याश्री के देवलोक के पश्चात् पू. प्रवर्तिनी जी के मंडल की सम्पूर्ण जिम्मेदारी पू. सज्जनश्री जी पर आ गई, अतः चातुर्मास तथा शेष काल में कहीं जाने का प्रश्न ही समाप्त हो गया और आप पू. प्र. वर्या की सेवा-शुश्रूषा में संलग्न हो गईं।

सेवा की अनुपम एवं विशिष्ट साधिका

पू. सज्जनश्री जी में सेवा का विशिष्ट गुण था। यद्यपि आपका बचपन लाड़-प्यार में बीता, कभी काम करने का अवसर ही न आया, शादी भी बड़े घर में हुई, फिर भी आप सेवा के लिए सदा तत्पर रहतीं। बड़ा या छोटा कैसा भी काम हो, लगन से करतीं। काम को इतने सुचारु रूप से करतीं कि देखने वाले समझते कि आप उस कार्य में पूर्ण निष्णात हैं।

जयपुर में पहले आयम्बिल खाता नहीं था, अतः कभी-कभी दो-दो मटकियाँ (घड़े) पानी की आप घरों से ले आतीं। गोचरी आदि कार्यों में भी आप निष्णात थीं। कई बार व्याख्यान से सीधी उठकर गोचरी हेतु चली जातीं। आपके मन में तनिक भी विचार नहीं आता कि मैं इतने बड़े घर की बहू रही हूँ, गोचरी के लिए कैसे जाऊँ।

आपका सीधा-सा सिद्धान्त था कि इस नश्वर शरीर से जितनी भी दूसरों की सेवा की जा सके करनी चाहिए, सेवा से ही मानव शरीर की सार्थकता है।

सज्जनों का तो कार्य ही उपकार और सेवा करना है और इस रूप में आपश्री ने अपने सज्जनश्री नाम को सदा सार्थक किया है।

चातुर्मास के पश्चात् पू श्री विचक्षणश्री म. सा. का विचार मालपुरा की ओर विहार करने का था, किन्तु जयपुर के जौहरी अध्यात्म-योगी श्रीमान् अमरचन्द जी नाहर ने मालपुरा का छःरी पालित संघ ले जाने की भावना व्यक्त की। आप ने उनकी भावना को स्वीकृति प्रदान कर दी।

पूज्या विचक्षण श्री जी को 'व्याख्यान भारती' अलंकार

प्रस्थान का समय निकट आ रहा था। पूज्या सज्जनश्रीजी ने सोचा, प्रस्थान समारोहपूर्वक होना चाहिए। ऐसा विचार करके आपने जयपुर के अग्रगण्य श्रावकों को बुलवाया और उन्हें प्रेरणा दी कि जैन कोकिला पूज्या श्री विचक्षणश्रीजी म.सा. को "व्याख्यान भारती" पदवी से विभूषित किया जाये। प्रस्थान के दिन रामनिवास बाग स्थित म्यूजियम के विशाल प्रांगण में जयपुर श्री संघ ने आपका अभिनन्दन करते हुए अभिनन्दन पत्र भेंट किया तथा आपके द्वारा रचित एक गीतिका स्थानीय जैन नवयुवक मंडल ने गायी। गीतिका के भावों में अवगाहन कर सभी के नेत्र सजल हो उठे। तदुपरान्त सर्व संघ के समक्ष जयपुर खरतरगच्छ संघ ने पू. जैन कोकिला जी को "व्याख्यान भारती" की पदवी से विभूषित किया। इसके उपरान्त सर्व संघ के साथ आपने मालपुरा प्रस्थान किया। नाहर सा. ने संघ-भक्ति का अपूर्व लाभ लिया।

आचार्यश्री का अप्रत्याशित वियोग

सं. 2017 के चातुर्मास के पश्चात् पालीताना में विराजित आचार्य सम्राट वीरपुत्र श्री आनन्दसागर जी म. सा. का पौष सुदी 10 को हृदयगति रुक जाने से अचानक ही स्वर्गवास हो गया। आपश्री के पाट पर कविकुलकिरीट श्रद्धेय गुरुदेव कवीन्द्रसागरजी म.सा. को विराजमान किया गया; किन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि सिर्फ 11 महीने की अवधि में ही सं. 2018 की फाल्गुन शुक्ला 5 को आप भी देवलोक प्रयाण कर गये। श्रद्धेय गुरुदेव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, आशुकवि थे। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी में रचित आप की रचनाएँ बेजोड़ हैं जो गायकों व श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध बना देती हैं। आपका देहावसान संघ की अपूरणीय क्षति था।

ब्यावर-अजमेर प्रवास

वि. सं. 2019 में पण्डित प्रवर श्री दयारामजी से श्री शशिप्रभाजी ने संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया और अल्प समय में ही अच्छी गति करली।

पण्डितजी की प्रेरणा से वाराणसी विश्वविद्यालय की प्रथमा परीक्षा का फार्म भर दिया और पू. सज्जनश्री जी ने मध्यमा का फार्म भर दिया। लेकिन समस्या यह आयी कि परीक्षा केन्द्र ब्यावर में था, अतः पूज्या प्रवर्तिनीवर्या को छोड़कर कैसे जायें ? यद्यपि शीतलश्रीजी म.सा, रमणीकश्रीजी म.सा., जिनेन्द्रश्रीजी म.सा. आदि साध्वियाँ सेवा में थीं, पर व्याख्यान का भार कौन संभाले ? यह सबसे बड़ी समस्या थी। तभी गुरुदेव की कृपा और पूज्य प्रवर्तिनीजी के आशीर्वाद से टोंक में विराजित कल्याणश्री जी म.सा. आदि जयपुर पधार गयीं और समस्या हल हो गई। अब आप शशिप्रभा श्री जी के साथ ब्यावर पधारीं और सानन्द परीक्षा दिलवायी।

वापिस जयपुर लौटते समय अजमेर में निर्मलाश्रीजी की बड़ी दीक्षा हेतु अनुयोगाचार्य श्रद्धेय कान्तिसागरजी म. सा. और पूज्य श्री दर्शनसागर जी म. सा. पधारे हुए थे। बड़ी दीक्षा का दिन समीप ही था, अतः पूज्येश्वर के आदेश और विजयेन्द्रश्रीजी म. सा. के आग्रह पर बड़ी दीक्षा तक आपको अजमेर रुकना पड़ा। इसी दौरान पू. प्रवर्तिनीजी की प्रेरणा से जयपुर श्रीसंघ के अग्रणी श्रावक पू. अनुयोगाचार्य जी के पास चातुर्मास की विनती लेकर गये, जिस पर उन्होंने स्वीकृति प्रदान कर दी।

बड़ी दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई और आप उग्र विहार कर पू. प्रवर्तिनीजी के चरणों में जयपुर पधार गईं।

अनुयोगाचार्य जी का जयपुर चातुर्मास

कुछ दिन बाद पू. अनुयोगाचार्य जी ने जयपुर के विहार कर दिया। कुशल गुरुदेव की पुण्यभूमि मालपुरा के दर्शन करते हुए आप जयपुर पधारे। जयपुर संघ ने बड़ी धूम-धाम से बैंड बाजों के साथ नगर प्रवेश कराया। व्याख्यान क्रम चालू हो गया। आप इतनी ओजस्वी, मधुरवाणी में प्रवचन फरमाते कि श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते। मध्यान्ह में पू. सज्जनश्री जी 'जयानन्द-केवली रास' अपनी सुरीली वाणी में फरमातीं।

अनुयोगाचार्य के पधारने से जयपुर में धर्म की लहर-सी आ गई। बाल साध्वी शशिप्रभाजी ने अठाई की तपस्या की। फिर तो तप की झड़ी ही लग गई। पंचरंगी, मास-क्षमण आदि तप खूब हुए। अठाई महोत्सव, वरघोड़ा, पूजा-प्रभावना आदि से चातुर्मास सफल रहा। आगे भी पू. सज्जनश्री जी के सं. 20, 21, 22, 23, 24 के चातुर्मास गुरुवर्या पू. प्रवर्तिनीजी की सेवा में जयपुर में ही हुए। आपने ज्ञान-ध्यान और सेवा का खूब लाभ लिया।

जयपुर में सामूहिक व्याख्यानों की लहर

जयपुर में सं. 2022 में विभिन्न आम्नायों के व्याख्यानों की लहर-सी आ गयी। उस समय दिगम्बराचार्य देशभूषणजी म., तपागच्छ के विशालविजय जी म.सा., तेरापंथ के मुनि श्री नगराजजी म., खरतरगच्छ की पूज्या श्री सज्जनश्रीजी म.सा. और स्थानकवासी किसी विद्वान् आचार्य का चातुर्मास था। प्रति रविवार को एक ही मंच से सभी का व्याख्यान होता। पन्द्रह-बीस हजार श्रोताओं की उपस्थिति हो जाती। विभिन्न आम्नायों के सुमेल और सद्भाव की छटा देखते ही बनती थी।

यद्यपि सभी पूज्यवरों की अपनी प्रवचन शैली, भाषा प्रवाह और रसमयता थी, किन्तु सज्जनश्री जी म.सा. की शैली में कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण तथा भाषा में कुछ ऐसा रंग था, बोलीवाणी में कुछ ऐसी मिश्री-सी मिठास थी कि तालियों की गड़गड़ाहट से सारा पांडाल गूँज उठता, श्रोताओं पर आपकी भाषा का रंग चढ़ जाता, आपकी सुरीली शब्दावली उनके कानों से होकर हृदय तक पहुँच जाती, तन-मन सब सराबोर हो जाता। जयपुर संघ अपको अमूल्य दिव्यमणि के समान मानने लगा था। आपके प्रवचनों का मुख्य विषय सेवा होता। आप विभिन्न तर्कों और उदाहरणों से सेवा का महत्त्व प्रतिपादित करतीं और सेवा धर्म को जीवन में उतारने की प्रेरणा देतीं। आपकी कथनी-करनी में एकता थी तथा जीवन में भी सेवाधर्म साकार था। यद्यपि भर्तृहरि ने सेवाधर्म को अत्यन्त कठिन और योगियों के लिए भी अगम्य कहा है तथापि उसी अति कठिन सेवाधर्म को आपने अपना सहज स्वभाव बना लिया था।

पूज्या प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्री जी म.सा. का महाप्रयाण

संवत् 2023, पूज्या प्रवर्तिनीजी म.सा. की बार्धक्यावस्था पूर्णता पर थी; किन्तु उनकी ज्ञान-ध्यान-साधना यथावत् चल रही थी। शरीर सामान्य था, स्फूर्ति और अप्रमत्तता भी थी। यद्यपि सेवा में साध्वियाँ तत्पर रहती थीं, पर वे अपना सब काम स्वयं ही करती थीं। आलस्य का नाम भी नहीं था। चैत्र कृष्णा 4 को आपने पूज्या सज्जनश्री जी से केश लोंच भी करवाया। स्थण्डिल के लिए आप 2 मंजिल नीचे पधारती थीं।

चैत्र 7 का दिन, प्रातः का समय, पूज्या प्रवर्तिनीश्री जी म.सा. स्थंडिल के लिए 2 मंजिल नीचे उतरीं। सदा की भांति पूज्या सज्जनश्री जी साथ ही थीं। पूज्या श्री तिरपनी में पानी भर रही थीं कि सहसा ही बोल उठी—सज्जनश्री जी !

मेरा साथ नहीं उठता। सज्जनश्री जी सुनकर एकदम घबरा गईं। अन्य साध्वियों को बुलाया। सभी मिलकर पूज्याश्री को पाट पर ले गईं। उस समय तक प्रवर्तिनी जी को कुछ होश था, बोलना चाहा पर न जबान हिली और न ही आवाज निकली, वे अचेत हो गयी थीं।

प्रातः पूजा आदि के उपरान्त श्रावक-श्राविका प्रवर्तिनी जी से मांगलिक सुनने आते थे, वे आये और आपकी यह दशा देखकर चिन्तित हो गये। तुरन्त डाक्टर को बुलवाया। उसने निरीक्षण करके बताया—आपको हेमरेज (दिमाग की नस फट जाना) हो गया है, साथ ही पक्षाघात (पेरेलिसिस) का भी हल्का-सा असर है। इसकी मियाद 72 घण्टे है। बचना तो बहुत ही मुश्किल है, फिर भी हॉस्पीटल ले चलिए। हम अपना पूरा प्रयास करेंगे कि जीवन लौट आये।

इतना कहकर डाक्टर चला गया। साध्वीगण और श्रावक-श्राविकाओं ने मिलकर सलाह की और इस निर्णय पर पहुँचे कि हॉस्पीटल नहीं ले जाना। इस निर्णय का एक आधार पूज्या प्रवर्तिनीजी की स्वयं की इच्छा भी थी। उन्होंने साध्वियों से कह रखा था—यदि मैं बेहोश हो जाऊँ तो न कभी हॉस्पीटल ले जाना और न डाक्टरों का हाथ मेरे शरीर से लगवाया। स्थिति यह थी कि पूज्या प्रवर्तिनीजी की 70 वर्ष की लम्बी संयम पर्याय में न कभी पुरुष का स्पर्श हुआ था और न डोली में ही बिठाने का प्रसंग उपस्थित हुआ था, अतः सम्पूर्ण साध्वी-मंडल और प्रमुख श्राविका शिखरबाई सा. आदि द्वारा हॉस्पीटल न ले जाने का निर्णय किया गया।

फिर भी, जैसी कि लोकोक्ति है, जब तक साँस–तब तक आस। जीवन बचाने का मनुष्य हर सम्भव प्रयास करता ही है। पूज्या प्रवर्तिनीजी की साँस भी चल रही थी, अतः लेडी डाक्टर को बुला कर इंजेक्शन लगवाया गया पर कोई परिणाम न निकला। प्रवर्तिनीजी जब से बेहोश हुईं तभी से नवकार मन्त्र की धुन, औपदेशिक भवन, सज्झाय, स्तवन आदि होते रहे। आखिर चैत्र कृष्णा 10 का दिन आया। साँस धीमी होते-होते संध्या के समय 6.50 पर बन्द हो गई। हल्की-सी फट् की आवाज हुई, जिसे समीप बैठी पूज्या सज्जनश्री जी ने सुना, प्रवर्तिनीश्री जी का आत्मा सहस्रार केन्द्र से निकलकर ऊर्ध्वगामी स्वभाववश स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गया।

गुरुवर्याजी का जीवन जल में कमलवत् सर्वथा निर्लेप था। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की ज्योति, सरलता-कोमलता की साक्षात् प्रतिमा, तात्त्विक ज्ञान की प्रज्वलित प्रभा,

अप्रमत्त, साधिकार ज्ञान-ध्यान-जप योगिनी, सर्वथा निश्छल स्वभाव, दुराव-छिपाव रहित सर्वथा सरल-सहज जीवन था आपश्री का ।

उज्ज्वल गेहुंआ रंग, स्मितमयी तेजस्वी मुखाकृति, तपः-तेज से दीप्त भाल, परम शांत अधखुले नयन, सरल किन्तु तीक्ष्ण नासिका, मध्यम कद, सुन्दर देहयष्टि, अत्यन्त कोमल करतल, शंखावर्त जाप की अभ्यस्त अँगुलियाँ, तर्जनी आदि पर घूमता अँगूठा, ऐसा आकर्षक और प्रभावशाली बाह्य व्यक्तित्व था आपश्री का । जिन्होंने उनके उस स्वरूप को देखा है, आज भी वह उनके नेत्रों में चलचित्र की तरह घूमता रहता है ।

संसारी जीवन में भी आप सिर्फ बैलगाड़ी और ऊंट गाड़ी में ही बैठीं । अन्य किसी वाहन का उपयोग ही नहीं किया । किन्तु संसारी जीवन रहा ही कितना ! नौ वर्ष की आयु में माता-पिता ने विवाह के बंधन में बांध दिया । लेकिन भावी को तो उनका उत्तम संयमी जीवन मंजूर थां । विवाह के छह महीने बाद ही पतिदेव का स्वर्गवास हो गया । ससुर-गृह जाने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हुआ । 13 वर्ष की किशोर वय में ही स्वनामधन्या पूज्या पुण्यश्रीजी म. सा. के सान्निध्य में भागवती दीक्षा स्वीकार करके संयम के कंटकीय मार्ग पर चल पड़ीं । 70 वर्ष तक निर्दोष संयम का पालन किया और 83 वर्ष की आयु में इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया ।

आपश्री की अन्तिम यात्रा में हजारों व्यक्ति सम्मिलित हुए, जिन्होंने सश्रद्धा-अश्रु श्रद्धांजलि समर्पित की ।

एक चमत्कार : आँखों देखा

पूज्या प्रवर्तिनीजी के प्रति अनन्य श्रद्धा थी मद्रास निवासी श्रीमान् मिश्रीमलजी और उनकी पत्नी की । वे परिवार सहित पूज्याश्री के अन्तिम दर्शनों के लिए जयपुर आये, लेकिन गाड़ी के लेट होने से अन्तिम दर्शन न हो सके । संध्या हो चुकी थी । सीधे मोहनबाड़ी पहुँचे । उन्होंने देखा कि चिता में सिर की ओर दिव्य आभा-विकीर्ण ज्योति अभी भी प्रज्वलित है जो चारों और सुगन्धमय प्रकाश विकीर्ण कर रही है । इस चमत्कार को देखकर वे अभिभूत हो गये । उन्होंने साध्वियों को जब यह सुनाया तो सभी श्रद्धावनत हो गईं ।

पूज्या प्रवर्तिनीजी के वियोग से सम्पूर्ण साध्वीमण्डल स्वयं को अनाथ-सा अनुभव कर रहा था, सभी को गहरा शोक था । ऐसे समय में पूज्या श्री विजयश्री

जी म. सा., पूज्या श्री कल्याणश्री जी म. सा. आदि ने सबको धैर्य बंधाया, संवेदना प्रकट की।

पूज्या विचक्षण श्री जी को प्रवर्तिनी पद

जयपुर संघ ने पूज्या प्रवर्तिनीजी के देवलोकगमन पर धूम-धाम से शांतिस्नात्र, महापूजन, अठाई महोत्सव आदि करवाये। अन्य अनेक स्थानों पर भी अठाई महोत्सव हुए। आपके स्थान पर पूज्या जैनकोकिला विचक्षण श्री जी को प्रवर्तिनी के पद पर अधिष्ठित किया गया।

विशिष्ट व्यक्तित्व की झलक

सामान्यतया एक स्थान पर रहने से उस स्थान के प्रति सहज राग हो जाता है और श्रावकगण भी उदासीन रहने लगते हैं। कहा भी है–अतिपरिचयात् अवज्ञा। लेकिन यह सब विशिष्ट व्यक्तित्व वालों के लिए सत्य नहीं। पूज्या सज्जनश्री जी विशिष्ट व्यक्तित्व वाली थीं। वे एक स्थान (जयपुर) पर गुरुवर्या की निश्रा में 22 वर्ष तक रहीं, फिर भी श्रावक-श्राविका उन्हें अनवरत श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे। इसका कारण रहा, उनके विशिष्ट गुण। आप स्नेह, शुचिता, उदारता की प्रतिमूर्ति थीं। 'जहा अन्तो तहा बहिं आदर्श'–उनमें मूर्तिमान था। एकान्त में हों अथवा समाज में–सर्वत्र एक समान ही रूप, व्यवहार, आचार, विचार और ज्ञान में, अध्ययन में, जपाराधना में निमग्नता, सर्वथा निखालिस स्वर्ण। दोष-खोट-मल का नाम-निशान भी नहीं। ये ही उनकी कुछ विशेषताएँ थीं, जिनके कारण दीर्घकाल तक एक स्थान पर रहकर भी आप लोकप्रिय एवं निर्दोष बनी रहीं।

वैराग्यवती सुश्री किरण की दीक्षा

श्री कमलचन्दजी सा. बाँठिया की सुपुत्री सुश्री किरण वैरागिन के रूप में पूज्या सज्जनश्री जी के पास रही थीं। श्री शशिप्रभाजी के साथ ही उसने भी उच्चतर माध्यमिक बोर्ड, अजमेर से मैट्रिक की परीक्षा दी थी। गृहस्थाश्रम में कौमुदी और अमरकोश प्रारम्भ कर दिये थे। धार्मिक शिक्षा भी त्वरित गति से प्राप्त कर रही थीं। उन दिनों शशिप्रभाजी को संस्कृत का अध्ययन कराने के लिए उद्‌भट् विद्वान् पण्डित प्रवर चण्डीप्रसादजी आचार्य, जो महाराजा संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य थे व प्रिंसीपल पद पर भी रह चुके थे, आते थे। उन्हीं की सत् प्रेरणा से उन्हीं के द्वारा सुश्री किरण ने भी संस्कृत प्रवेशिका की पढ़ाई प्रारम्भ की और निर्धारित समय में परीक्षा देकर फर्स्ट क्लास मार्क्स प्राप्त किये। दूसरी ओर उनकी (किरण की) वैराग्य भावना भी दिनानुदिन अभिवर्द्धित हो रही थी। पूज्या

प्रवर्तिनीजी के स्वर्गवास के बाद उनका दीक्षा ग्रहण करने का भाव बहुत बढ़ गया। उनके वैराग्य की कई कठिन परीक्षाएँ भी ली गईं, पर वे उन सब में सफल हुईं। आखिर उनकी दृढ़ता से प्रभावित होकर ताऊजी श्री सुगनचन्दजी बांठिया, पिताजी श्री कमलचन्दजी बांठिया आदि सभी परिवारीजनों ने स्वीकृति प्रदान कर दी।

आषाढ़ शुक्ल 6 के दिन तपागच्छीय श्री विशालविजयी म. तथा श्री राजशेखर जी म. की निश्रा में एवं पूज्या श्री कल्याणश्री जी म. सा. आदि के सान्निध्य में बांठिया परिवार ने श्रीसंघ के सहयोग से त्रिपोलिया स्थित आतिश मार्केट में खूब धूमधाम से विराट् समारोह के साथ वि.सं. 2024 में सुश्री किरण की दीक्षा सम्पन्न कराई। पूज्य श्री विशालविजयजी म. ने भागवती दीक्षा की सम्पूर्ण क्रिया खरतरगच्छ परम्परा के अनुसार करवाई। किरण जी का दीक्षोपरान्त नाम प्रियदर्शनाजी रखा गया और आपको श्री सज्जनश्री जी की शिष्या घोषित किया गया।

चातुर्मास अत्यन्त निकट था और बाल साध्वी प्रियदर्शना भी जयपुर की थीं, अतः जयपुर संघ के अत्यधिक आग्रह पर पूज्या सज्जनश्री जी ने सं. 2024 का चातुर्मास जयपुर में ही किया। इस चातुर्मास की विशेषता यह थी कि यह चातुर्मास आपने स्वयं के निर्णय पर किया था, क्योंकि अब तक के सभी चातुर्मास पूज्या प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी महाराज के आदेश से अथवा उनकी निश्रा में हुए थे।

वीरबालिका विद्यालय में दीक्षा रजत-जयन्ती एवं विदाई समारोह

पूज्या सज्जनश्री जी को भागवती दीक्षा ग्रहण किये हुए 25 वर्ष हो रहे थे। इस उपलक्ष्य में जयपुर के वीर बालिका विद्यालय ने कार्तिक सुदी 5 (स्कूल का स्थापना दिवस) को आपश्री की दीक्षा की रजत-जयन्ती मनाई। आपके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए भावाभिसिंचित अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया।

जयपुर से विदायी

चातुर्मास की समाप्ति पर जयपुर श्रीसंघ ने "शिवजीराम भवन" में विदाई समारोह का आयोजन किया। जिसमें सैंकड़ों व्यक्ति उपस्थित थे। प्रमुख व्यक्तियों ने आप के 25 वर्षीय निर्दोष संयमी जीवन पर प्रकाश डाला। आपके विशिष्ट गुणों का वर्णन किया और सत्कामना की कि जयपुर का यह कोहिनूर दशों दिशाओं में अपनी भव्य आभा विकीर्ण करता रहे।

मंत्रिवरश्री कोठारीजी ने संघ की ओर से कमली ओढ़ाकर आपका बहुमान किया, सेठश्री कल्याणमल जी गोलेच्छा ने भी आपको कमली ओढ़ाई। श्रीमती कमला देवी बांठिया ने अपनी सुरीली-बुलन्द आवाज में विदाई गीतिका गाई जिसके

भाव इतने मार्मिक थे कि उपस्थित जन समूह के नयन सजल हो उठे। अन्त में, सभी की भावाञ्जलियाँ स्वीकृत करते हुए आपने भावोद्‌गार व्यक्त किये-"इतने समय मैं जयपुर में रही हूँ, किसी प्रकार का अविनय हुआ हो, कटुवचन निकल गया हों, किसी का दिल दुःखाया हो तों हृदय से क्षमाप्रार्थिनी हूँ।" सम्पूर्ण वातावरण अत्यन्त हृदयग्राही एवं विदायीमय हो रहा था।

वहाँ से आप अपनी गुरुबहनों (शीतलश्री जी, जिनेन्द्रश्री जी) तथा शिष्याओं (शशिप्रभाजी, प्रियदर्शनाजी) के साथ रामलीला मैदान की ओर पधारीं। सैंकड़ों व्यक्ति साथ थे। जय-घोषों से धरा-गगन गूँज रहे थे। रामलीला मैदान में आपने सबको मांगलिक सुनाया। सभी भरे हृदय लिये हुए अपने-अपने निवास स्थानों की ओर चले गये और आपने अपने कदम अजमेर होते हुए नाकोड़ाजी की ओर बढ़ा दिये। क्योंकि वहाँ पू. अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागरजी म. व पू. श्री दर्शनसागरजी म. की निश्रा में बाड़मेर संघ की ओर से उपधान हो रहा था तथा उनकी आज्ञानुसार नूतन साध्वी प्रियदर्शनाजी की बड़ी दीक्षा भी वहीं करवानी थी।

नाकोड़ाजी में प्रियदर्शनाजी की बड़ी दीक्षा

क्रमशः अजमेर, व्यावर, पाली, जोधपुर आदि क्षेत्रों को स्पर्शती हुयीं आप तीर्थ शिरोमणि नाकोड़ा पहुँची। वहाँ वि.सं. 2024 की माघ कृष्ण एकादशी को उपधान की माला के दिन बड़े ठाठ-बाट से नूतन साध्वी प्रियदर्शनाजी की बड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई।

बीकानेर चातुर्मास के लिए प्रस्थान

इस अवसर पर अनेक क्षेत्रों के लोग आये हुए थे। अन्य लोगों से पू. सज्जनश्री जी की प्रशंसा सुनकर और प्रत्यक्ष आपके व्याख्यान आदि से प्रभावित होकर अपने-अपने क्षेत्र में चातुर्मास की आग्रह भरी विनती करने लगे, किन्तु आपने बीकानेर चातुर्मास की विनती स्वीकारी। उसका सम्भवतः एक कारण यह था कि साध्वी शशिप्रभाजी को शास्त्री परीक्षा दिलवानी थी और परीक्षा केन्द्र बीकानेर में ही था।

नाकोड़ा से माघ शुक्ला 3 के दिन विहार कर अपनी शिष्य-मण्डली के साथ आप जोधपुर पधारीं। पूज्या अनुयोगाचार्यजी भी जोधपुर पधार गये।

कापरड़ा संघ

पू. श्री कांतिसागरसूरिजी म. की निश्रा में जोधपुर निवासी चांदजीबाई-सा की भावना कापरड़ा संघ निकालने की थी और पूज्यश्री भी स्वीकृति दे चुके थे।

सूरिजी की आज्ञा और चांदजीबाई-सा के आत्याग्रह से कापरड़ा तक आप सभी साथ रहीं। जोधपुर से आई हुई मुख्य श्राविका भी बीकानेर तक साथ चलने को तैयार हो गयीं। कापरड़ा से पूज्य गुरुदेव की आज्ञा लेकर आप सभी पींपाड़, साथीन होती हुयीं नागौर पधारीं। वहाँ पूज्याश्री चंचलश्री जी म. सा., कमलाश्री जी म. सा. आदि विराज रही थीं। उनकी निश्रा में फागुन शुक्ला 5 को पूज्य कवि सम्राट् का स्वर्गारोहण समारोह मनाया गया और मध्याह्न में दादा गुरुदेव की पूजा भणाई।

वहाँ से विहार कर आप सभी गोगोलाव होती हुयीं फाल्गुन शुक्ला 11 के दिन गंगाशहर पधारीं।

बीकानेर चातुर्मास (सं. 2025)

पूज्या सज्जनश्री जी के बीकानेर आगमन के समाचार त्वरितगति से नगर में फैल गये। बड़ी धूमधाम से नगर-प्रवेश कराया गया। हजारों लोग थे। जुलूस बाजारों में होता हुआ निकला। चिंतामणिजी व आदीश्वर जी के मन्दिरों के दर्शन किये और शिष्यामंडली सहित रांगड़ी चौक स्थित सुगनजी के उपाश्रय में पहुँचीं। वहां अत्यन्त प्रभावशाली प्रवचन दिया जिसे सुनकर सभी लोग गद्‌गद् हो गये। प्रतिदिन व्याख्यान का क्रम चालू हो गया।

शाश्वत ओली पर्व आने वाला था, अतः आपने 'श्रीपालचरित्र' शुरू करा दिया। आपके समीक्षात्मक विवेचन और सुन्दर वाचन की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। रामनवमी और महावीर जयन्ती का समारोह हर्षोल्लास पूर्वक मनाया गया तथा चैत्री पूर्णिमा के दिन भी अच्छी तरह पर्वाराधन किया गया। तत्त्वज्ञ श्रावकों के आग्रह पर आपने 'राजप्रश्नीय सूत्र' का वाचन किया। आपकी विवेचना शैली से प्रभावित होकर जनता खिची चली आती, उपाश्रय का हॉल भर जाता, कितनी ही श्राविकाएँ तो बराबर के उपाश्रय की खिड़कियों में बैठकर आपका व्याख्यान सुनतीं।

साध्वी शशिप्रभाजी ने वैशाख के महीने में शास्त्री प्रथम खण्ड की परीक्षा निर्विघ्न दी।

चातुर्मास प्रारम्भ हो गया। पूज्या सज्जनश्री ने आचारांग के वाचन का निर्णय लिया, क्योंकि इसमें आचार-धर्म का विशद् विवेचन है। ज्ञानपूजा के साथ सूत्र का प्रारम्भ हुआ। आपकी व्याख्यान शैली से श्रोता झूम उठते थे। वास्तव में

वस्तु का विश्लेषण करने की आप में अद्भुत क्षमता थी। इसीलिए गच्छ में आप सर्वोपरि आगमज्ञा कही जाती थीं।

श्री विजयसमुद्रसूरिजी म. का सौजन्य

इसी चातुर्मास में आचार्य विजयवल्लभ सूरिजी के पट्टधर शिष्य पू. श्री विजयसमुद्रसूरिजी म. अपनी शिष्यमंडली के साथ वर्षावास हेतु बीकानेर पधारे हुए थे। उनके साथ 18 मुनिराज और अनेक साध्वियाँ थीं। आचार्य विजयवल्लभ सूरिजी म. बड़े ही समयज्ञ, निश्छल और उदार विचारों वाले थे और गच्छीय भेद-भाव से सर्वथा परे थे। उनकी इस विशालहृदयता का असर उनके साधु समुदाय पर पड़ा, अतः आज भी आपके साधुगण किसी से मिलते हैं तो बड़ा स्नेह व आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते हैं।

खरतरगच्छ के साधु-साध्वी तो वैसे भी प्रायः सरल हृदयी और व्यवहार कुशल होते हैं। दोनों ओर के परस्पर सद्व्यवहार के कारण आचार्य श्री विजयसमुद्र सूरि जी व उनके समुदाय का पूज्या सज्जनश्री जी और उनकी शिष्यामंडली के साथ बड़ा ही सौजन्यतापूर्ण व्यवहार था। संपूर्ण चातुर्मास में आचार्यश्री की वात्सल्य-पूर्ण स्रोतस्विनी प्रवाहित रही। प्रत्येक समारोह में वे पूज्या सज्जनश्री जी को सादर आमन्त्रित करते और अपने व्याख्यान में अपने ही मुख से उनकी विद्वत्ता और सद्गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते। सुनकर लोग चकित रह जाते, सोचते—पूज्यश्री की कितनी उदारता! तपागच्छ में जहाँ श्रावक लोग किसी साध्वी का व्याख्यान भी सुनना पसन्द नहीं करते, वहाँ ये आचार्य होकर भी अन्य गच्छ की साध्वी की प्रशंसा अपने मुख से करते हैं। वस्तुतः यह प्रशंसा आज उनके विशिष्ट निर्दोष-श्रमणाचार की थी और थी उदारता, सहृदयता, सरलता, प्रकांड विद्वत्ता आदि अलभ्य गुणों की, जो पू. सज्जनश्री जी में विद्यमान थे। इसी कारण उनका श्रमणी मंडल अत्यधिक समादृत हुआ। प्रत्येक संक्रान्ति समारोह पर उनकी उपस्थिति अनिवार्य बन गयी थी।

एक बार कोचरों के चौक में विराट् रूप में संक्रान्ति महोत्सव का आयोजन था और उसी के साथ था योगोद्वाहक मुनिजनों का पदवी महोत्सव तथा उपधान तप के आराधकों का मान-महोत्सव। तीन आयोजन एक साथ होने से विशाल जनसमूह तो एकत्र होना ही था। 20-25 बसें बाहर से आयीं, इतने ही खुले टिकट आये थे। जयपुर से एक बस पंजाबी समुदाय की आई थी और से पूज्या सज्जनश्री जी की मातुश्री तथा सेठ कल्याणमलजी गोलेच्छा (संसारपक्षीय पति) का भी आगमन हुआ था। बीकानेर के लोग तो थे ही। चालीस हजार श्रोता संख्या हो गयी

थी। इस विशाल जन-मेदिनी में आप ने जो जोशीला, प्रभावपूर्ण, धारा प्रवाह भाषण दिया तो सभी श्रोता दाँतों तले अँगुली दबा गये। समझ ही नहीं पाये कि वे एक साध्वी हैं अथवा सदेह सरस्वती! कैसी सुरीली आवाज है मानो सरस्वती की वीणा ही झंकृत हो रही हो। एक-एक शब्द में सरलता भरी है, गजब का आकर्षण और प्रेषणीयता है। भाषण क्या है, चमत्कार है, जादू है!

इस भाषण को सुनकर कल्याणमलजी के नेत्र भी हर्षातिरेक से भर आये और बीकानेर ही नहीं आस-पास के सभी क्षेत्रों में आपकी ख्याति प्रसरित हो गई। इसी प्रकार तेरापंथ के विद्वानमुनि शतावधानी श्री राजकरणजी व पार्श्वचन्द्र गच्छ के विद्वान मुनि श्री सुरेशचन्द्रजी म० के साथ भी एक मंच से आपके कई भाषण हुए। सर्वत्र आपकी वक्तृत्व कला की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई।

पूज्या श्री की विशालहृदयता

चातुर्मास के पश्चात एक बार अपनी शिष्या समुदाय के साथ आप भीनासार पधारीं। वहाँ पूजा महोत्सव था। उसमें सम्मिलित होने के लिए पू० समुद्रसूरिजी भी अपने शिष्य-शिष्या मंडल के साथ पधारे थे। पूजा के साथ तपागच्छ संघ की ओर से साधर्मीवात्सल्य का आयोजन भी था। पूजा समाप्ति पर आप जैसे ही उठकर जाने लगीं कि श्रावकों ने बहरने का अत्यधिक आग्रह किया। आप विचार में पड़ गयीं कि पात्रे तो लाये ही नहीं, बहरें कैसे? आपकी त्वरित बुद्धि ने तुरन्त उपाय सोच लिया। तपागच्छीय प्रवीणश्री जी म.सा. आदि से पात्रे लिए और बहरने पधार गईं। आपश्री के हाथ में भक्तों ने जब लाल रंग के पात्रे देखे तो पहले तो लोग चकित हुए और फिर आपकी विशालहृदयता का अनुभव करके आनन्दित हो उठे। बहरा हुआ आहार तपागच्छीय साध्वीजी के साथ ही आपने ग्रहण किया। आपके स्नेह से सभी अभिभूत व आल्हादित हो गये। बीकानेर का यह ऐतिहासिक चातुर्मास आज भी लोगों की स्मृति में ताजा है।

वैशाख मास में शशिप्रभाजी को शास्त्री (द्वितीय खण्ड) की परीक्षा देनी थी, अतः चातुर्मास के बाद भी आपको बीकानेर में ही ठहरना पड़ा।

इस बीच बीकानेरवासियों ने दूसरे चातुर्मास की आग्रह भरी विनती शुरू कर दी; किन्तु फलौदी (फलवर्द्धि) नगरी में विराजित वात्सल्यमयी त्यागमूर्ति श्री चम्पाश्री जी म.सा. का आग्रहपूर्ण आदेश था चातुर्मास हेतु फलौदी आने का। और चरितनायिकाजी का यह विरल गुण कि वे बड़ों की आज्ञा को अनुल्लंघनीय मानती थीं। इसलिए बीकानेर चातुर्मास की स्वीकृति न दे सकीं। अस्वीकृति से बीकानेर

संघ को दुःख तो बहुत हुआ पर करते क्या ? आखिर बड़े ही समारोहपूर्वक विदाई दी और साथ ही पुनः पधारने की भाव-भीनी विनती भी की ।

सैंकड़ों नर-नारियों के साथ आपने अपनी शिष्या-मंडली सहित फलौदी की ओर कदम बढ़ाये । पहली मंजिल 'नाल' पहुँचे । यह कुशल गुरुदेव का बड़ा ही चमत्कारिक स्थान है । बीकानेर संघ ने यहाँ पूजा और साधर्मिवात्सल्य का आयोजन किया था । सर्व कार्य व्यवस्थित रूप से सम्पन्न होते ही उस शुष्क प्रदेश में ज्येष्ठ मास की भयंकर गर्मी में इतनी तेज वर्षा हुई कि लोग चकित रह गये । कहने लगे– पूज्याश्री ने क्रोध, मान आदि कषायों की आग से तप्त हमारी मानस-भू को जिस प्रकार शीतल बनाया है, उसी प्रकार प्रकृति ने भी भूमि को ठण्डक प्रदान की है । यह सब पूज्याश्री की साधना का ही चमत्कार है ।

दूसरे दिन शीतल-सुखद वातावरण में विहार करके आपश्री झज्झू पधारीं । वहाँ भी बीकानेर संघ की ओर से स्वामी-वात्सल्य था । मध्यान्ह में प्रवचन पीयूष का पान कराकर सबको सन्तुष्ट किया । कइयों ने विभिन्न प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये । यद्यपि मरुधरा की ज्येष्ठ मास की गर्मी अति भयंकर होती है । उसमें विहार करना अति कष्टप्रद है, किन्तु बीकानेर संघ की भक्ति के कारण मार्ग सुखपूर्वक पूर्ण हो गया । सानन्द फलौदी की सीमा में पहुँच गये ।

फलौदी चातुर्मास (वि. सं. 2026)

दो-तीन मंजिल पहले ही फलौदी के लोगों का आगमन शुरू हो गया था । साध्वी श्री जितेन्द्र श्री जी म. तथा जिनेन्द्रश्री जी म. एवं सूर्यप्रभाजी म. आदि एक मंजिल तक लेने आईं । बड़े हर्षोत्साह के साथ नगर प्रवेश हुआ । जिन-दर्शन-वन्दन करती हुईं बड़े उपाश्रय पधारीं । वहाँ से वात्सल्यसरिता पू. श्री चम्पाश्री जी म. सा., श्री रतिश्रीजी म. सा. आदि के दर्शन कर आपने स्वयं को कृतार्थ माना । हृदय आनन्द सागर में निमग्न हो गया । स्वयं पूज्येश्वरी को भी अमित हर्ष हो रहा था ।

चातुर्मास प्रारम्भ हुआ । यहाँ के श्रावक तात्त्विक रुचि वाले थे; अतः आचारांग, द्वितीय श्रुतस्कन्ध और 'आरामशोभा चरित्र' प्रारम्भ किये । श्रोताओं की संख्या दिनों-दिन बढ़ने लगी । यहाँ आपके अध्ययन-अध्यापन का कार्य भी सुचारु रूप से चल रहा था । मध्याह्न में सर्व साध्वियों को अनुयोगद्वार सूत्र की वाचना देते और 'प्रद्युम्न चरित्र' पढ़ाते थे ।

साध्वी शशिप्रभाजी म.सा. ने पूज्यवर्याओं की निश्रा में मासक्षमण तप प्रारम्भ किया । उपवास के पाँचवें दिन से शासनदेवी के गीत प्रारम्भ हो गये ।

बहनों में बहुत उत्साह था। सेवामूर्ति जितेन्द्रश्री जी म. सा. तपस्विनी की सेवा में संलग्न हो गईं। वे दिन में तपस्विनी की सेवा करतीं और रात्रि में अपनी पूज्याश्री व पू. सज्जनश्री जी की सेवा करतीं। उनकी सेवा भावना से सभी साध्वियाँ अभिभूत थीं।

सहसा दुःखद प्रसंग यह बना कि साध्वी शशिप्रभाजी की तपस्या के दौरान फलौदी के अग्रगण्य श्रावक श्रीमान गुलाबचन्दजी गोलेच्छा का अकस्मात ही हृदय गति रुकने से निधन हो गया। इस घटना से तप की पूर्णाहुति का हर्ष तो कम हो गया पर कार्य सभी किये गये। पंचरंगी तप, 15-16 अठाइयाँ, शंखेश्वर के अट्ठम आदि तथा अठाई महोत्सव, वरघोड़ा, रात्रि जागरण, स्वामि-वात्सल्य के साथ मासक्षमण तप सानन्द सम्पन्न हुआ। पारणा एवं स्वामिवात्सल्य का सम्पूर्ण लाभ शशिप्रभाजी के संसारपक्षीय भ्राता श्री मूलचन्दजी सा. गोलेच्छा ने लिया।

पूज्य चम्पा श्री जी म.सा. क समुदायाध्यक्षा' पदवी

इसी समय बीकानेर में शशिप्रभाजी द्वारा दी गयी। शास्त्री परीक्षा के दो खण्डो के परिणाम निकले, उनमें वे सैकण्ड डिवीजन में उत्तीर्ण हुईं।

वात्सल्यनिधि पूज्या श्री म.सा. अपने जीवन के 80 वर्ष और संयमी पर्याय के 67 वर्ष पूर्ण कर चुकी थीं। उनका संयमी जीवन कोरी चादर के समान निर्मल था। अतः, सर्व ज्येष्ठ होने के कारण चरितनायिकाजी ने उन्हें 'समुदायाध्यक्षा' के पद पर प्रतिष्ठित किया तथा स्वयं के द्वारा रचित गीतिका सुनायी, जिसे सुनकर जनता भाव विभोर हो उठी।

इस प्रकार नित्य नये कार्यक्रमों के साथ फलौदी चातुर्मास पूर्ण सफल हुआ। यद्यपि चातुर्मास के पश्चात् फलौदी संघ ने मौन एकादशी तक रुकने का आग्रह किया किन्तु आपको जैसलमेर लौद्रवपुर की यात्रा करनी थी, आपकी भावना से पूज्येश्वरी परिचित थीं, अतः वे तटस्थ रहीं। आपने फलौदी रुकना स्वीकार नहीं किया और पूज्येश्वरी की आज्ञा तथा संघ की सहमति से विहार कर दिया।

विदाई वेला भावविह्वल कर देने वाली थी। पूज्याओं को छोड़ते हुए आपका मन विकल था, जनता के नेत्र अश्रुपूरित थे ही। विदा लेकर व देकर आप आगे बढ़ रही थीं, कुछ लोग अब भी साथ चल रहे थे। जितेन्द्रश्री जी म. आदि दो-तीन साध्वियाँ एक मंजिल तक एक साथ आईं थीं। वहाँ से जनता तथा साध्वीजी म. वापिस लौट गये। मात्र शशिप्रभाजी की बहन तेजाबाई आदि 2-3 व्यक्ति मार्ग-सेवा के लिए साथ रहे।

जैसलमेर में

क्रमशः विहार करती हुयीं आप जैसलमेर की पावन भूमि में पहुँचीं और महावीर भवन में विश्राम लिया। दूसरे दिन आप किले पर पधारीं। वहाँ शिखर-बद्ध जिन-मन्दिरों के दर्शन से ही हृदय आनन्दविभोर हो गया। शिल्पियों ने अद्भुत कला दिखाई है। अन्दर विराजमान प्रतिमाएँ तो इतनी विशाल और आकर्षक हैं कि उनकी छवि निरखते हुए न मन थकता है, न नेत्र तृप्त होते हैं, वाणी मूक हो जाती है, बस देखते ही रहो, देखते ही रहो—ऐसी दशा हो जाती है तन-मन-नयन की। सम्पूर्णतः व्यक्ति भक्ति रस में सराबोर हो जाता है। ये प्रतिमाएँ भी एक-दो नहीं साढ़े छह हजार हैं। दर्शन-वन्दन से सभी के तन-मन-नयन तृप्त हो गये। भक्ति रस उमड़ चला। ग्रन्थ भंडार देखा तो पूर्णतः व्यवस्थित। पू. श्री पुण्य-विजयजी महाराज ने उसे पूर्ण व्यवस्थित करके अमित पुण्योपार्जन किया है।

एक और भी वस्तु दृष्टि-पथ में आई। बड़ी चमत्कारी। वह थी—बड़े दादा जिनदत्त सूरीश्वर जी की चादर। अग्नि संस्कार के समय यह चादर जली नहीं थी, अग्नि से अप्रभावित रही थी और आज 900 वर्ष बाद भी जैसी की तैसी है। न तो मौसम का ही कोई प्रभाव है इस चादर पर और न काल का ही। यह सब पूज्य दादा जिनदत्त सूरीश्वर के निर्मल तप-त्याग-साधना का प्रभाव है, जो उनकी चादर के रूप में स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

लौद्रवपुर में चमत्कार

आठ दिन जैसलमेर में ठहर कर आप सब समीपस्थ महान् तीर्थ लौद्रवपुर पधारे। वहाँ सहस्रफणा पार्श्वनाथ प्रभु के बिम्ब के दर्शन कर हृदय आल्हाद से भर गया। दर्शन-वन्दन कर नीचे उतर रहे थे तो एक और चमत्कार से साक्षात्कार हो गया। हुआ यह कि मन्दिर के तोरण द्वार पर लटकते हुए अधिष्ठायक देव की पूंछ शशिप्रभाजी की कमली पर आ गयी। भारीपन-सा लगा और मुड़कर देखा तो पूंछ लटकती दिखाई दी। भय मिश्रित आश्चर्य के भाव उमड़ने लगे। इतने में पुजारीजी आ गये। सभी ने एक-डेढ़ मिनट तक अच्छी तरह देव के दर्शन किये। पुजारी चकित स्वर में कहने लगे—महाराज साहब! आप बहुत भाग्यशालिनी हैं कि अनायास ही इतनी देर तक आपको दर्शन दिये, अन्यथा अनेकों प्रयत्न करने पर भी ये दर्शन नहीं देते।

इस घटना से प्रगट हो जाता है कि सच्चे त्यागी-तपस्वी श्रमण-श्रमणियों को अनायास ही देव-दर्शन हो जाते हैं।

वहाँ से विहार करके अमरसर के मन्दिर के दर्शन किये और पुनः जैसलमेर पधारे। वहाँ से बाड़मेर की ओर प्रस्थान किया। पू. चरितनायिकाजी की कमर में वायु दर्द हो गया था, वहाँ आयुर्वेदिक इलाज कराया। 15 दिन में आरोग्य लाभ करके नाकोड़ा तीर्थ की यात्रा करते हुए जोधपुर आये।

जोधपुर-मालपुरा-जयपुर

आपके आगमन से जोधपुर की जनता अति प्रसन्न हुई। व्याख्यान का आग्रह किया। चरित्र नायिकाजी ने जोशीला व्याख्यान दिया। व्याख्यान से प्रभावित होकर जनता ने चातुर्मास का आग्रह किया। लेकिन उससे पहले ही पू. श्री गणाधीश म. सा., अनुयोगाचार्य गुरुदेव व पूज्या श्री जैन कोकिला का आदेश आ चुका था कि इधर-उधर कहीं चातुर्मास न करके जयपुर होते हुए दिल्ली पधारो। अतः जयपुर की ओर कदम बढ़ाये। कापरड़ा, बिलाड़ा, जैतारण होते हुए ब्यावर पहुँचे। एक दिन ब्यावर रुके। वहीं पर श्रीमान् लालचन्दजी सा. बैराठी जो मालपुरा के व्यवस्थापक थे, मालपुरा मेले में पधारने के लिये विनती करने आये, चूँकि मेला निकट ही था। मालपुरा तो आपश्री को भी जाना ही था, सहज संयोग मिल रहा था, स्वीकृति दे दी। ब्यावर से मांगलियावास पधारे, क्योंकि वहीं से मालपुरा के लिये मार्ग जाता था। संयोग से वहीं तेजबाई मेहता जो चरितनायिकाजी की शिष्या बनने की इच्छुक थीं, आ गईं और मालपुरा तक साथ रहीं। गुरुदेव के दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा से सभी लोग शीघ्र ही मालपुरा पहुँच गये।

मालपुरा गुरुदेव जिनकुशलसूरीश्वर का न जन्म-स्थान है और न स्वर्गवास स्थान; अपितु एक चामत्कारिक स्थान है। जिस शिला पर खड़े होकर दादा गुरुदेव ने एक भक्त को दर्शन दिये थे। उसके बाद तो कई भक्तों को दर्शन दिये। जिस शिला पर खड़े होकर दादा गुरुदेव ने साक्षात् दर्शन दिये, वह आज 'चरण' के रूप में विद्यमान है। वहाँ विशाल दादाबाड़ी निर्मित हो गई है और यह ऐतिहासिक स्थान जयपुर से सिर्फ 100 किलोमीटर दूर है। जयपुर वाले प्रति पूनम बस लेकर यहा आते हैं व पूजा, सेवा, राशि जागरण, जीमन आदि करते हैं। प्रतिवर्ष फाल्गुन की अमावस के दिन मेले का आयोजन बड़ी धूमधाम से जयपुर संघ की ओर से किया जाता है, स्वामि-वात्सल्य भी होता है।

इस सब का प्रमुख हेतु है—श्रद्धेय दादागुरु जिनकुशलसूरीश्वर का कलिकाल में कल्पवृक्ष के समान होना। ऐसे चमत्कारिक स्थान में पधारने का सौभाग्य पूज्या सज्जनश्री जी और उनकी शिष्या मंडली को भी प्राप्त हुआ। वहां 5 दिन रुके, पूजाभक्ति की और श्रद्धा-सुमन अर्पित किये।

जयपुर संघ की आग्रह भरी विनती को स्वीकार करके अब आप जयपुर पधारीं। वैराग्यवती तेजबाई साथ थीं। पंडित प्रवर भगवानदास जी के पास उनकी दीक्षा का मुहूर्त्त निकलवाया तो वि.सं. 2026 वैशाख कृष्णा दशमी का निकला। दीक्षा की तैयारियाँ होने लगीं। इसी बीच शासन प्रभावक पूज्य अनुयोगाचार्य कान्तिसागरजी म. सा. एवं साहित्य शास्त्री श्री दर्शनसागर जी म. सा. कलकत्ता का ऐतिहासिक भव्य चातुर्मास और कलकत्ता संघ की ओर से सम्मेदशिखर तीर्थ पर कराये गये उपधान तप की आराधना खूब धूमधाम के साथ सम्पूर्ण करवाकर मार्गस्थ तीर्थों की यात्रा करते हुए जयपुर पधारे। यहाँ चरितनायिकाजी के अत्याग्रह से दीक्षा तक रुकने की स्वीकृति प्रदान की। आपश्री की निश्रा में धूमधाम से तेजबाई की दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षोपरान्त नाम दिया गया 'जयश्री' और उनको पूज्या सज्जनश्री जी की शिष्या घोषित किया गया।

पूज्य गुरुदेव को पालीताणा पहुँचना था अतः उसी सन्ध्या को जयपुर से विहार कर दिया।

जयपुर से महरौली

चरितनायिकाजी पन्द्रह दिन जयपुर में और रुकीं। ज्येष्ठ मास शुरू होने वाला था, गर्मी अपना प्रकोप दिखा रही थी, किन्तु चातुर्मासार्थ पहुँचना ही था, अतः वैशाख शुक्ल 10 को ही विहार कर दिया। मार्गस्थ बैराठ (प्राचीन मत्स्यदेश की राजधानी–विराटनगर) में अति प्राचीन मन्दिर के दर्शन किये। मन हर्षित हो गया। वहाँ से अलवर पहुँचे। वहाँ भी रावण पार्श्वनाथ (अति प्राचीन) मन्दिर में अवस्थित विशाल प्रतिमा के दर्शन करके मन झूम उठा। वहाँ से प्रस्थान कर दिल्ली के समीप महरौली में पहुँचे। महरौली मणिधारी दादा श्री जिनचन्द्रसूरि का अग्नि-संस्कार स्थान है। उस युग में दिल्ली यहीं बसी हुई थी। उस समय यहाँ माणक चौक था, जिस स्थान पर आज गुरुदेव का स्थान बना हुआ है। पूज्य दादा गुरुदेव ने अपने ज्ञान बल से अपना अन्तिम समय जानकर भक्तों से कहा था कि मेरी बैकुण्ठी (रथी) को बीचवासा मत देना। लेकिन शोकाकुल भक्त गुरुदेव के वचनों को भूल गये, बीचवासा दे दिया। बस, फिर क्या था, सैकड़ों व्यक्ति लग गये फिर भी रथी टस में मस न हुई। हाथी लगाया, उसका बल भी विफल हो गया। तब तत्कालीन दिल्ली नरेश अनंगपाल ने वहीं अग्नि-संस्कार की आज्ञा दे दी। अग्नि संस्कार हुआ और भक्तों ने वहीं स्तूप बनवा दिया। वही स्थान आज दादाबाड़ी के रूप में है। यहां प्रतिवर्ष भादवा शुदी 8 को मेला लगता है।

अपनी शिष्या मंडली के साथ पूज्याश्री वहाँ दो दिन रुकीं। दिल्ली के गण्यमान श्रावक भी आ गये थे। पूजा का खूब ठाठ रहा, आने-जाने वालों का मेला-सा लगा रहा। फिर यहाँ से चार मील दूर छोटी दादाबाड़ी पधारे। यहाँ जैन श्रावकों के अनेक घर हैं। अब तो वहाँ सन्त-सतियों के चातुर्मास भी होते हैं। वहाँ 15 दिन रुके। यहाँ आपकी संसार पक्षीय भुवा सास (कोटा वाली सेठानी गुलाबसुन्दरीजी) का 'केसर पोट्रो' के नाम से विशाल स्थान है और निवास स्थान भी। उनके आग्रह से दो दिन वहाँ ठहरना हुआ।

दिल्ली चातुर्मास (वि. सं. 2026)

दिल्ली संघ ने बड़े धर्मोत्साह और धूमधाम से पूज्याश्री का नगर प्रवेश कराया। लाल किले के पास दिल्ली श्रीसंघ स्वागतार्थ उपस्थित था। चांदनी चौक से नई सड़क होते हुए नौधरा के मन्दिर पहुँचे, दर्शन-वन्दन किये फिर मोपुजरा धर्मशाला पधारे। वहीं आपका मंगल प्रवचन हुआ तथा प्रभावनादि का वितरण भी हुआ। फिर तो नित्य प्रवचन का क्रम शुरू हो गया। आपकी साहित्यिक, परिमार्जित भाषण-शैली से जनता मन्त्र-मुग्ध-सी बन जाती थी। इसी चातुर्मास में आपने श्रीमद् देवचन्द्रजी म द्वारा रचित 'अध्यात्म प्रबोध' (इसका अपरनाम 'देशनासार' है) का अति सुन्दर अनुवाद हिन्दी भाषा में किया। राष्ट्रीय स्तर पर मणिधारी दादा की अष्टम शताब्दी समारोह की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही थीं। प्रचार-प्रसार भी उत्साह से हो रहा था। भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों और जैन समाज के सभी पत्र-पत्रिकाओं में समाचार प्रसारित किये गये। विदेशों को भी समाचार भेजे गये। दिल्ली सेन्टर होने के कारण एक लाख व्यक्तियों के आने की आशा थी। दिल्ली संघ में जैसा उत्साह था, कार्य शैली उतनी ही उत्तम थी, सभी कार्य सुचारु-रूप से हो रहे थे।

शताब्दी समारोह में सम्मिलित होने के लिए खरतरगच्छ के सभी साधु-साध्वियों को आमन्त्रित किया जा चुका था। चरितनायिका जी दादा गुरुदेव का जीवन चरित्र लिख रही थीं, साथ ही गुरु स्तवन भी। दोनों ही पुस्तकें यथा समय छप गयी थीं।

आप प्रथम बार ही दिल्ली पधारी थीं अतः चातुर्मास सम्पन्न कर हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया। इसका एक कारण यह भी था कि शताब्दी समारोह चैत्र मास में होना था। अतः हस्तिनापुर की यात्रा करके आप पुनः दिल्ली पधार गयीं।

पालीताना से उग्र विहार करते हुए सर्वप्रथम पू. अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागर जी म. सा. एवं दर्शनसागरजी म. सा. फागुन शुरू होते ही दिल्ली पधार गये थे और लाल धर्मशाला में विराज रहे थे। उनकी निश्रा में नयी साध्वी जी की बड़ी दीक्षा फागुन सुदी 11 को धूमधाम से सानन्द सम्पन्न हुई।

मणिधारी अष्टम शताब्दी समारोह

चैत्र प्रारम्भ होते-होते पूज्य प्रवर श्री उदयसागरजी म. सा., श्री प्रभाकरसागरजी म. सा., श्री महोदयसागरजी म. सा., श्री तीर्थसागरजी म. सा. आदि भी महरौली-दिल्ली पधार गये और जैन कोकिला श्री विचक्षणश्री जी म. सा. भी अपनी शिष्या-मंडली सहित यथासमय पधार गयीं। अन्य साधु-साध्वीजी महाराज आदि भी उचित समय पर पधार गये।

महरौली में ही विशाल मणिधारी नगर बसा था। दिल्ली संघ ने आवास-निवास की समुचित व्यवस्था की थी। आगन्तुकों का जैसा प्रेमपूर्ण स्वागत किया गया वह आज भी स्मरणीय है।

यद्यपि हम लोगों का विचार बनारस जाने का था पर निमित्त ऐसा बना कि पुनः हस्तिनापुर जाना पड़ा। कारण था—वर्षीतप का पारणा। यहाँ पर चन्द्रप्रभाजी, मुक्तिप्रभाजी, विजयप्रभाजी, ज्योतिप्रभाजी एवं निरंजनाश्रीजी आदि पांच साध्वीयों के वर्षीतप चल रहा था। हस्तिनापुर दिल्ली से सिर्फ 60 मील दूरी पर है और यहीं प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का प्रथम पारणा हुआ था, अतः सभी की भावना हस्तिनापुर पारणा करने की थी। वैशाख सुदी 3 (अक्षय तृतीया) का दिन भी समीप था और जैन कोकिला पू. श्री विचक्षणश्री जी का आमन्त्रण भी, अतः पुनः हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान कर दिया गया। पूज्य उदयसागर जी म. सा., पू. अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागर जी म. सा. आदि तथा सर्व साध्वीमंडल एवं कई श्रावक-श्राविकाएँ दिल्ली से प्रस्थान करके गाजियाबाद पधारे। यहाँ भी मन्दिर की प्रतिष्ठा करवानी थी, अतः गाजियाबाद संघ के आग्रह से पू. अनुयोगाचार्य जी म.सा. वहीं रुके। आपश्री सर्व संघ के साथ हस्तिनापुर पहुँचे। अक्षय तृतीया के दिन सभी तपस्विनी बहनों का पारणा हुआ। बड़ी पूजाएँ आदि रखी गईं।

वैशाख शुक्ला 4 के दिन चन्द्रप्रभाजी की मातुश्री धापूबाई की दीक्षा पू. गुरुदेव की निश्रा में सम्पन्न हुई। उन्हें वर्द्धमानश्रीजी नाम दिया गया।

वैशाख शुक्ला 5 को यहाँ से विहार हुआ। प्रमोदश्रीजी की शिष्या श्री चन्द्रोदयश्री जी एवं स्वयंप्रभाश्री जी भी सम्मेतशिखर तीर्थ की यात्रा हेतु साथ

हो गईं। बुलन्दशहर, एटा, अलीगढ़ होते हुए कम्पिलपुर तीर्थ पहुँचे। यहाँ तीर्थंकर विमलनाथ के तीन कल्याणक हुए हैं। दर्शन किये। चित्त प्रसन्न हुआ। आगे बढ़कर कानपुर पहुँचे। वहाँ पू. श्री भुवनभानुविजयजी म. सा. के दर्शन किये। पूज्यश्री संयम व तप की साक्षात प्रतिमा हैं। सब मन्दिरों के दर्शन किये। आठ दिन ठहरे। यद्यपि जाना तो बनारस था पर समय कम था। वर्षा भी शुरू हो चुकी थी, अतः लखनऊ की ओर प्रस्थान किया। लखनऊ से एक-डेढ़ किलोमीटर दूर एक धर्मशाला में विश्राम किया।

लखनऊ में जयपुर निवासी सेठ श्री हमीरमलजी साहब गोलेच्छा की पौत्री और श्री मनोहर लाल जी सुपुत्री माणकबाई का ससुराल था। वे जब भी जयपुर आतीं पूज्या सज्जन श्री जी से लखनऊ फरसने की भावभरी विनती करतीं और आप 'वर्तमान योग' अथवा 'यथायोग' छोटा सा उत्तर दे देतीं। इस बार लखनऊ आने का महज ही संयोग बन गया। साथ वाले भाई को माणकबाई के नाम पत्र दिया। पत्र मिलते ही माणकबाई हर्षाश्चर्य मिश्रित भाव हृदय में लिये आई। चरितनायिका जी के दर्शन-वन्दन किये। हर्ष से नेत्र सजल हो गये। सभी साध्वियों के दर्शन-वन्दन किये, सुख-साता पूछी और लौटकर लखनऊ वालों को आपश्री के आगमन के समाचार दिये। उनके तो मन-मयूर ही नाच उठे। बड़े उत्साह और धूमधाम से नगर-प्रवेश कराया।

लखनऊ चातुर्मास (सं. 2028)

मार्ग में जिन मन्दिर के दर्शन करते हुए शांतिनाथ जी की धर्मशाला में पहुंचे, वहाँ पूज्या श्री ने ओजस्वी वाणी में मांगलिक प्रवचन दिये। लोग आश्चर्याभिभूत हो गए।

लखनऊ में कुल 35 घर हैं प्रायः सभी सम्पत्ति और सन्मति से युक्त। धर्मोत्साह के साथ चातुर्मास प्रारम्भ हुआ। व्याख्यान शृंखला शुरू हुई। प्रभु पूजाएँ, दादागुरु पूजाएँ आदि कार्यक्रमों से चातुर्मास सफलता के सोपान चढ़ने लगा। मेघ धाराओं के समान त्याग-तपस्याओं की झड़ियां लग गईं। लखनऊ वालों में अत्यधिक उत्साह था। 8, 9, 11, 21 आदि की तपस्याओं का ठाठ लग गया। कोई घर ऐसा न बचा जहां एक-दो अठाइयां न हुई हों। पूजाएँ व स्वधर्मी-वात्सल्य की तो सम्पूर्ण चातुर्मास में धूम ही मची रही।

इंगलिश में निष्णात श्री जोगेश्वर मास्टर सा. शशिप्रभाजी व प्रियदर्शनाजी को इंगलिश पढाने आते थे। वे भी अत्यन्त प्रभावित हुए, कहते थे—महाराजश्री

की दृष्टि में अद्‌भुत शक्ति है, जिसकी ओर भी शांत-स्नेहसिक्त दृष्टि से देख लें, वही निहाल हो जाए। पूज्याश्री मध्यान्ह में अपनी शिष्याओं को आचारांग सूत्र की वाचना देती थीं, अन्य भी सुनने आते थे। सुश्रावक अमोलकचन्द जी सा. के आग्रह से 'पुण्यप्रकाश' स्तवन का हिन्दी अनुवाद भी आपने किया।

लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी है और अयोध्या तीर्थ के समीप है, अतः साधु-साध्वियों का आगमन होता रहता है। धर्मभावना अच्छी है फिर भी चातुर्मास बहुत कम होते हैं। लेकिन आपका यह चातुर्मास सभी दृष्टियों से सफल रहा। चातुर्मास के उपरान्त शिष्या मंडली सहित अयोध्या तीर्थ की ओर गमन किया। विहार का सारा लाभ माणकबाई सा. की सास ने लिया। रत्नपुरी पहुंचे। यह तीर्थंकर धर्मनाथ जी की कल्याणक भूमि है। लखनऊ के लोग यहाँ आते रहते हैं। इस बार स्वधर्मी-वात्सल्य का आयोजन किया गया। कार्य की समाप्ति पर अयोध्या की ओर प्रयास किया। मार्ग में फैजाबाद मंदिर के दर्शन करते हुए अयोध्या पहुंचे।

विभिन्न प्रदेशों की तीर्थ-यात्राएं

अयोध्या—यह नगरी अत्यन्त प्राचीन है। आज श्रीराम जन्मभूमि के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु असंख्य वर्ष पहले भगवान ऋषभदेव ने जन्म लेकर इस नगरी को धन्य बनाया था। ऋषभदेव पहले राजा, पहले योगी और पहले तीर्थंकर थे। उनसे पहले यौगलिक युग था। उन्होंने ही मानव को सर्वप्रथम असि, मसि, ललित कलाओं तथा अन्य सभी प्रकार का ज्ञान कराया व गणित-विद्या और लिपि-विद्या के पुरस्कर्ता भी वे ही थे। एक शब्द में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृत के जनक थे श्री ऋषभदेव। ऐसी महान नगरी में पहुंचे किन्तु मन्दिरों की दशा देखकर दुःख हुआ। मुस्लिम काल में मन्दिर और मूर्तियों को तोड़कर मस्जिदें बना ली गईं। धार्मिक मदान्धता थी यह। इस स्थिति को देखकर मन खिन्न हो गया। यहाँ से विहारकर कन्नौज आदि होते हुए वाराणसी पहुंचे।

तीर्थभूमि वाराणसी : यह नगरी तेईसवें तीर्थंकर पार्श्व प्रभु की जन्मस्थली है। गंगा के किनारे बसी हुई है। यहाँ कई जिनमन्दिर और दादाबाड़ियाँ हैं। भेलूपुर (भगवान पार्श्वनाथ की जन्मस्थली) में प्रतिवर्ष पौष बदी 10 (पार्श्व प्रभु का जन्म दिन) के दिन मेला भरता है, साथ ही प्रभपूजा और स्वधर्मी-वात्सल्य भी होता है। हम लोगों ने भी पौष बदी दशमी का मेला यहीं किया।

वाराणसी हिन्दुओं का भी प्रमुख तीर्थ है। यहाँ हिन्दुओं के मन्दिर हैं। विश्वनाथ का मन्दिर अति प्रसिद्ध है। वाराणसी प्राचीनकाल से विद्या का केन्द्र

रहा है। संस्कृत भाषा के अनेक श्रेष्ठ विद्यालय हैं। यथा—संस्कृत विश्वविद्यालय हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, पार्श्वनाथ विद्याश्रम आदि। भारत के दूरस्थ प्रान्तों के निवासी यहाँ संस्कृत अध्ययन के लिए आते हैं। एक जैन यूनिवर्सिटी है, जहाँ से कई लोग पी-एच. डी. करते हैं।

हम लोग जैन भवन में रुके। उन दिनों बंगला देश का युद्ध चल रहा था, अतः श्रावकों के आग्रह से 15 दिन वहीं रुके। इस बीच सिंहपुरी, चन्द्रपुरी आदि कल्याणक भूमियों की यात्रा की। वहाँ के तपागच्छ मुनिराज की निश्रा में संघ निकल रहा था, अतः हमें भी आमन्त्रित किया गया। हम भी उनके साथ हो लिए। 'संगच्छत्वं' का सूत्र सामने था।

चन्द्रपुरी से पहले सिंहपुरी आता है, शहर से लगभग 9-10 किलोमीटर दूर। बनारस में गाँधी परिवार की कोठी है, फार्म भी है। उनकी ओर से चाय-नाश्ता आदि की व्यवस्था थी। सिंहपुरी में म० श्रेयांसनाथ के च्यवन, जन्म, दीक्षा ये तीन कल्याणक हुए हैं। विशाल मन्दिर व धर्मशाला है।

पास ही सारनाथ है, यह ऐतिहासिक बोधि-स्थल है, यहाँ अनेक बुद्ध मन्दिर हैं। सिंहपुरी के निकट मृगदाव वन में ध्वंसावशेष हैं। इनमें सम्राट अशोक द्वारा बनवाया हुआ धर्मचक्र है, जो आधुनिक भारत का राजचिन्ह है। कई बौद्ध मन्दिर, मठ, विद्यापीठ भी दर्शनीय हैं।

दूसरे दिन चन्द्रपुरी पहुँचे। यहाँ भ. चन्द्रप्रभु के तीन कल्याणक हुए हैं।

पुनः बनारस लौटे। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद सपरिवार यहीं रहते थे। ये पूज्याश्री के संसारपक्षीय सम्बन्धी भी हैं। उनके आग्रह को स्वीकार करके एक दिन उनकी सेवाभक्ति भी स्वीकार की। बनारस से विहार कर हम लोग पटना पहुँचे।

***पटना** : यह एक ऐतिहासिक नगरी है। पाटलिपुत्र, कुसुमपुर आदि नामों से* प्राचीनकाल में प्रसिद्ध रहा है। महाराज श्रेणिक के पौत्र उदयन ने इसे बसाया और नन्द सम्राटों, चन्द्रगुप्त मौर्य, प्रियदर्शी सम्राट् अशोक, जैन सम्राट् सम्प्रति आदि की राजधानी रही है। पाटलिपुत्र भारत के इतिहास व संस्कृति के निर्माण और विध्वंस में भी प्रमुख भूमिका बना है।

यहीं भावी तीर्थंकर पद्मनाथ का विशाल मन्दिर है और समीप ही धर्मशाला है। हम लोग वहीं ठहरे। वहाँ पर स्थानीय व बाहर से आये हुए लोगों के घर हैं।

स्थूलिभद्र और सुदर्शन सेठ भी वहीं के थे। शहर के बाहर उनका स्थान बना हुआ है, जहाँ उनके चरण स्थापित हैं।

हम लोग लगभग आठ दिन रहे। गुरुवर्याश्री के मार्गदर्शन में प्रायः सभी दर्शनीय ऐतिहासिक स्थल देखे, जिनसे हमारे धर्म की प्राचीनता और जैन संस्कृति के वैभव परिलक्षित होते थे। गुरुवर्या के मुख से उन स्थानों की ऐतिहासिकता सुनकर ज्ञानवृद्धि हुई। सांस्कृतिक गौरव का एक चित्र सामने आया। वहाँ से नालन्दा, कुण्डलपुर की ओर कदम बढ़े।

नालन्दा : भगवान महावीर के समय यह राजगृही का उपनगर था। बाद में यहाँ विश्वविख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय स्थापित हुआ जहाँ अनेक विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे। अब तो ध्वंसावशेष मात्र ही हैं। बौद्धविहार भी खण्डहर हो चुके हैं। 'नया पाली विश्वविद्यालय' भी देखा। एक बौद्धमठ ऐसा देखा जिसमें 125 वर्ष के बौद्ध साधु थे। वे बड़े सरल हृदयी व प्रज्ञाचक्षु थे।

कुण्डलपुर : यहाँ आदिनाथ भगवान की केशों वाली विशाल मूर्ति है। इस प्राचीन मूर्ति के दर्शन करके मन प्रफुल्लित हो गया। बगीची में छोटी-सी दादाबाड़ी भी है।

राजगृह : यह महाराज श्रेणिक की राजधानी रही है। इसके उपनगर नालन्दा में भ. महावीर ने 14 चातुर्मास किये थे तथा यही बीसवें तीर्थंकर मुनि-सुव्रतनाथ की च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक की पावन भूमि है। यहाँ विशाल जिनमन्दिर, धर्मशाला व भोजनशाला है।

शिखरबद्ध विशाल मन्दिर में श्यामवर्णी भ. मुनिसुव्रतनाथ की विशाल प्रतिमा के दर्शन पाकर मन आनन्दसागर में निमज्जित हो गया। पूज्या गुरुवर्या तो प्रायः ध्यानस्थ हो जातीं। उनकी ऐतिहासिकता बताकर हमारे ज्ञान में भी वृद्धि करतीं। वास्तव में प्राचीन तीर्थस्थानों का सही आनन्द वही अनुभव कर सकता है, जो उनकी ऐतिहासिकता का जानकार हो तथा जिसकी नजर कला-पारखी हो और वह हृदय सौन्दर्य में रस लेने वाला हो।

ये तीनों भूमियाँ आज भी हमारे मन की पवित्रता और भक्ति-लीनता को प्रेरणा दे रही हैं।

पूज्या गुरुवर्या के साथ हमने उदयगिरि, विपुलगिरि आदि पाँचों पहाड़ों की यात्रा की। स्थानकवासी प्रसिद्ध मुनि जयन्तीलालजी अपनी शिष्य मंडली सहित

अपने गुरुदेव श्री जीवनलाल जी म. का स्वर्गारोहण दिवस मनाने आये हुए थे। हम लोगों को भी जयन्ती दिवस तक रुकने का आग्रह किया गया। तीसरे पहाड़ के नीचे स्वर्गस्थान पर समाधि बनी हुई है, वहीं आयोजन था। बौद्ध फ्यूजी गुरु भी आये हुए थे। हम लोग इस आयोजन में सम्मिलित हुए। सभी के भाषणों के बाद गुरुवर्याश्री का भाषण हुआ। भाषण इतना जोशीला, सरस और आकर्षक था कि सभी श्रोताओं ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। नजदीक ही शान्तिस्तूप पर्वत है, वहाँ इलैक्ट्रिक रोप लगी हुई है, तथागत बुद्ध का चतुर्मुखी स्टेच्यू है, चारों ही ओर अलग-अलग 'पोज' में बुद्ध-मूर्तियाँ हैं। सैंकड़ों व्यक्ति देखने के लिए देश-विदेश से आते हैं। यहाँ से विहार कर हम पावापुरी आये।

पावापुरी : यह भगवान महावीर के प्रथम समवसरण, तीर्थस्थापन और निर्वाण की भूमि है। पावापुरी में प्रवेश करते-करते मन-मस्तिष्क 2500 वर्ष पीछे पहुँच गया। भगवान् महावीर की स्मृति मानस-पटल पर तैरने लगी। 'जलमन्दिर' को देखकर भगवान की पार्थिव देह का अग्नि-संस्कार-स्थल दृष्टि में नाच उठा। किंवदन्ती है कि भगवान के अग्नि-संस्कार के उपरान्त देवी-देवताओं, मानवों द्वारा अत्यधिक भस्मी ले जाने से यहां गड्ढ़ा हो गया, उसी ने पानी भरने से तालाब का रूप ले लिया। तालाब के बीच मन्दिर में भगवान के चरण प्रतिष्ठित हैं। निर्वाण के समय जब भगवान के लड्डू चढ़ता है तो चरणों के ऊपर जो छत्र लगा है, वह एक मिनट हिलता रहता है, ऐसा लोग कहते हैं। जलमन्दिर बड़े सुन्दर ढंग से बना हुआ है, चारों ओर गुरुदेव के चरण, बीच में भगवान की छतरी। आने-जाने के लिए चारों ओर से मार्ग। भावपूर्वक दर्शन करके हम सभी ने स्वयं को धन्य माना।

गुरुवर्याश्री के हार्दिक उद्गार निकले—भगवान जिस समय जीवित थे, उस समय तो हम जाने कहां होंगे ? यदि मन से भगवान की वाणी सुनी होती तो इस पंचम काल में क्यों आते ? वे लोग धन्य हैं जिन्होंने प्रभु के मुखारविंद से निकली अमृतोपम वाणी का साक्षात् पान किया, हृदयंगम किया और तद्नुरूप आचरण में संलग्न हो गये। फिर भी हम लोग भाग्यशाली हैं कि हमें जैनधर्म और संयमी जीवन प्राप्त हुआ तथा इन तीर्थों की यात्रा करने का सुयोग मिला।

वहाँ से हम लोग 'गांव मन्दिर' गये, दर्शन किये और तदुपरान्त मुनीमजी की आज्ञा लेकर विश्राम हेतु ठहर गये। वहाँ समवसरण मन्दिर गये। पहले तो वहाँ चरण कमल ही थे, अब तो विशाल समवसरण की अनुकृति बन गई है। चतुर्मुख भगवान द्वादश परिषद् को प्रवचन फरमा रहे हैं, ऐसा तीन गढ़ वाला मन्दिर निर्मित हो गया है।

गुरु गौतम का कैवल्य स्थान गुणायाजी :—गुरु गौतम (इन्द्रभूति गौतम) भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर शिष्य, 14000 श्रमणों के नायक, अक्षीण महानस आदि अनेक लब्धियों के धारक और भगवान के प्रति प्रशस्त अनुराग वाले थे ! यह अनुराग उनके केवल्य में बाधक बना हुआ था; क्योंकि कैवल्य की प्राप्ति राग-द्वेष—दोनों का क्षय होने पर ही होती है। इसीलिए भगवान ने उन्हें देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये गुणायाजी भेजा था। भगवान को निर्वाण हो गया। देव-दुन्दुभी के स्वर सुनकर गौतम स्वामी को भगवान के निर्वाण के विषय में ज्ञात हुआ, बहुत दुःख हुआ उन्हें; किन्तु दूसरे ही क्षण सुप्त ज्ञान-विवेक जाग उठा, राग पलायन कर गया, प्रशस्त मोह की जंजीरें टूटीं, कैवल्य भानु जगमगा उठा। ऐसे गुरु गौतम स्वामी के कैवल्य स्थान पर आकर हम कृतकृत्य हो गये।

वहाँ से विहार करके क्षत्रियकुण्ड ग्राम पहुँचे।

क्षत्रियकुण्ड ग्राम—यह भगवान महावीर की जन्मस्थली है। यहाँ सात पहाड़ों के मध्य अत्यन्त सुन्दर जिनालय है। इसमें श्याम वर्णी भगवान महावीर की प्रतिमा इतनी मनोहर है कि दृष्टि हटाये नहीं हटती, साथ ही इतनी सचिक्कण भी है कि सैकड़ों घड़े पानी डालने पर एक बून्द भी न ठहरे। इस मूर्ति के विषय में प्रसिद्ध है कि इस प्रतिभा का निर्माण भगवान के बड़े भाई नन्दीवर्धन के द्वारा भगवान के जीवनकाल में ही कराया गया था। इस प्रतिमा के दर्शन-वन्दन करके तन-मन विभोर हो गये। इसके आगे वहाँ से समीपस्थ काकन्दी पहुंचे।

काकन्दी— यह भगवान सुविधिनाथ के च्यवन, जन्म और दीक्षा-कल्याण की पावन भूमि है। धन्ना अणगार, जिनके विशिष्ट तप की प्रशसा स्वयं भगवान महावीर ने की थी, वे भी इसी नगरी के गौरव थे। यहाँ से विहार कर हम जमुही पहुंचे।

विहार यात्रा में पूज्याश्री का उत्साह गजब का रहा। 65 वर्ष की आयु फिर भी युवाओं जैसी स्फूर्ति। तीर्थों के दर्शन-वन्दन करते-करते आत्मविभोर बन जातीं। उत्साह इतना कि लम्बी-लम्बी यात्राये करने पर भी नाम मात्र की थकान नहीं, मुख पर सदा प्रसन्नता के दर्शन होते।

यहाँ से चम्पापुरी की ओर विहार किया। मार्ग में शैवों की तीर्थ नगरी वैद्यनाथ पड़ा। यहाँ कामना-पूर्ति के बाद भक्तजन दण्डवत् यात्रा करते हैं।

चम्पापुरी—यह बारहवें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य की पंचकल्याणक स्थली है। सम्राट् श्रेणिक की मृत्यु के बाद अजातशत्रु ने चम्पा को अपनी राज-

धानी बनाया। भगवान महावीर की 36000 श्रमणियों की नायिका सती चन्दन-बाला यहाँ की राजकुमारी थी। कच्चे सूत और चलनी से जल निकालकर शीलधर्म की जयपताका फहराने वाली सती सुभद्रा भी यहीं की है। इस प्रकार इस नगरी से कई ऐतिहासिक, पौराणिक प्रेरक घटनाएँ जुड़ी हैं।

अत्यन्त सुन्दर जिनालय और समीपस्थ सुव्यवस्थित धर्मशाला है। जिनालय में भगवान वासुपूज्य की मनोरम मूर्ति के भावपूर्वक दर्शन किये।

निकट स्थित नाथनगर पहुँचे। वहाँ बाबू रायकुमारसिंहजी की हवेली में रुके। ऊपर ही जिन मन्दिर था। श्री रायकुमारसिंह जी की धर्मपत्नी सज्जनबाई सा. जयपुर भांडिया परिवार की लड़की हैं और बाल-सहेली हैं पूज्या गुरुवर्या श्री की, जो बारह व्रतधारी श्राविका हैं। हमारे अप्रत्याशित आगमन को जानकर वे हर्ष से भर गईं। उनके आग्रह से दो-तीन दिन रुके। हमें फाल्गुन चौमासा—होली पर्व—पर शिखरजी पहुंचना था, अतः शिखरजी की ओर प्रस्थान कर दिया।

बिहार अतीत युग में बहुत उन्नत प्रदेश था। तीर्थंकरों के अधिकांश कल्याणक इसी प्रदेश में हुए हैं। तीर्थंकरों, श्रमण-श्रमणियों के सतत विचरण व उनके धर्मोपदेश से पावन बना हुआ था। बौद्ध विहारों व मठों की अधिकता से इसे बिहार नाम प्राप्त हुआ था। लेकिन आज स्थिति बिल्कुल ही विपरीत है। हिंसा का साम्राज्य छाया हुआ है। चोर-पल्लियां हैं, जन-जीवन असुरक्षित है, सवर्ण और असवर्णों के संघर्ष होते रहते हैं। काम धन्धे, व्यापार आदि का अभाव हो गया है। खेती-बाड़ी स्त्रियां करती हैं, पुरुष तो ताड़ी पीकर पड़े रहते हैं। मद्य-मांस आदि का प्रयोग खूब होता है, मछली पकड़ने का धन्धा आम हो गया है। छोटे-छोटे बच्चे भी मछली पकड़ने में चतुर हैं। कुल मिलाकर यह प्रदेश अवनत स्थिति में है। बिहार अपनी प्राचीन संस्कृति एवं गौरव को खो चुका है।

विहार करते-करते हम लोग ऐसे स्थान पर पहुंच गये जहाँ तीर्थराज सम्मेत्-शिखर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सबसे ऊँची टोंक भगवान पार्श्वनाथ की है। जैसे ही उसके दर्शन हुए सिर श्रद्धा से झुक गये और हाथ मुक्तशुक्ति मुद्रावत् बन गये। गुरुवर्याजी ने 'बीस कोस से शिखर देख्यो' इस मधुर, सरस स्तवन कड़ी से हम लोगों का ध्यान आकर्षित किया। कितना सत्य कहा है स्तवनकार ने, अभी सम्मेत्शिखर बीस कोस दूर था कि फिर भी वहीं से हम लोगों को शिखर के दर्शन हो रहे थे। दर्शन करते ही हृदय में जैसे नयी स्फूर्ति और उल्लास भर आया।

सम्मेदशिखर यात्रा

गिरिडीह होते हुए भगवान महावीर के कैवल्यप्राप्ति स्थल 'ऋजुबालुका तट' पर स्थित बराकड़ तीर्थ पहुँचे। केवलज्ञान भूमि के दर्शन किये। फिर सम्मेद शिखर की उपत्यका (तलहटी) में स्थित मधुवन में प्रवेश किया। प्रथम बार गिरिराज के दर्शन करके पूज्या गुरुवर्या जी (और हम सब भी) बहुत आनन्दित हो रही थीं। हर्ष ऐसा जैसे जन्म-जन्म की साध पूरी हो गई हो। तीर्थ के मुख्य द्वार के पास ही तीर्थाधिष्ठायक भौमियाजी की बड़ी, भव्य, विशाल और तेजस्वी मूर्ति है। मन्दिर भी बड़ा कलात्मक और मनोहारी है। आगे बड़ी विशाल धर्मशाला है जहाँ योग्य, व्यवस्थित स्थान देखकर हम लोगों ने विश्राम किया।

तीर्थाधिनायक भगवान पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा के दर्शन कर हृदय आनन्दित हो गया। पश्चात दादाबाड़ी में गुरुदेव को वन्दन-नमस्कार किया। समीप ही श्रद्धेय कवि सम्राट के शिष्य कल्याणसागरजी म. सा. विराजमान थे, उनके दर्शन किये। आप शिखरजी की नव्वाणु यात्रा कर रहे थे।

शिखरजी जैनधर्म में तीर्थराज कहलाता है। इस पावन भूमि से 20 तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। अन्य कितने साधक-मुनिराजों ने मुक्ति प्राप्त की है, इसकी तो गणना ही नहीं। असंख्य जीव मुक्त हुए हैं, इस पर्वत से। इसीलिए इस पर्वत के कंकड़-कंकड़ के प्रति भक्ति-भावना उमड़ती है। हमने यात्रा शुरू की।

शिखर तक की 6 मील की चढ़ाई है। यात्रा के प्रथम चरण में ही 'सीतानाला' आता है। यहां यात्रा करके लौटने वाले यात्रियों को नाश्ता दिया जाता है। इसके पश्चात् कुछ आगे बढ़ने पर गंधर्व नाला आता है। यहां से और चढ़ाई शुरू हो जाती है। यह तीन मील की एकदम खड़ी चढ़ाई है। इसे पूर्ण कर सर्वप्रथम गणधर गौतम स्वामी की टुंक (टोंक) है। अनेक लब्धियों के धारी, चतुर्दश पूर्वधर, भगवान महावीर के पट्ट शिष्य गौतम स्वामी, उनकी टुंक के दर्शन करके चित्त उनके गुणों में रमण करने लगा।

अन्य तीर्थंकरों की टुंकों की दर्शन करते हुए जलमन्दिर पहुँचे। बीच में मन्दिर और चारों ओर जल, बड़ा सुहावना व अद्भुत दृश्य है। पर्वतमाला में चारों ओर टुंक ही टुंक दृष्टिगोचर होती हैं। एक पर चढ़े, उससे उतरे, फिर दूसरी पर चढ़े, बड़ा आनन्द आया। अन्तिम टुंक—भगवान पार्श्वनाथ की टुंक पर पहुँचे। यह सबसे ऊँची है। भावपूर्वक दर्शन किये। चित्त में उल्लास समा नहीं रहा था। पीछे से उतरे, बड़ी विषम उतराई है। कई स्थानों पर तो सिर्फ दो ही आदमी चल सकें,

इतना ही रास्ता है। एक ओर ऊंचा पहाड़, दूसरी ओर गहरी खाई। जरा-सी असावधानी हुई कि हजारों फीट नीचे, हड्डी-पसली भी न बचे। पर तीर्थराज का कैसा प्रभाव ! आज तक कोई दुर्घटना कभी हुई हो, ऐसा हमने नहीं सुना। हजारों भक्त यात्रा करते हैं और सभी सकुशल, उल्लसितमन लौटते हैं। हम लोग भी लौटे, मन उल्लास से भरा हुआ था। धर्मशाला पहुंचे। होली पर्व बहुत ही आनन्द, उल्लास और आध्यात्मिक रूप में मनाया।

पूज्य कल्याणसागरजी म. सा. की नव्वाणु यात्रा चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को पूर्ण हो रही थी। उन्होंने हम लोगों को रुकने का आग्रह किया। हम रुक गये। शाश्वती ओली की आराधना और महावीर जयन्ती पर्व गिरिराज की छत्रछाया में बड़े आनन्द से मनाया।

जिस तरह सुमन का सौरभ स्वयं ही पवन के झकोरों के साथ चारों ओर फैल जाता है, उसी प्रकार गुरुवर्याश्री का सम्मेतशिखर आगमन भी कलकत्ता संघ को ज्ञात हो गया था। वहां के मुख्य-मुख्य श्रावक मारवाड़ी समाज वाले श्रीमान् ताजमलजी सा० बोथरा, भंवरलालजी सा० नाहटा, हीरालालजी सा० लूनिया, पानमलजी सा० कोठारी, ज्ञानचंदजी सा० लूणावत आदि तथा साथ वाले कई श्रावकगण कलकत्ता चातुर्मास हेतु एक बड़ा विनती पत्र, कलकत्ता श्रीसंघ के हस्ताक्षर युक्त लेकर पधारे, पूज्याश्री के सम्मुख रखा और भावभरी विनती की। उन्हें शीघ्र ही स्वीकृति मिल गयी। जहाँ भाव हो वहां मनुहार कैसी ?

पूज्याश्री रंभाश्रीजी म०सा० आदि भी इधर के क्षेत्रों में धर्म-जागरणा करती हुई पधार गईं। उत्साह और बढ़ गया। पू० कल्याणसागरजी म०सा० के नव्वाणु यात्रा के निमित्त अठाई महोत्सव-पूजाओं आदि का ठाठ रहा !

लगभग सवा महीने हम लोग शिखरजी रहे। बड़े उत्साह से मन भरकर यात्राएँ-वन्दनाएँ कीं। बड़ा आनन्द का वातावरण रहा। चित्त में उल्लास छाया रहा। तन-मन स्फूर्ति से उमग रहा था।

वहाँ से प्रस्थान करके कतरास, झरिया, धनवाद, वर्द्धमान आदि नगरों में विचरण करते हुए तथा मन्दिरों के दर्शन करते हुए, जन-साधारण को प्रवचन लाभ देते हुए सैंथिया ग्राम (श्वेताम्बिका नगरी) में आये। मार्ग में कलकत्ता से 4-5 श्रावक आ गये। वे भी यहाँ तक साथ रहे।

सैंथिया : यहाँ के लगभग सभी लोग स्थानकवासी थे; लेकिन गुरुवर्याश्री के प्रवचनों से प्रभावित हो, ठाठ से नगर-प्रवेश कराया। मन्दिरों के दर्शन करते हुए

महावीर भवन पहुँचे। वहाँ आपश्री का ओजस्वी प्रवचन हुआ। लोग चकित रह गये—क्या साध्वीजी भी इतनी विद्वत्तापूर्ण और प्रवचनकुशल हो सकती हैं? बहुत प्रभावित हुए, उन्होंने कुछ दिन रुकने की विनम्र श्रद्धायुक्त विनती की। हमारे भी उस क्षेत्र के लगभग सभी तीर्थ हो चुके थे, चातुर्मास में भी अभी समय था, अतः स्वीकृति दे दी। प्रतिदिन के व्याख्यानों से काफी धर्म प्रभावना हुई। उन लोगों ने चातुर्मास का आग्रह किया पर कलकत्ता चातुर्मास स्वीकृत हो चुका था, अतः उन्हें स्वीकृति न मिल सकी।

यहाँ से निकट ही वह स्थान है जहाँ प्रभु महावीर ने चण्डकौशिक नाग को प्रतिबोध दिया था। अब वह स्थान जोगी पहाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय वहाँ स्मारक बनाने की योजना चल रही थी जो अब पूर्ण हो गई है, चरण स्थापित हो गये हैं।

बंगाल प्रवेश :

यहाँ से मुर्शिदाबाद की ओर कदम बढ़ाए। मार्ग में बंगाली भाइयों से परिचय हुआ। अपनी भाषा में बड़ी स्त्री को वे मां और छोटी स्त्री को वे दीदी कहते हैं। भाषा मधुर है। हमारे वेश के प्रति उन लोगों के हृदय में सम्मान भी था। हमारे आचार-विचार-निवास के बारे में जिज्ञासा भी कर लेते थे। जैसे—आपका घर कहाँ है (आपनार बाड़ी को थाय?) आप बाल क्यों नहीं रखते? पैदल (बिना चप्पल जूते के) क्यों चलते हैं? आदि-आदि। हम लोग भी टूटी-फूटी बंगला में संक्षिप्त उत्तर दे देते।

जैन श्रमणी की कठोर चर्या को सुनकर वे लोग चकित रह जाते। अधिकांश बंगाली लोगों में भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। धोती-कुर्ते का पहनावा, अतिथि सत्कार की भावना, त्यागियों के प्रति पूज्यभाव, नारीजीवन में सतीत्व व व पातिव्रत्य को प्रथम स्थान। लोगों की दृष्टि में अश्लीलता का अभाव। यद्यपि पहनावे आदि में आधुनिक प्रभाव बढ़ रहा है, फिर भी अपनी सांस्कृतिक मर्यादाओं के प्रति प्रेम और आदर का भाव है उनमें।

महिमापुर में पहुँचे। वहाँ जगत्सेठ का कसौटी पत्थर का पूरा मदिर वना हुआ है। अतः पुलिस का पहरा रहता है। वहाँ कठगौला में राय लक्ष्मीपतिसिंहजी द्वारा निर्मित उद्यान स्थित मंदिर के दर्शन करते हुए जीयागंज पहुँचे।

जीयागंज : यहाँ बड़े सुन्दर आलीशान मंदिर हैं। पहले यहाँ का वैभव बहुत था, लेकिन अब वह बात नहीं रही, साधु-साध्वियों का आगमन भी कम होता है,

फिर भी यहाँ के निवासियों में धर्मानुराग और शुद्ध धर्मनिष्ठा काफी है। पहले यहाँ जैन घर काफी थे पर अब व्यापार-धन्धे के कारण कलकत्ता जाकर बस गये हैं। समय का प्रभाव है यह।

दो दिन रुककर गंगा पार अजीमगंज गये। वहाँ शहर के बाहर शिखरबद्ध जिन मन्दिर में भगवान सम्भवनाथ की प्रतिमा अति विशाल और बहुत मनोरम है। भगवान नेमिनाथ का मन्दिर और प्रतिमा भी भव्य और चित्ताकर्षक है। भव्य मन्दिरों और प्रतिमाओं के दर्शन करके हृदय प्रफुल्लित हो गया। उसी संध्या को पुनः जीयागंज लौट आये। 2-3 दिन रुके। पूजाएँ आदि हुईं। लोगों ने रुकने का आग्रह किया किन्तु चातुर्मास का समय निकट आ रहा था और कलकत्ता के लोगों का आना-जाना शुरू हो गया था, अतः रुके नहीं। कलकत्ता की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में पड़ने वाले क्षेत्रों में धर्म-जागरणा करते हुए आषाढ़ कृष्णा 13 के माणकतल्ला में सुप्रसिद्ध राय बद्रीदास टेम्पल पहुंचे।

कलकत्ता वालों ने हमारे ठहरने के लिए सामने ही दादाबाड़ी में समुचित व्यवस्था कर रखी थी। कुछ दिन वहीं ठहरे; क्योंकि कलकत्ता में तो आषाढ़ शुक्ला में ही प्रवेश करना था। एक कारण और भी था, पूज्याश्री समताश्री जी म. सा., कुसुमश्री जी म. सा. आदि 9 ठाणा भी चातुर्मासार्थ आने वाले थे और प्रवेश सभी का साथ ही होना था। यथासमय वे पधार गये। शुभ मुहूर्त में बैंड-बाजों और हर्षोल्लासपूर्वक कलकत्ता वालों ने नगर प्रवेश कराया।

संघ के साथ बड़े मन्दिर के दर्शन किये। कलाकार स्ट्रीट में स्थित जैन भवन में पहुँचे। वहां मंगल प्रवचन हुआ और प्रभावना के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। यहां से तुल्लापट्टी स्थित 11 नं. (बड़े मन्दिर के ऊपर) उपाश्रय में आये। यहां हम लोगों के रुकने की उचित व्यवस्था थी।

कलकत्ता चातुर्मास (सं. 2029) :

चातुर्मास का शुभारम्भ हुआ। गुरुवर्या बड़तल्ला स्थित बजाज धर्मशाला में विराजीं। प्रतिदिन के व्याख्यान जैन भवन में होते थे। व्याख्यान में श्रोताओं की रुचि और आचार-विचार से परिचित कराने वाले द्वादशांगी के प्रथम अंग आचारांग सूत्र का वाचन प्रारम्भ किया गया। ओजपूर्ण वाणी और युक्तियुक्त सामयिक विवेचन से श्रोता भाव-विभोर हो जाते। उपस्थिति दिनोंदिन बढ़ने लगी। मध्यान्ह में आप अपनी मधुर वाणी में 'रत्नचूड़ चौपी' फरमाती थीं।

गुरुवर्याश्री ने 'लक्ष्मीवल्लभ टीका' व श्री समयसुन्दरगणी की कल्पलता व्याख्या एवं बुद्ध मुनिजी म. की कल्पबोधिनी टीका के आधार पर कल्पसूत्र का परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप में हिन्दी अनुवाद का श्रीगणेश तो जयपुर में ही कर दिया था, किन्तु इस लेखन कार्य की परिसमाप्ति कलकत्ता चातुर्मास में हुई ।

कलकत्ता में साधु-साध्वियों के चातुर्मास हेतु स्थान का अभाव-सा था । हम लोग जहाँ रुके थे वहाँ भी काफी असुविधाएँ थीं । गुरुवर्या ने उचित स्थान लेने का प्रस्ताव संघ के सामने रखा । तुरन्त चन्दा भी शुरू हुआ और 5-7 लाख की राशि एकत्र हो गई । कई स्थान देखे गये, किन्तु कलकत्ता जैसी घनी बस्ती वाले नगर में स्थान का मिलना असम्भव-सा ही है । एक बात और भी थी, वह यह कि जैन भवन या बड़े मन्दिर के पास ही कोई सेपरेट (स्वतन्त्र) जगह मिल जाय, वह न मिल सकी । योजना सफल न हो सकी । श्रावण की बरसात की झड़ियों के साथ ही तपस्याओं की झड़ी-सी लग गई । पूर्णाहुति पर पूजा और स्वधर्मी-वात्सल्य का भी खूब ठाठ रहा । अक्षय निधि तप (इसमें निरन्तर 15 दिन तक एकाशन व अन्तिम संवत्सरी के दिन उपवास किया जाता है) में भी कन्याओं, बहुओं-स्त्रियों की संख्या अधिक रही । क्रिया स्थापना आदि सामूहिक रूप से ही जैन भवन में तथा एकाशन का कार्यक्रम श्री मोतीचन्द जी नखत की धर्मशाला (जो जैन भवन के बाजू में ही थी) में होते थे ।

व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या लगातार बढ़ रही थी । संवत्सरी के दिन तो तीसरी मंजिल तक श्रोता बैठे थे । 5-7 हजार व्यक्तियों की उपस्थिति थी, अतः माइक की व्यवस्था करनी पड़ी । गुरुवर्याश्री के अगाध ज्ञान और तत्त्व विवेचन की शैली से कलकत्तावासी बहुत प्रभावित हुए । तत्त्वज्ञ विद्वान् श्री भंवरलाल जी नाहटा, श्री जिनप्रभसूरि रचित 'विविध तीर्थ-कल्प' (यह ग्रन्थ प्राकृत, संस्कृत दोनों भाषाओं में है) का हिन्दी अनुवाद कर रहे थे । जहाँ उन्हें कठिनता आती या विषय स्पष्ट नहीं होता वहाँ गुरुवर्याश्री से पूछते और स्पष्ट व समुचित समाधान पाकर हर्षित-तुष्टित होते ।

इस प्रकार कलकत्ता चातुर्मास पूर्ण सफल रहा ।

कार्तिक पूर्णिमा की शोभायात्रा :

कलकत्ता की कार्तिकी पूर्णिमा की शोभायात्रा विश्वप्रसिद्ध है । यह चातुर्मास पूर्ण होने पर निकाली जाती है । लगभग साढ़े तीन मील लम्बी शोभा यात्रा को मारवाड़ी, बंगाली तथा अन्य सभी बड़े चाव से देखते हैं । जैन समाज तो भाव

विभोर होता ही है, अन्य सम्प्रदाय वाले भी प्रभावित होते हैं, मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। शोभायात्रा में सबसे आगे इन्द्र-ध्वज चलता है, जिसकी ऊँचाई इतनी होती है कि 'ट्राम्स' के तारों के ज्वाइंट्स भी खोलने पड़ जाते हैं। सुविधा, सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए पुलिस साथ रहती है। यह शोभा यात्रा बड़े मन्दिर से शुरू होकर राय साहब के बगीचे (बद्रीदास टेम्पल) तक आती है और पूजा, स्वधर्मी-वात्सल्य के कार्यक्रम के साथ परिसमाप्त हो जाती है।

हमारे चातुर्मास के साथ ही तपागच्छ में आचार्य त्रिपुटि श्री जयन्तसूरि जी, श्री विक्रम सूरिजी और श्री नवीनसूरि जी, तीनों आचार्यों का तथा सर्वोदयाश्री जी म सा., वाचयंमाश्री जी म. सा. आदि साध्वीजी का चातुर्मास भवानीपुर में था जो कलकत्ता का ही एक उपनगर है। यहां जैनों के अनेक घर हैं व बड़ा शिखरबद्ध विशाल मन्दिर है। साथ में धर्मशाला भी है जो 4-5 मंजिल की है। यह साधु-साध्वियों के ठहरने के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

चातुर्मास पूर्ण कर हम लोगों ने भी भवानीपुर, बालीगज, लेकरोड़ आदि स्थित मंदिरों के दर्शन किये और फिर खड़गपुर की ओर कदम बढ़ाने का निर्णय किया। उसका कारण था कि भूतपूर्व प्रवर्तिनी प्र. स्व. पूज्या श्री ज्ञानश्री जी म. सा. के संसार पक्षीय भतीजे फलौदी निवासी चाँदमलजी सा. गोलेच्छा खड़गपुर ही रहते थे। वे जब भी पूज्याश्री के दर्शनार्थ जयपुर आते तभी खड़गपुर पधारने की विनती करते थे। कलकत्तावासियों से समारोहपूर्वक पुनः चातुर्मास के आग्रह के साथ भावभीनी विदाई लेकर हम लोगों ने खड्गपुर की ओर कदम बढ़ाये। सैकड़ों व्यक्तियों के साथ हावड़ा पहुंचे। बीकानेर के प्रसिद्ध श्रावक श्री रामपुरियाजी के यहाँ रुके। हम लोगों से भी दो दिन रुककर बड़ी पूजा और व्याख्यान आदि का आग्रह किया। दूसरे दिन उनके घर पर ही प्रातः 9 बजे से व्याख्यान हुआ जिसमें हावड़ा निवासियों के अतिरिक्त शहर के भी बहुत से लोग उपस्थित हुए। दोपहर की पूजा के बाद सभी लोग चले गये। हमने भी आगे प्रस्थान कर दिया।

मार्ग में कोयलाघाट आये। यहाँ दिगम्बर-श्वेताम्बर का एक ही मन्दिर है। एक श्वेताम्बर प्रतिमा वहीं की नदी में निकली थी, वही मन्दिर में विराजमान है। बड़ी भव्य मनोहर प्रतिमा है। इधर साधु-साध्वियों का आगमन बहुत कम होता है। मारवाड़ी जैनों के काफी घर हैं। हम लोगों से व्याख्यान का आग्रह किया गया। दोपहर में व्याख्यान हुआ। व्याख्यान सुनकर उन लोगों का धर्मोत्साह जाग उठा। तप-त्याग-प्रत्याख्यानों की बाढ़-सी आ गई। किसी ने रात्रि भोजन का त्याग किया तो किसी ने कन्दमूल का; किसी ने नवकार मन्त्र की माला फेरने का नियम

लिया, तो किसी ने नवकारसी का। इस प्रकार कोयलाघाट में धर्म व्यापार अच्छा रहा।

यहाँ से विहार कर पाँचवें दिन खड्गपुर पहुँचे। नगर से लगभग 1 कि. मी. दूर गोल बाजार स्थित धर्मशाला में रुके। यहाँ गुजराती जैनों के 10-12 घर हैं।

खड्गपुर प्रवेश

बड़ी धूमधाम से खड्गपुर में प्रवेश किया। धर्मशाला में पहुँचे। वहाँ एक कमरे में बिना प्रतिष्ठा के ही भगवान विराजमान थे, उनके दर्शन किये, वहीं पूज्याश्री चन्द्रप्रभाश्री जी म.सा., श्री धरणीन्द्र श्री जी म. व दिव्यप्रभाजी म. पहले से ही ठाणापति विराजमान थे। हम भी वहीं रुके। सेवार्थियों को मांगलिक सुनाई, सबने विदा ली। सम्पूर्ण संघ में हर्ष व्याप्त हो गया लेकिन वर्षों की भावना पूरी हो जाने से सर्वाधिक हर्षोल्लास श्री चांदमलजी साहब को था।

व्याख्यान शुरू हुए। यद्यपि हम लोग 10-15 दिन ही रुकना चाहते थे लेकिन लोगों के आग्रह से चार महीने तक रुके। आचारांग सूत्र की एक मात्र सूक्ति **'खणं जाणाहि पंडिए'** पर ही गुरुवर्याश्री की तत्त्वमेधिनी प्रज्ञा अमृतवर्षा करती रही। सभी लोग उनकी अगाध विद्वत्ता से प्रभावित हुए।

धर्मनिष्ठ चांदमलजी सा. प्रतिदिन पूजा के उपरान्त मांगलिक सुनने आते थे। गुरुवर्याश्री ने उन्हें नूतन मन्दिर बनवाने की प्रेरणा दी। बात उनके दिल में उतर गई। सर्वसम्मति से जैन भवन के ऊपर ही मन्दिर बनवाने का निर्णय कर लिया। फाल्गुन शुक्ला 5 के शुभ दिन गुरुवर्याश्री के कर कमलों से मन्दिर का शिलान्यास हो गया। मूल मन्दिर श्री चाँदमलजी बनवा रहे थे; पर सभामण्डप के लिए चन्दा होने लगा। उसी समय श्रीमती सुन्दरबाई कोचर (श्री भीखमचन्दजी कोचर की धर्मपत्नी) अपनी द्वादश वर्षीया पुत्री कमल को सामने कर हर्षातिरेक में बोल उठी—"आप लोग तो सिर्फ रुपये पैसे का ही चन्दा कर रहे हैं, लेकिन मैं महाराज साहब के चरणों में अपना चाँद का टुकड़ा समर्पित करती हूँ। यदि वर्तमान के समान भविष्य में भी इसकी भावना बनी रही तो अवश्य ही दीक्षा दिलवाऊँगी।"

इन उद्‌गारों को सुनकर सभी धन्य-धन्य कह उठे। हम लोग भी चकित रह गये, क्योंकि इस सम्बन्ध में कभी कोई बात ही हमारे सामने नहीं आई थी, न कमल ने ही ऐसी कोई भावना हमारे सामने व्यक्त की और न उसकी माता नेही। हमने इस सम्बन्ध में कमल की माँ से कहा—आपने इतना बड़ा निर्णय अचानक ही कैसे ले लिया और संघ के समक्ष प्रकट भी कर दिया ?

तब उन्होंने कहा—आपको पहले ही बता देते तो ठीक रहता। बिना बताये ही घोषित कर दिया, यह हमारी भूल हुई। हम क्षमाप्रार्थी हैं। लेकिन जब से आप पधारी हैं और आपके ओजस्वी प्रवचन इसने सुने हैं तभी से दीक्षा की जिद कर रही है। बहुत समझाया, प्रलोभन भी दिये पर मानती ही नहीं, दीक्षा की जिद पर अड़ी हुई है। अब आप इसे अध्ययन करवाइये। जब दीक्षा के योग्य हो जायेगी तब इसे आपकी निश्रा में दीक्षा दिलवायेंगे। यह कहकर कमल उन्होंने हम लोगों के सुपर्द कर दी।

यद्यपि पुनः कलकत्ता जाने का हमारा विचार नहीं था, किन्तु वहाँ से बार-बार विनतियाँ आ रही थीं और खड्गपुर में नूतन मन्दिर की प्रतिष्ठा हेतु मूर्तियों के मंगल प्रवेश के शुभावसर पर तो कलकत्ता के श्रावक खड्गपुर में आ ही गये थे। उनमें से मुख्य थे—श्री ताजमलजी सा. बोथरा, भँवरलालजी सा. नाहटा, हीरालालजी सा. लूनिया, जतनमलजी सा. नाहटा और ज्ञानचन्दजी सा. लूणावत। सभी ने पुरजोर विनती की। यहाँ तक कह दिया कि जब तक आप कलकत्ता चातुर्मास की स्वीकृति नहीं देंगी तब तक न हम लोग मुँह में पानी डालेंगे और न ही यहाँ से उठेंगे। इस श्रद्धा-भक्ति भरे आग्रह और भविष्य का लाभ देखकर कलकत्ता चातुर्मास की स्वीकृति गुरुवर्याश्री ने दे दी।

शाश्वती ओली निकट थी। आपश्री ने चैत्री पूनम के लिए प्रेरणा दी तो कितनों ने ही सामूहिक आयम्बिल में नाम लिखाये। गुरुवर्याश्री ने 'श्रीपालचरित्र' का मधुर भावपूर्ण शैली में वाचन किया। नवपद ओली की सबने आराधना की।

धार्मिक ज्ञान सीखने हेतु यहाँ की कई लड़कियाँ हमारे पास आती थीं। उनमें कमल की दोनों बड़ी बहनें – निर्मला और हीरामणि भी थीं। निर्मला की तो सगाई की बातें चल रही थीं, पर इसने भी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की, हीरामणि ने भी की, अन्य कई लड़कियों ने भी की, परन्तु उस समय योग नहीं था, इसलिए उनकी भावना सफल न हो सकी।

पुनः कलकत्ता चातुर्मास (सं. 2030)

संभवतः कलकत्ता के श्रावकों के मन में सन्देह था, अतः कलकत्ता की ओर हमारा प्रस्थान करवाकर ही वे लौटे। कोयलाघाट में खड्गपुर के कई लोग आये थे। हावड़ा से पहले लिलुआ ग्राम में नया मन्दिर बना था, वहां दर्शन किये तथा श्रावकों के आग्रह पर एक दिन रुके। हावड़ा ब्रिज पहुँचे। कलकत्ता के श्रावक वहां स्वागतार्थ उपस्थित थे। संघ के साथ बड़े बाजार स्थित मन्दिर के दर्शन-वन्दन

कर 11 नं. उपाश्रय पहुँचे। मांगलिक सुनाथा और प्रभावनादि का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रतिदिन जैन भवन में व्याख्यान होता था। त्याग-तपस्या-प्रत्याख्यान आदि का माहौल पूर्ववत् (2029 के चातुर्मास) था। वैरागिन बहनें हमारे पास रहकर ही धार्मिक अध्ययन कर रही थीं। पूज्याश्री श्रीमद् देवचन्द्रजी म. रचित 'द्रव्य प्रकाश' का अनुवाद कर रही थीं।

चातुर्मास सानन्द सम्पूर्ण हुआ। चैत्री पूनम की शोभा-यात्रा देखते हुए हम लोग बद्रीदास टेम्पिल पहुंचे। प्रियदर्शनाजी और मुझको (शशिप्रभा श्री) साहित्य-रत्न की परीक्षा देनी थी। परीक्षा पोष बदी में थी, अतः एक महीने तक भवानीपुर रुके। परीक्षा हेतु पुनः शहर में आ गये।

खड्गपुर में भगिनी त्रय का दीक्षा समारोह

खड्गपुर के लोगों ने आकर बताया कि दीक्षा का शुभ मुहूर्त्त बसन्त पंचमी का है। उन्होंने उस दिन तक पधारने की हम लोगों से विनती की। हम लोगों ने विहार किया और मार्ग के क्षेत्रों को फरसते हुए यथासमय खड्गपुर पहुँचे। श्री रम्भाश्री जी म.सा. भी खड्गपुर संघ के अत्याग्रह से टाटानगर चातुर्मास पूर्ण कर खड्गपुर पहुंचे गये। श्रीमान भीखमचन्द जी सा. व भाई प्रकाशचन्द जी कोचर ने हर्षोत्साहपूर्वक शान्ति स्नात्र, महापूजन सहित अठाई महोत्सव कराये। दीक्षा के प्रथम दिन वर्षीदान का भव्य वरघोड़ा, जिसमें पालकी में भगवान भी थे, मध्य बाजार से गुजर रहा था तो सभी लोगों के भावोद्गार निकले—'इतनी छोटी सी उम्र में संयमी जीवन का स्वीकार. धन्य हैं ये लोग ! इस प्रकार सभी त्यागमार्ग की अनुमोदना कर रहे थे।

दूसरे दिन माघ सुदी 5 को शुभ मुहूर्त्त में पूज्याश्री चन्दश्रीजी म.सा., पू. श्री रम्भाश्री जी म. सा. आदि की निश्रा मे तीनों बहनों की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। निर्मला का नाम 'दिव्यदर्शना जी', हीरामणि का नाम 'तत्त्वदर्शना जी' और कमल का नाम 'सम्यग्दर्शनाजी' रखा गया तथा तीनों पूज्या गुरुवर्या श्री सज्जनश्री म. सा. की शिष्याएँ घोषित की गयीं।

खड्गपुर में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण बंगाल में ही संभवतः साध्वी दीक्षा का यह प्रथम अवसर था। अतः 15 दिन तक आस-पास के बंगाली सज्जन आते रहे तथा नूतन साध्वीजी के दर्शन एवं उनके परिवारजनों के भाग्य की सराहना करते रहे।

वीर निर्वाण की 25वीं शताब्दी : पावापुरी चातुर्मास (वि. सं. 2031)

तीर्थंकर भगवान की 25वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में भगवान की निर्वाण भूमि पावापुरी में विराट आयोजन हो रहा था। यद्यपि हमारा विचार नूतन साध्वियों की बड़ी दीक्षा कराने हेतु मध्यप्रदेश जाने का था किन्तु श्रद्धेय पूज्य अनुयोगाचार्य श्री कांतिसागरजी म सा. का आदेश पावापुरी रुकने का आ गया। आदेश था—आगामी चातुर्मास पावापुरी में करना है और 25वां निर्वाण शताब्दी समारोह धूमधाम से मनाना है। राष्ट्रसंत कवि अमरमुनिजी म. एवं तेरापंथी मुनिश्री रूपचंद जी म. तथा साध्वी श्री सुमतिकुंवर जी म., दर्शनाचार्या श्री चन्दनाजी म. आदि भी इस शुभावसर पर पधार रहे हैं और हम लोग भी शीघ्र ही वहां पहुँचेंगे। श्रद्धेय गुरुदेव के आदेश को हमने शिरोधार्य किया।

पुनः पावापुरी की ओर :

हमारे कदम नूतन दीक्षिता साध्वियों के साथ खड्गपुर से पावापुरी की ओर बढ़े। मार्ग में पुरुलिया, जमशेदपुर, विष्टिपुर आदि स्थानों में, जहां जैन मन्दिर हैं और श्रद्धालु श्रावकों के घर हैं, दो-दो, तीन-तीन दिन रुकते-ठहरते हुए, महोदा, झरिया, कतरासगढ़ होते हुए चैत्र सुदी 5 को निमियाघाट से शिखरजी पहुँचे। हम लोगों को आशातीत प्रसन्नता हुई, क्योंकि शिखरजी की यात्रा के पुनः संयोग की आशा ही नहीं थी हमें। शिखरजी में ही शाश्वती नवपद ओली का आराधन किया। वैशाख बदी 3 को शिखर जी से विहार कर कोडरमा होते हुए पावापुरी पहुँचे। लगभग 8 दिन वहां रहे। विचार किया, अभी तो चातुर्मास में बहुत समय है। एक बार पुनः राजगृही हो आयें। विचार के साथ ही पग बढ़े और दूसरे ही दिन 'शॉर्टकट' से राजगृही जा पहुँचे।

वीरायतन :

महासती श्री सुमतिकुंवरजी एवं श्री चन्दनाजी म. वीरायतन के लिए यहीं विराजी थीं। पंचम पहाड़ वैभारगिरि की तलहटी में वीरायतन के लिए स्थान (जगह) लिया जा चुका था, दोनों साध्वीजी म. की निश्रा में शिलान्यास हो चुका था, निर्माण कार्य चल रहा था, राष्ट्रसन्त कवि अमरमुनिजी म. भी पधारने वाले थे। वीरायतन का निर्माण कवि अमरमुनिजी म. और साध्वी चन्दनाश्री जी म. की अनोखी और सामयिक सूझ-बूझ का परिणाम है। वीर शासन के प्रति उन्होंने इस निर्माण कार्य से अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया है। यहाँ ऐसा निर्माण होना ऐतिहासिकता को सुरक्षित रखने के लिये आवश्यक भी था।

हम लोग वीरायतन जाते रहते थे और साध्वी चन्दनाजी भी आती रहती थीं। साध्वीजी बहुत ही मिलनसार हैं। हमारी भेंट पहले अजमेर और दूसरी बार कलकत्ता दादाबाड़ी में हो चुकी थी। तभी से हम उनकी सहृदयता और मिलनसारिता से परिचित थीं। राष्ट्रसन्त कवि अमरमुनि जी म. के राजगृही प्रवेश पर निमन्त्रित होकर हम भी गये थे, नालन्दा बौद्ध संस्थान के कई विद्वान, जापान के फ्यूजी गुरुजी तथा प्रसिद्ध जैन विद्वान् नथमलजी टाटिया (जो उस समय नालन्दा के प्रोफेसर और वर्तमान में जैन विश्व भारती, लाडनूं में शोध विभाग के निदेशक हैं) पधारे थे। कविजी म. के स्वागत में सभा का आयोजन किया गया। सभी विद्वानों के भाषण हुए। गुरुवर्याश्री ने भारत के ऐतिहासिक तीर्थस्थलों का इतने सुन्दर ढंग से विवेचन प्रस्तुत किया कि सभी ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

कुछ दिन पश्चात पालीताना से विहार कर श्रद्धेय अनुयोगाचार्य श्री कांतिसागर जी म.सा., पू. दर्शनसागर जी म.सा. व बालमुनि मणिप्रभसागर जी भी राजगृही की सीमा में तीसरे पहाड़ की तलहटी में स्थित छोटी-सी धर्मशाला में पधार गये। वहाँ पूज्य गुरुदेव ने अट्ठम तप के साथ तीन दिन तक मौन, आराधना, जप, ध्यान किये।

कलकत्ता के कई अग्रगण्य श्रावक एवं राजगृही के व्यवस्थापक श्रीमान जंयन्तीलालजी सा० आदि आपके स्वागतार्थ राजगृही के तीसरे पहाड़ में आ गये। खूब ठाठ से राजगृही में प्रवेश हुआ। बड़ी धर्मशाला के सामने एक प्राइवेट बंगले में गुरुदेव रुके। तेरापंथी मुनि रूपचन्दजी भी पार्श्व के एक सुव्यवस्थित स्थान में रुके। हम लोग उनसे मिलने और विहार-सम्बन्धी सुख-पृच्छा करने गये। सौहार्द्रपूर्ण वातावरण रहा। अनुयोगाचार्यजी भी दोनों मुनिराजों से मिले तथा पच्चीसवीं शताब्दी निर्वाणोत्सव में पधारने का आग्रह किया। ऐसा ही आग्रह साध्वी सुमतिकुंवरजी एव चन्दनाजी से भी किया गया जिसे सभी ने स्वीकार कर लिया। पूज्य गुरुदेव कान्तिसागरजी और हम लोगों ने कच्चे शार्टकट मार्ग से पावापुरी की ओर विहार किया। पावापुरी से 1-2 किलोमीटर पहले स्वागतार्थ आये श्रावकों ने धूमधाम से प्रवेश कराया। यद्यपि पावापुरी में जैन घर नहीं हैं, किन्तु इस विशाल आयोजन और साधु-साध्वियों के चातुर्मास के समाचार प्रसारित होते ही अनेक जैन बन्धु कलकत्ता, विहार शरीफ, पटना, भागलपुर, बीकानेर आदि स्थानों से चातुर्मासकाल के लिए वहां आ गये। 30-40 चौके हो गये।

जैन चौका

'जैन चौका' मात्र वह स्थान नहीं है जहाँ भोजन बनता है, अपितु 'चौका' का तात्पर्य है चार प्रकार की शुद्धियां-द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भाव शुद्धि।

द्रव्यशुद्धि का अर्थ भोजन तैयार करने वाले और जो द्रव्य-अन्न आदि हैं, वे सब शुद्ध हों। क्षेत्रशुद्धि में भोजन बनाये जाने वाले स्थान की स्वच्छता निहित है। कालशुद्धि का अभिप्राय : भोजन की बेला का विचार रखना है और भावशुद्धि में भोजन बनाने वाले के भाव—चित्तवृत्तियाँ शुभ हों, शुद्ध हों, उदार हों, मन में यह भावना हो कि कोई त्यागी-तपस्वी, साध्वी-सन्त मेरे बनाये भोजन में से कुछ आहार ग्रहण कर लें तो मैं कृतार्थ हो जाऊं, मेरा जीवन धन्य हो जाए, मेरा यह चौका पवित्र हो जाए। इन चारों प्रकार की शुद्धियों से पूर्ण शुद्ध 'चौका' ही 'जैन चौका' कहलाने योग्य है। ऐसे चौके पावापुरी में उस समय लगभग 30-40 थे।

नूतन दीक्षिता भगिनियों की बड़ी दीक्षा श्रद्धेय गुरुदेव की निश्रा में आषाढ़ शुक्ला 12 के दिन सानन्द सम्पन्न हुई। इस दीक्षा में दीक्षिताओं के माता-पिता भी सम्मिलित हुए।

श्रद्धेय गुरुदेव के आदेश मे पूज्य गुरुवर्याश्री ने भगवान महावीर की प्रथम देशना के स्थान पर प्रथम प्रहर में श्री आचारांग सूत्र और मध्याह्न में भगवान की अन्तिम देशना उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन शुरू किया जिसे श्रावक-श्राविका तथा बाहर से आये सभी व्यक्ति सुनते थे। बहाँ सभी का तन-मन श्रद्धा में अभिसिंचित हो रहा था।

श्रद्धेय अनुयोगाचार्यजी के आदेश से गुरुवर्याश्री ने बालमुनि मणिप्रभसागरजी म० को चातुर्मास काल में ही साधनिका सहित संपूर्ण कौमुदी कण्ठस्थ करवा दी। श्री मणिप्रभसागरजी म० की ग्रहणशक्ति इतनी प्रबल है कि इन्होंने इतनी जल्दी कौमुदी को कण्ठस्थ कर लिया।

निर्वाण शताब्दी समारोह चातुर्मास के प्रारम्भ से ही शुरू हो गया था। हम सब लोग व पूज्याश्री चन्दनाजी, यशाजी, साधनाजी आदि निर्वाण मंदिर से गाते हुए, धुन लगाते हुए प्रभात फेरी के रूप में जल मंदिर जाते थे। आशा यह थी कि भगवान के 2500वें निर्वाण समारोह के अवसर पर बाहर से लगभग एक लाख स्त्री-पुरुष आयेंगे। उसी के अनुसार सुव्यवस्थित महावीर नगर बसाया गया। कार्यक्रम संपादन हेतु जलमन्दिर के एक ओर विशाल मंडल भी बनाया गया। किन्तु उन्हीं दिनों बिहार में श्री जयप्रकाशनारायण का आन्दोलन चल रहा था, वातावरण अशांत बना हुआ था। यद्यपि श्रद्धेय अनुयोगाचार्यजी बिहारशरीफ की इतनी लम्बी यात्रा करके जे०पी० से स्वयं मिले और उनसे संपूर्ण कार्तिक मास में आन्दोलन बन्द रखने का

वचन ले लिया था, तथा इस प्रकार के समाचर रेडियो द्वारा प्रसारित भी करवा दिये थे, पर जितनी आशा थी बाहर से उतने लोग नहीं आये।

कार्यक्रम 10 दिन पहले ही शुरू हो चुका था। विद्वान लोग आ गये थे। विद्वद् गोष्ठियाँ और व्याख्यान होने लगे। वक्ता अपने व्याख्यानों में अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांत, आत्मवाद आदि का विवेचन करते। आस्तिक्य आदि की व्याख्या करते और प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव रखने की प्रेरणा देते। भक्ति, आस्था और श्रद्धा का वातावरण था। इसी अवसर पर निर्वाण मन्दिर का जीर्णोद्धार भी हुआ। जैसलमेरी पीत पाषाण की दो अत्यन्त प्राचीन प्रतिमाएँ, जो जैसलमेर से ही लाई गई थीं, उनको भी शांति स्नात्र, महापूजन सह अष्टान्हिका महोत्सवपूर्वक बड़े धूम-धाम से मिगसिर कृष्णा में शुभ दिन और शुभ मुहूर्त्त में मन्दिर के मूल गभारे में दोनों तरफ विराजमान किया गया।

स्थानकवासी राष्ट्रसंत कवि अमरचन्दजी म०, आर्या महासती सुमतिकुंवरजी, चन्दनाजी तथा तेरापंथी मुनि रूपचन्दजी भी पूजादि में पधारते और अपनी मधुर वाणी में पूजा-भजन आदि गाते थे। इससे हमने वह अनुमान लगाया कि शास्त्र-सम्मत प्रभु प्रतिमा को मानने में उन्हें कोई ऐतराज न था और न है। अनेकान्तवादी जैन धर्म में अपार सहिष्णुता और सद्भावना का स्थान है। सभी समारोह बड़े धर्मोत्साह के साथ सम्पन्न हुए। हमारा यह चातुर्मास अविस्मरणीय रहा।

चातुर्मास के उपरान्त अनुयोगाचार्यजी को शिखरजी की ओर पधारना था।

राजस्थान की ओर

हमने राजस्थान की ओर कदम बढ़ाए। मार्ग में गया, बौद्ध गया आदि तीर्थ आये। गया में दिगम्बर जैनियों के घर काफी हैं, श्वेताम्बर जैनियों का एक भी घर नहीं है। ग्राम में दिगम्बर मन्दिर भी हैं। बौद्ध गया में भी जिस पिप्पल के वृक्ष के नीचे तथागत को बोध प्राप्त हुआ था, वह बोधिवृक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ विशाल बौद्ध मन्दिर है। चीन, जापान, बर्मा, लंका, थाइलैण्ड आदि देशों द्वारा बनवाये हुए बौद्ध मन्दिर भी हैं। बौद्ध विहार भी हैं। इनमें भिक्षु-भिक्षुणियाँ रहते हैं। हमने इन सब को देखा तो भारत के प्रति गौरव का भाव मन में भर उठा। भारत के एक महापुरुष को विदेशों में कितना सम्मान मिला। साथ ही इस बात का दुःख भी हुआ कि भारत के ही अन्य धर्मावलंबी नरेशों ने जैनों पर इतने अत्याचार किये। जिस प्रदेश में हमारे तीर्थंकर जन्मे, बिचरे, ज्ञान का प्रकाश दिया, उसी भारत में हमारे धर्म का इतना पतन हो गया। अत्याचार तो

बौद्धों पर भी हुए, पर वे अन्य देशों में निकल गये, वहां अपना वर्चस्व स्थापित किया, लाखों-करोड़ों अनुयायी बनाए, किन्तु जैन तो पिछड़े ही रह गये और इसके ऐतिहासिक कारणों पर गुरुवर्याजी ने कई बार प्रकाश डाला।

बौद्ध गया से प्रस्थान करके नेशनल हाईवे पर चलते हुए बनारस, इलाहाबाद (पुरिमताल—जहाँ भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ था), कानपुर (जहाँ काँच का दर्शनीय मन्दिर है), शौरीपुर (भगवान नेमिनाथ की जन्मभूमि) होते हुए आगरा आये। 8-10 दिन रुके। व्याख्यान, पूजाओं आदि का ठाठ रहा। सभी मन्दिरों के दर्शन किये।

'श्वेताम्बर जैन' पत्र के संस्थापक-संपादक श्री जवाहरलालजी लोढ़ा के अति आग्रह से जयपुर हाउस स्थित उनके नवीन बंगले पर गये। यहाँ उन्होंने दादा गुरुदेव की पूजा व व्याख्यान का कार्यक्रम रखा था। समीपस्थ दादाबाड़ी व सेठ के बाग के मन्दिर के दर्शन करके पुनः बंगले में आ गये।

दूसरे दिन विहार कर दिया। चैत्र बदी 2 को जयपुर पहुँचे। वहाँ पूज्य प्रवर श्री साम्यानन्दजी म. एवं व्याख्यान वाचस्पति श्री जयानन्दजी म. की निश्रा में लगभग 150 श्रावक-श्राविका उपधान तप कर रहे थे। चैत्र शुक्ला 5 को माला-रोपण का शुभ मुहूर्त्त था, अतः पूज्य प्रवर के आदेश से 15 दिन वहीं रुके। पूज्य गुरुवर्याश्री से तत्त्वरसिक श्रावक-श्राविका एक-डेढ़ घण्टे तक नित्य तत्त्वचर्चा करते थे।

यद्यपि आज का युग भोगवाद का है। शिक्षा भी अर्थार्जनलक्ष्यी है। शिक्षितवर्ग भारतीय वेश-भूषा, खान-पान, आचार-विचार के प्रति हेय दृष्टि रखता है। धर्म-क्रियाएँ भी आडम्बर और दिखावा मात्र रह गई हैं। इन्हें धर्मक्रिया न कहकर धार्मिक 'परेड' कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, फिर भी इस भौतिकता-प्रधान युग में कुछ तत्त्वरसिक श्रावक-श्राविका हैं, वे ही गुरुवर्याश्री से तत्त्वचर्चा करते थे। इस प्रकार 15 दिन बीत गये। अष्टान्हिका महोत्सवपूर्वक मालारोपण का कार्यक्रम हुआ। उसी दिन गुरुदेव के बाहरी कक्ष में योगीराज श्री शांतिविजय जी म० की मूर्ति स्थापना का कार्यक्रम भी समारोहपूर्वक संपन्न हुआ। हम शहर में आ गये। शाश्वत नवपदओली, महावीर जयन्ती तथा चैत्री पूर्णिमा पर्वों की आराधना की।

वैशाख महीने में जैन कोकिला पूज्या श्री विचक्षणश्रीजी मा०सा० आदि सर्व दिल्ली से पधार गयी थीं। चातुर्मास समीप होने से अनेक क्षेत्रों की चातुर्मास

हेतु विनतियाँ आ रही थीं। अजमेर संघ का आग्रह अत्यधिक था। किन्तु इस बार पू० प्रवर्तिनीजी की इच्छा पू० गुरुवर्या का चातुर्मास अपने साथ ही कराने की थी, अतः जैन कोकिलाजी ने सबको मधुर स्वर से इन्कार कर दिया। किन्तु अजमेर संघ का आग्रह अन्त तक रहा। उस वक्त तक तपागच्छ और खरतरगच्छ में कोई भेदभाव नहीं था। अतः संघ के अग्रगण्य श्रीमान रामलालजी सा० लूनिया, श्रीरतनचन्दजी सा० संचेती आदि श्रावकों के अत्याग्रह पर अजमेर चातुर्मास के लिए साध्वी श्री प्रियदर्शनाजी, जयश्रीजी व दिव्यदर्शनाजी को अजमेर के लिए प्रस्थान करवाया।

जयपुर चातुर्मास (सं 2032)

जैन कोकिला पूज्याप्रवर्तिनी महोदया के साथ गुरुवर्याश्री को ज्ञान-गोष्ठी का अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ। प्रातः 9 से 10-30 तक गुरुवर्याजी सर्व साध्वी मंडल को 'आवश्यक सूत्र' का वाचन कराती थीं और मध्यान्होत्तर 2 से 4 तक तत्त्वरसिक श्रावक-श्राविका आ जाते और जैनकोकिला जी व गुरुवर्याश्री से अकाट्य समाधान पाकर हर्षित होते।

ज्ञान-गोष्ठियाँ करते-करते चातुर्मास कब समाप्त हो गया पता ही न चला।

चातुर्मास संपूर्ण होने के उपरान्त गुरुवर्याश्री ने जैन-कोकिलाजी से विनम्र शब्दों में केशरिया जी आदि तीर्थों की यात्रा करने की अनुमति माँगी। यद्यपि पू० प्रवर्तिनी महोदया नहीं चाहती थीं कि गुरुवर्याश्री उन्हें छोड़कर जायें, तथापि यात्रा को प्राधान्यता देते हुए आज्ञा प्रदान कर दी।

'आगम-ज्योति' अलंकरण

पूज्या प्रवर्तिनी महोदया की निश्रा में ही जयपुर के खरतरगच्छ संघ ने विदाई समारोह का आयोजन किया। संपूर्ण संघ के समक्ष पू० प्रवर्तिनीजी ने गुरुवर्याश्री को **'आगम-ज्योति'** के विरुद से अलंकृत किया। विदुषीवर्या श्री चन्द्रप्रभाजी म० व मणिप्रभाजी म० ने संस्कृत और हिन्दी के स्वरचित अष्टक बड़े ही मधुर स्वर में समर्पित किये। सर्व मंडल और श्री संघ ने विदाई दी। गुरुवर्याश्री ने वहाँ से मिगसर बदी में मालपुरा की ओर प्रस्थान किया। काफी दूर तक पू० प्रवर्तिनीजी तथा श्रीसंघ साथ रहा। विदाई का समय बड़ा ही मर्मस्पर्शी बन गया था।

पू० गुरुवर्याश्री मालपुरा पहुँचीं। अजमेर चातुर्मास पूर्ण करके प्रियदर्शनाजी आदि तीनों साध्वियां भी मालपुरा पहुँच गईं। 3-4 दिन जप-ध्यान-भक्ति-मौन

साधना करते हुए वहीं रुके। वहाँ से प्रस्थान करके केकड़ी, विजयनगर, गुलाबपुरा होते हुए प्रसिद्ध विद्वान श्री जिनविजयजी के आश्रम (चंदेरिया ग्राम) पहुँचे। आप महान् विद्वान, आगमों के अच्छे ज्ञाता तथा जैन संस्कृति की प्राचीनता व ऐतिहासिकता से पूर्णतः परिचित हैं। वे गुरुवर्या के अप्रत्याशित आगमन और मिलन से अति प्रसन्न हुए। उनके आग्रह से एक दिन रुके। ऐतिहासिक चर्चायें हुईं। हम सबने मुनिवर से ज्ञातव्य ज्ञात किये। दूसरे दिन विहार कर चित्तौड़ पहुँचे।

बागड़ प्रदेश में

चित्तौड़गढ़ :—यह ऐतिहासिक नगरी तो है ही, लौकिक और लोकोत्तर तीर्थस्थल भी है। यह नगरी वीर-क्षत्रियों की जननी है तो धर्मवीरों की भी। इतिहास में इसका अमिट स्थान है। याकिनी महत्तरा तथा हरिभद्रसूरि, जो जैन दर्शन के उद्भट विद्वान थे, उनकी जन्मभूमि एवं प्रतिबोध-भूमि यही नगरी है। चित्तौड़ के आसपास का क्षेत्र बागड़ कहलाता है। श्रीजिनवल्लभसूरि ने इस क्षेत्र में विचरण कर 1800 हूंबड़-बागड़ी लोगों को जैन दीक्षा देकर श्रावक बनाने का भगीरथ कार्य किया था तथा और भी कई शासन प्रभावना के कार्य किये थे।

चित्तौड़ दुर्ग पर बने शिखरबद्ध जिन मन्दिरों के दर्शन कर चित्त प्रसन्न हो गया। यहाँ विजय स्तम्भ है, जिसके साथ गुरुदेव का भी सम्बन्ध है। भक्त मीराबाई का मन्दिर भी सुन्दर है। रानी पद्मिनी का जौहर-स्थल भी यहीं है। हमने इन सब को देखा। ऐतिहासिक स्थानों को प्रत्यक्ष देखकर हृदय गौरव से भर गया। दो-तीन दिन वहाँ रुके।

करेड़ा पार्श्वतीर्थ—चौथे दिन विहार कर करेड़ा पार्श्व तीर्थ पहुँचे। भ० पार्श्वनाथ के विशाल शिखरबद्ध मन्दिर के दर्शन किये। धर्मशाला, भोजनशाला आदि सभी सुव्यवस्थित हैं।

यहाँ से उदयपुर पहुँचे। राजस्थान का यह दर्शनीय स्थल है। देश-विदेश के पर्यटक आते हैं। यहाँ कई विशाल मन्दिर हैं। सूर्यपोल के बाहर भी भावी तीर्थंकर पद्मनाभ का विशाल मन्दिर है, जिसमें प्रतिमा भी विशाल है। यहाँ दो-तीन दिन रुके। सभी मन्दिरों के दर्शन किये। दूर-दूर के कुछ मन्दिर रह भी गये। सोचा था—केशरियानाथजी से लौटकर पुनः उन मन्दिरों के दर्शन कर लेंगे। क्योंकि इधर आकर हमें पुनः आबू, मांडोली आदि तीर्थों की यात्रा करनी थी। केशरियानाथजी की ओर विहार किया।

केशरियानाथ—इसका मार्ग पर्वतीय क्षेत्रों में होकर है। काफी उतार-चढ़ाव हैं। उदयपुर से सांवलाजी तक तीखे मोड़ोंयुक्त घाटी है, भूमि ढालू है। इस घाटी को खजूरी घाटी भी कहा जाता है। केशरियानाथ का नाम ऋषभदेव भी है। किलोमीटर के स्टोन पर भी यही नाम लिखा है। चौचे दिन केशरियानाथ पहुँचे, गुरुवर्याश्री की भावना सफल होने से वे आज बहुत प्रसन्न थीं। तीर्थ की प्राचीनता प्रतिमाजी और मन्दिर से स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी।

जैन और वैष्णवों के विवाद के कारण यह तीर्थ-स्थल सरकार के हाथ में है। लेकिन देखने वाला कोई नहीं है। भ० ऋषभदेव को हिन्दू अपना आठवाँ अवतार मानते हैं। रोज गीता-रामायण का पारायण होता है। पर मन्दिर की दशा की ओर ध्यान नहीं। गभारा एकदम काला हो रहा है। भगवान् की ऐसी आशातना देखकर दुःख हुआ। व्यवस्थापकों व पुजारियों से इस विषय में बात-चीत भी की, लेकिन सुपरिणाम निकलने की कोई आशा नहीं दिखाई दी।

यहाँ से यद्यपि पुनः उदयपुर लौटने का विचार था लेकिन जैसे ही मालूम हुआ कि अहमदाबाद बहुत समीप है, तो पालीताणा, गिरनार आदि पंचतीर्थी करने की भावना जाग उठी। गुरुवर्याश्री की इच्छा गिरिराज शत्रुञ्जय की नव्वाणु यात्रा और वहीं चातुर्मास करने की थी, अतः कदम उसी ओर बढ़ गये।

मुहरीपार्श्वतीर्थ—मार्ग में मुहरीपार्श्वतीर्थ आया। इसके लिए मेन रोड़ छोड़कर कुछ अन्दर जाना पड़ता है। तीर्थ में पहुँचे। विशाल मन्दिर और भव्य प्रतिमा के दर्शनों से चित्त आनन्द से भर गया। 'जयउसामिय' चैत्यवंदन सूत्र के पाठ 'मुहरिपास दुहदुरिय खंडण' से इसकी प्राचीनता स्पष्ट होती है। वर्तमान में यह तीर्थ टिटोइ ग्राम के नाम से प्रसिद्ध है।

अहमदाबाद—मार्गस्थ तीर्थों की यात्रा करते हुए अहमदाबाद पहुँचे। यह जैनों की धर्म नगरी है। 300-350 जिनमन्दिर हैं। कई भव्य बड़े विशाल शिखर-बद्ध तो कई छोटे। लेकिन छोटों में भव्य और चित्ताकर्षक प्रतिमाएँ हैं। दर्शन करके मन तृप्त हो गया। नये मन्दिरों-धर्मशालाओं आदि का निर्माण भी हो रहा है। इतने मन्दिर होने पर भी सभी सुव्यवस्थित हैं। जिस मन्दिर में जाओ पाँच-पचास भक्त पूजा करते हुए मिल जायेंगे। अहमदाबाद में 8 दिन रहकर हमने सभी मन्दिरों के दर्शन किये। फिर पालीताणा की ओर विहार कर दिया।

पालीताणा—यह शाश्वत तीर्थराज शत्रुंजय की तलहटी में बसा है। यहाँ के तीर्थनायक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। वे नव्वाणु बार इस तीर्थराज पर

पधारे थे। नेमिनाथ के अतिरिक्त 23 तीर्थंकरों के चरण-कमल इस पर पड़े थे और म० अजितनाथ तथा श्री शांतिनाथ ने यहाँ चातुर्मास किया था। पाँचों पाण्डवों की मोक्षस्थली भी यही है। यहाँ का कण-कण पवित्र है। ऐसी पावन स्थली का श्रद्धा से किया गया स्पर्श भी कोटि जन्मों के पापों का नाश करने वाला है। यहाँ पर किये गये पुण्यों का दस गुना फल होता है। पापी और अभव्य तो इसके दर्शन कर ही नहीं सकता। कहा है—'पापी अभव्य न नजरे देखें.....'

फाल्गुल कृष्णा 2 को हमने इस तीर्थ में पदार्पण किया, रोम-रोम पुलकित हो उठा, 'शत्रुंजय रास' की कड़ियां (पंक्तियाँ) मन-मानस में उमड़ने लगीं। नरशीनाथ, नरशीकेशव के दर्शन करते हुए 'हरि विहार' धर्मशाला पहुँचे। पूज्य अनुयोगाचार्य श्रद्धेय गुरुदेव वहीं विराज रहे थे। विधिपूर्वक दर्शनवन्दनादि किये। गुरुदेव ने वहीं रुकने का आग्रह किया, परन्तु हमें तो नव्वाणु यात्रा करनी थी। अतु तलहटी के अत्यन्त निकट हैदराबाद निवासी श्रीमान कपूरचन्दजी श्रीमाल के कपूर निवास की ओर चल दिये। मध्य में माधवलाल धर्मशाला में विराजित सम्पतश्रीजी म.सा., गुणवानश्रीजी म.सा. आदि साध्वियों के दर्शन किये।

गुरुवर्याश्री के नव्वाणु यात्रा के निश्चय को सुनकर हम लोग चकित रह गईं। 67 वर्ष की आयु और साढ़े तीन मील की चढ़ाई। कैसे सम्भव हो सकेगा यह संकल्प पूरा? पर, सभी के मन में भक्ति भरा भावोल्लास था और गुरुवर्याश्री के मन में तो सबसे अधिक था। प्रातः 5 बजे चढ़ना, शांतिपूर्वक दर्शन, चैत्यवन्दन, देव-वन्दन करना और ग्यारह, साढ़े ग्यारह बजे तक उतरना। यही क्रम चलता था। कभी-कभी घेटी पात्र भी पधारीं, पर अधिक बार नहीं, क्योंकि इधर की चढ़ाई खड़ी थी।

इसी अन्तराल में श्री अनुयोगाचार्य जी के पास आठ वर्षीय वैरागी मुकेश कुमार, जो पाँच-सात महीने से गुरुदेव के पास ही रह रहे थे, उनकी दीक्षा फाल्गुन शुक्ला 3 को समारोहपूर्वक हुई और उन्हें श्री मुक्तिप्रभसागरजी नाम दिया गया।

पूज्याश्री ज्ञानश्री जी महाराज के स्वर्ग दिवस—चैत्र कृष्णा 10 को सूरत निवासी श्री फतेचन्द पानाचन्द भाई की ओर से मोती-सुविया मन्दिर में बड़ी पूजा पढ़ाई। प्रभावना, रात्रि जागरण आदि सभी उन्हीं की ओर से था। फतेचन्द भाई ने कल्याण भवन में ही चातुर्मास करने का आग्रह हम से किया।

नव्वाणु यात्रा के विधान के अनुसार शशिप्रभाजी तथा अन्य छोटे साध्वी जी की तो लगभग नव्वाणु यात्रा हो चुकी थीं, दूसरी भी करीब पूरी-पूरी होने जा रही थी। पूज्या गुरुवर्या श्री की 108 यात्राएँ पूरी होने जा रही थीं। हमें अत्यधिक

प्रसन्नता थी कि पूज्याश्री का संकल्प पूर्ण हो रहा है। वे प्रतिदिन बहुत ही भक्ति-भाव तथा उत्साहपूर्वक दर्शन करती थीं।

चातुर्मास बिल्कुल ही निकट था। शशिप्रभाजी यद्यपि एक मासक्षमण अपनी जन्मभूमि फलौदी में कर चुकी थीं, परन्तु पुनः गिरिराज की छाया में मास-क्षमण की तीव्र भावना हुई। प्रियदर्शनाजी ने भी मासक्षमण की भावना व्यक्त की। चातुर्मासिक चतुर्दशी के दिन भी प्रतिदिन के समान गिरिराज पर चढ़े। आज अन्तिम दिन था। अन्य दिनों में तो कल पुनः चढ़ेंगे। ऐसी ललक रहती थी, किन्तु आज की बात दूसरी थी। चार मास के लिए दर्शनों का वियोग हो रहा था, अतः भक्ति एवं दर्शन के सुख के साथ वियोग का दुःख भी मिश्रित हो रहा था। सभी ने बड़ी भक्ति के साथ दर्शन किये। गुरुवर्याश्री के साथ दादा के दरबार में आये। पुनः चैत्यवन्दनादि कर श्री शशिप्रभाजी, प्रियदर्शनाजी और तत्त्वदर्शनाजी ने मासक्षमण की भावना से अट्ठम (तेले) के प्रत्याख्यान कर लिए और दादा से चार महीने के लिए विदाई ली। हमारे नेत्र अश्रुपूर्ण थे। वर्षा ने भी हमारे दुःख को समझा और चौधारा आँसू (जलधारा) बरसा कर समवेदना प्रगट की।

'कपूर निवास' से 'कल्याणभवन' पहुँचे, क्योंकि चातुर्मास वहीं करना था।

पालीताणा चातुर्मास (सं० 2033)

अनुयोगाचार्यजी के आदेश से गुरुवर्याश्री ही व्याख्यान फरमाती थीं। मध्याह्न में 'अंजना चरित्र' सुनाती थीं। हम तीनों का मासक्षमण के साथ मौन-जप-ध्यान चल रहा था। पूर्णाहुति पर बालमुनि मणिप्रभसागरजी ने भी अठाई तप की आराधना की। चातुर्मासार्थ आये हुए श्रावक-श्राविकाओं ने पचरंगी तप भी किया। अष्टाह्निका महोत्सव, पूजा-वरघोड़ा, रात्रिभक्ति आदि सभी कार्यक्रम हरिविहार में थे, इसलिए हम सब लोग वहीं आ गये थे। प्रसिद्ध गुडाबालोतान की मंडली बुलाई गई थी, जिससे पूजा, वरघोड़े आदि में चार चांद लग गये थे। वरघोड़े की शोभा दर्शनीय और स्वामीवात्सल्य प्रशसनीय रहा। सभी कार्य सुव्यवस्थित ढंग से सम्पन्न हुए।

चातुर्मास सभी प्रकार से सफल रहा। पठन-पाठन का कार्य भी सुन्दर रहा और फतेचन्दभाई की सेवा प्रशंसनीय रही। हमें गुजरात की पंचतीर्थी की यात्रा करनी थी, अतः चातुर्मास बाद विहार किया। मौन एकादशी की आराधना गिरनार तीर्थ पर की। वहाँ से विहार का मार्गस्थ मांगरोल, वेरावल, आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए चन्द्रप्रभासपाटन (सोमनाथ पाटन) पहुँचे। यहाँ चन्द्रप्रभ भगवान् के विशाल मन्दिर के दर्शन करके मन प्रसन्न हो गया। यहीं इतिहास विख्यात

सोमनाथ का मन्दिर समुद्र किनारे बना हुआ है, जिसको महमूद गजनवी ने बार-बार लूटा और ध्वस्त किया तथा इसका बार-बार निर्माण होता रहा। अब इसे सरकार ने ऐसा भव्य रूप प्रदान किया है कि हजारों पर्यटक देखने आते हैं। यहाँ से 'सन सेट पाइन्ट' भी बड़ा सुन्दर दिखाई देता है।

यहाँ से अजारा पार्श्वनाथ आये जहाँ लाल पत्थर की भगवान् पार्श्वनाथ की बड़ी विशाल प्रतिमा है। भोजनशाला आदि भी व्यवस्थित है। वहाँ से महुआ, दाठा, तलाजा आदि पंचतीर्थी की यात्रा करके शत्रुञ्जयी डेम के पास नूतन मन्दिर के दर्शन करते हुए पालीताणा आये। चूँकि तीर्थराज का प्रभाव ही ऐसा है कि बार-बार यात्रा करने को मन करता है। एक बार पुनः तीर्थाधिराज के दर्शन किये।

इसी बीच सूरत से श्री संघ का विनती पत्र एवं तत्रस्थ विराजित पू. श्री गणाधीश महोदय का आदेश पू. श्री अनुयोगाचार्यजी के पास आया कि 'मेरा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता, अतः चातुर्मास हेतु किसी साध्वीजी को भेजें।' पूज्य गुरुदेव ने पूज्या गुरुवर्याश्री से कहा और उन्होंने प्रियदर्शनाजी, तत्त्वदर्शनाजी तथा सम्यग्दर्शनाजी को सूरत के लिए विहार करवाया। पालीताणा में उसी दिन (चैत्र बदी 5 को) पू. गुरुदेव श्री कांतिसागरजी की निश्रा में दो भ्रातृ युगल—श्री सुयश-प्रभसागरजी व विमलप्रभसागरजी की दीक्षा हुई और दोनों ने श्री अनुयोगाचार्यजी का शिष्यत्व ग्रहण किया। इधर जयपुर विराजित पू. प्र. महोदया विचक्षणश्रीजी म. सा. ने आदेश प्रेषित किया कि आप जैसी विद्वद्वर्या के ज्ञान का लाभ अन्य क्षेत्रों को भी मिलना चाहिये, अतः आगामी चातुर्मास सांचोर या जामनगर करना उचित है। आदेश के साथ ही जामनगर संघ की आग्रहपूर्ण विनती लेकर मुख्य-मुख्य श्रावक आ गये। पूज्या गुरुवर्या ने तत्काल स्वीकृति दे दी।

गुरुवर्याश्री ने ज्येष्ठ मास की अंगारे बरसाने वाली गर्मी में जामनगर की ओर प्रस्थान कर दिया।

जामनगर चातुर्मास (सं० 2034)

यह नगर सौराष्ट्र की सीमा पर है। यहाँ अनेक शिखरबद्ध जिनमन्दिरों में भव्य मोहक प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ऐसी भव्य नगरी में सं. 1992 में पू. प्र. श्री ज्ञानश्रीजी म. सा., उपयोगश्रीजी म. सा. आदि का शानदार चातुर्मास हो चुका था। गुरुवर्याश्री के पधारने से लोगों में अतीत की स्मृतियाँ ताजा हो गईं। बड़ी ही धूमधाम से आपका नगर-प्रवेश हुआ। मन्दिरों के दर्शन कर आपश्री धर्मनाथ मन्दिर से संलग्न उपाश्रय में पधारीं। वहाँ धर्मदेशना रूप सुन्दर गुजराती भाषा में मांगलिक

प्रवचन श्रवण कराया । श्रोता चमत्कृत रह गये कि राजस्थानी साध्वीजी का गुजराती भाषा पर भी पूरा अधिकार है । फिर तो चार महीने तक गुरुवर्याश्री के मुख से गुजराती भाषा में प्रवचन पीयूष की स्रोतस्विनी बहती रही । स्पष्ट है, गुरुवर्याश्री का मारवाड़ी, गुजराती, हिन्दी, प्राकृत व संस्कृत आदि भाषाओं पर पूर्ण अधिकार है ।

चातुर्मास में बसनजी भाई (आप गुरुवर्या की सेवा में रहते थे) ने मासक्षमण किया, बहनों ने भी पंचरंगी, शंखेश्वरजी के अट्ठम आदि अनेक तपस्याएँ कीं । कई बहिनों ने सामायिक-प्रतिक्रमण, प्रकरण, कर्मग्रन्थादि सीखे । चार महीने तक सभी का धर्मोत्साह बना रहा । यद्यपि यहाँ खरतरगच्छ के श्रावकों के घर कम हैं पर जितने भी हैं, उनमें धर्म उत्साह बहुत है ।

तत्रस्थ विराजित अंचलगच्छीय साध्वीजी गुरुवर्याश्री के आगमज्ञान से प्रभावित होकर आचारांग की वाचना लेने आईं । गुरुवर्याश्री ने आचारांग के एक-एक सूत्र का ऐसा सारगर्भित विवेचन किया कि वे दंग रह गयीं । नित्य आने लगीं ।

पुनः जयपुर की ओर

जामनगर से कच्छ समीप ही है, अतः गुरुवर्याश्री के वहाँ जाने के भाव थे । पर जयपुर विराजित पूज्या प्रवर्तिनी महोदया के (पूर्व असातावेदनीय कर्मोदयवश) ब्रेस्ट (छाती) में अचानक ही कैंसर की गाँठ हो गयी । जयपुर से पत्र द्वारा इस विषय के समाचार जानकर चिन्ता हुई तुरन्त जयपुर जाने का निर्णय ले लिया । जामनगर से विहार करके मोरवी, ध्रांगध्रा आदि होते हुए शंखेश्वर आ पहुँचे । वह दिन पौष कृष्णा 10 भगवान पार्श्वनाथ का जन्म दिवस था ।

सूरत से प्रियदर्शनाजी आदि साध्वीजी भी आ गयीं । उल्लासपूर्वक प्रभु की स्तवना, भक्ति आदि करते हुए 3-4 दिन तक वहीं रहे । वहाँ से सिद्धपुर, पालनपुर आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए माउन्ट आबू पहुँचे ।

माउन्ट आबू : माउन्ट आबू के शिखरबद्ध मन्दिर विश्वविख्यात हैं । संगमरमर पर बड़ी अनुपम कोरनी (कारीगरी) की गयी है । दौरानी-जिठानी के आले अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु सुन्दर कोरनी से युक्त हैं । हमने सभी मन्दिरों के दर्शन किये । सनसेट पाइन्ट, नक्की झील आदि कई दर्शनीय स्थान हैं, जिन्हें देखने हजारों पर्यटक आते हैं ।

वहाँ से और आगे अचलगढ़ गये, जहाँ बड़ी विशाल व भव्य स्वर्णप्रतिमाएँ चौमुखजी के रूप में हैं । वहीं योगिराज श्री शान्तिगुरुदेव का स्थान है । वहाँ से

पुनः माउण्ट आबू आकर हम लोग अणादरा (जो योगिराज की जन्ममूमि है) की घाटी से, जो बड़ा ही पथरीला मार्ग है, नीचे उतरे। वहाँ से सिरोही, जाबाल आदि होते हुए वसन्त पंचमी (योगिराज का जन्म-दिवस) के दिन मांडोली आये। इस दिन वहाँ बड़ा भारी मेला लगता है, स्वामीवात्सल्य होता है, पूजा पढ़ाई जाती है। यहीं पर 4-5 व्यक्ति सिवाणा पधारने की विनती लेकर आये। समाचार दिया— 'पूज्या श्री चम्पाश्रीजी म. सा. यहीं ठाणापति विराजित हैं। उन्हीं की निश्रा में और पूज्यश्री तीर्थसागरजी म.सा. व कैलाशसागरजी म.सा. के हाथों 8 साध्वीजी की बड़ी दीक्षा का आयोजन है, सूर्यप्रभाजी ने भी मासक्षमण करने का निश्चय किया है, समुदायाध्यक्षा का भी यही आदेश है; अतः शीघ्र पधारें।'

हमको भी उधर जाना था, अतः आश्वस्त करके विदा कर दिया।

जालौर : मांडोली से विहार कर जालौर तीर्थ पहुँचे। वहाँ स्वर्णगिरि पर्वत पर 5 विशाल मंदिर हैं। हम नंदीश्वर द्वीप की धर्मशाला में ठहरे। दूसरे दिन ऊपर चढ़े, सभी मन्दिरों के दर्शन किये, नीचे आये। दो दिन रुके। सिवाणा की ओर प्रस्थान किया। विशनगढ़, बालवाड़ा, रमणिया, मोकलसर होते हुए 5-6 दिन में सिवाणा पहुँच गये।

सिवाणा : सिवाणा में निर्णीत दिन बड़ी धूमधाम से बड़ी दीक्षाएँ हुईं। दीक्षार्थिनियों के परिवारीजन तथा अन्य भी बहुत से लोग आये। अभी 15 दिन के दशवैकालिक योग अवशिष्ट थे। अन्य कई साध्वीजी के 15 दिन के योग बाकी थे। अतः शशिप्रभाजी, प्रियदर्शनाजी, जयश्रीजी व सम्यग्दर्शनाजी ने दशवैकालिक योग इन लोगों के साथ ही प्रारम्भ कर दिये। बड़ी शान्ति से योगोद्वहन पूर्ण हुए। लगभग सवा महीने हम लोग यहाँ रुके।

वहाँ से पूज्याश्री आदि सर्व गौड़वाड़ की पंचतीर्थी— नाडोल, नाडलाई, राणकपुर, वरकाणा, मूछाला महावीरजी आदि की यात्रा करते हुए पाली पहुँचे। पाली विराजित पूज्याश्री अनुभवश्रीजी म.सा. के दर्शन-वन्दन कर एक दिन विश्राम किया। तदुपरान्त सोजत की ओर विहार किया। मार्ग में बागावास के स्कूल में रात्रि विश्राम किया। यह स्थान सोजत से 13 कि.मी. दूर है।

अयाचित पीड़ा-योग :

प्रातः कुछ अंधेरा था। गुरुवर्याश्री स्थंडिल के लिए जैसे ही गेट से बाहर पधारीं कि लकड़ी आदि बीच में आ जाने से गिर गयीं। घुटनों में काफी चोट आई।

साथ वाले साध्वीजी ने दवा आदि लगाने का आग्रह किया पर आप स्थण्डिल चल ही गईं। लौट आने पर देखा तो घुटने व जाँघें छिल गये थे। दवा लगाई, कुछ राहत मिली तो चलने को प्रस्तुत हो गईं। शशिप्रभाजी ने बहुत मना किया, पर आप तो हिम्मत की धनी हैं, उन्हें विवश हो चुप रहना पड़ा। विहार किया। केवल दो साध्वी—श्री शशिप्रभाजी व अन्य एक साध्वी को अपने साथ रखा, बाकी सभी को सोजत विहार करा दिया। आप धीरे-धीरे चलती हुई 4-5 घण्टे में 4-5 किलो-मीटर चलकर एक प्याऊ पर रुकीं। किन्हीं कारवालों ने आपको देखकर कार रोकी। आपकी पीड़ा को समझकर एक ट्यूब दी व पहिए का ग्रीस लगाने को दिया। इधर जैसे ही साध्वीजी सोजत पहुँची तो वहाँ श्रावकों को जानकारी हुई। वे लोग तुरन्त एक लेडी डॉक्टर को मरहम-पट्टी के साथ लेकर उसी प्याऊ पर पहुँचे। पट्टी वगैरह तथा आहार-पानी की व्यवस्था की। फिर भी सूजन तथा दर्द में कोई राहत न मिली। बहुत धीरे-धीरे चलकर तीन दिन में सोजत पहुँचे। वहाँ लगभग पन्द्रह दिन रुके। पाँव बिल्कुल ठीक हो जाने पर वहाँ से ब्यावर व अजमेर पधारे। वहाँ से पूज्याश्री व प्रियदर्शनाजी, तत्त्वदर्शनाजी आदि सबने पूज्या जैन कोकिला जी के दर्शनार्थ जयपुर की ओर प्रस्थान किया।

जयपुर आगमन :

जयपुर में प्रवर्तिनीश्रीजी के दर्शन कर हम लोगों ने स्वयं को कृतकृत्य माना। पूज्या गुरुवर्याश्री ने जैन कोकिलाजी से उस गाँठ के विषय में चर्चा की और देखा भी। बड़े बेर जितनी मोटी गाँठ थी। गुरुवर्याश्री ने जैन कोकिलाजी को कर-बद्ध ऑपरेशन करवाने की प्रार्थना की, तो प्रवर्तिनीश्री ने स्नेहसिक्त किन्तु दृढ़ शब्दों मे कहा—'सज्जनश्री सा. ! मैं आपकी बात जरूर मानूँ, पर मुझे उसमें सार तो नजर आये। मैंने देखा भी है और सुना भी है, जिसने भी आपरेशन करवाया है और सेक लिया है, उसकी बीमारी बढ़ी है, कम नहीं हुई है। फिर यह तो कर्मों का कर्जा है, चुकाना ही पड़ेगा। इसे अभी चुकाना ही अच्छा है। इसलिए आप ऑपरेशन का आग्रह न करें। मैं किसी भी प्रकार का उपचार नहीं करवाऊँगी। मेरा यही संकल्प है।'

इस संकल्प के आगे कुछ भी कहने को न रहा। सभी विवश हो गये।

चातुर्मास निकट आ रहा था। कई क्षेत्रों से विनतियाँ आईं। अतः टोंक क्षेत्र में श्री मणिप्रभाजी, श्री शशिप्रभाजी, सम्यग्दर्शनाजी व विश्वप्रज्ञाश्रीजी—इन चारों को प्रस्थान करवाया। मालपुरा में—श्री मुक्तिप्रभाजी म., कमलाश्रीजी व दिव्य-

दर्शनाजी आदि तीन, तथा पू. मनोहरश्रीजी म. के साथ जयश्रीजी आदि अलवर तथा दिल्ली में श्री निरंजनाश्रीजी, काव्यप्रभाजी आदि चार। इस प्रकार निकट के क्षेत्रों में साध्वीजी को चातुर्मासार्थ प्रस्थान करवाये।

प्रवर्तिनी महोदया जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी म. की निश्रा में जयपुर चातुर्मास (सं० 2035)

पू. प्र. जैन कोकिलाजी ने पू. गुरुवर्याश्री को अपने पास ही रखा। साथ ही प्रियदर्शनाजी व तत्त्वदर्शनाजी को भी आपश्री की निश्रा में चातुर्मास का सौभाग्य मिला। इस वर्ष पू. श्री जयानन्दजी म.सा. का चातुर्मास भी जयपुर ही था। आपश्री ने पू. गुरुवर्याश्री से आचारांग सूत्र का वाचन किया था। मध्यान्ह में श्रीमद् देवचन्द के 'आगमसार' पर स्वाध्याय, प्रश्नोत्तर आदि चलते थे, जिसमें सर्व साध्वीजी के अतिरिक्त तत्त्वरसिक श्रावक-श्राविका भी भाग लेते थे। श्रीमद् देवचन्द्र चौबीसी के स्तवनों का अर्थ पू. प्रवर्तिनी महोदया बड़े सुन्दर रूप में समझाती थीं। स्वाध्याय और तत्त्वचर्चा करते हुए जयपुर का चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

चातुर्मास के उपरान्त पू. प्रवर्तिनीजी दादाबाड़ी पधार गयीं। टोंक चातुर्मास करके पू. मणिप्रभाजी म. आदि और मालपुरा चातुर्मास करके कमलाश्रीजी म. आदि गुरुवर्या के चरणों में आ पहुँची। पू. मनोहरश्री म. सा. आदि अलवर चातुर्मास करके जयपुर आ पहुँचीं। सुरंजनाश्रीजी म. सा. के साथ प्रियदर्शनाजी ब सम्यग्यदर्शनाजी को प्रयाग सम्मेलन की परीक्षा हेतु अजमेर प्रस्थान करवाया। पू. जयानन्दजी म. सा. दादाबाड़ी की प्रतिष्ठा हेतु अलवर पधार गये।

चैत्रमास में श्री शशिप्रभाजी, दिव्यदर्शनाजी व तत्वदर्शनाजी ने वर्षीतप प्रारम्भ किया, साथ ही कई गृहस्थ बहनों ने भी तप चालू किया।

पूज्या श्री शीलवतीजी म. सा का स्वाथ्य उपचार के बाद भी गिरता ही जा रहा था। पू. प्रवर्तिनीजी तो दादाबाड़ी विराजित थीं; किन्तु शहर में विराजित पू. शीतलश्रीजी म. सा. के अस्वस्थ होने के कारण पू. गुरुवर्याश्री कभी दादाबाड़ी तो कभी शहर में आती-जाती रहती थीं। लगभग 50 साध्वियाँ थीं, उनमें से 10-12 दादाबाड़ी में तथा बाकी शहर में रहती थीं।

उत्तराधिकार पत्र

पू. प्रवर्तिनीजी ने अपने गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर पू. गुरुवर्या से पुण्य-मंडल का कार्यभार संभालने को कहा। उत्तराधिकार सौंपा। जिस पर गुरुवर्या ने यथायोग्य शासनसेवा का वचन दिया।

उत्तराधिकार - पत्र

ॐ नमः

विदुषी सुयोग्या सिद्धान्ता विशारद श्री प्रमिति सज्जन श्री जी सर्व

विचक्षण श्री का सादर सेवन ~~सुखशाता~~ सुखसाता अनुवंदना वंदना

मेरे शरीर में व्याधि है मैं शांति से समाधि स्वाध्याय पूर्वक संथारा रूप में

~~आदर्श~~ हूं आप सभी का संचालन का कार्य आपको अच्छी सेवा रहे यह आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप अच्छी मुझे अपने विचारों में सफल होने के लिये आशीर्वाद स्वीकृति देंगे पूज्य समुदाय को सुख उन्नत बनाने का प्रयत्न करते हैं संयम स्वाध्याय का ध्यान आपको मंजिल पहुंचा रहे यही मंगल

प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्री जी महाराज ने शारीरिक अस्वस्थता की स्थिति में जीवन की साध्य बेला में पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज को श्रमणी समुदाय की समस्त जिम्मेदारी सौपकर जो उत्तराधिकार पत्र लिखा, उसकी प्रतिलिपि.

आषाढ़ महीने में पू. अनुयोगाचार्यजी पू. प्रवर्तिनी महोदया को दर्शन देने पधारे, सुखसाता की पृच्छा की, दो दिन दादाबाड़ी में रुके और फिर बाड़मेर के लिए प्रस्थान किया। पू. श्री शीतलश्रीजी म. सा. का स्वास्थ्य गम्भीर हो गया। उन्हें त्याग-प्रत्याख्यान आदि सभी करवा दिये। पाठ-सज्झाय-नवकार मंत्र की धुन सुनते हुए आषाढ़ बदी 10 को 2 बजे उनका नश्वर शरीर छूट गया।

यद्यपि पूज्या प्रवर्तिनी का स्वास्थ्य गम्भीर होता जा रहा था, किन्तु अजमेर वाले चातुर्मास के लिए अड़े हुए थे। अतः इच्छा न होते हुए भी प्रवर्तिनीजी ने गुरुवर्या को अजमेर चातुर्मास की आज्ञा दे दी। गुरुआज्ञा को शिरोधार्य कर पू. गुरुवर्याजी ने अपने साध्वीमंडल के साथ अजमेर की ओर विहार किया।

अजमेर चातुर्मास (सं. 2036)

अजमेर पहुँचे। बड़े उत्साहपूर्वक दादा मेला मनाया गया। गुरुवर्या ने श्रद्धाञ्जलि रूप एक गीतिका बनाई, जिसे हम सभी ने पूजा में गाई। दूसरे दिन धूमधाम से नगर प्रवेश हुआ। प्रतिदिन बड़े उपाश्रय में व्याख्यान होता। उपस्थिति अच्छी होती थी। मध्याह्न में चौपी प्रियदर्शनाजी बांचती थीं। श्राविकाओं ने उत्साहपूर्वक पंचरंगी प्रारम्भ की। सम्यग्दर्शनाश्रीजी ने भी पंचरंगी में सम्मिलित होने के लिए उपवास प्रारम्भ किये। प्रारम्भ में भाव तो पचोले का ही था, किन्तु शासनदेव की कृपा से मासक्षमण ही हो गया। पर्वाधिराज पर्युषण की पूर्णाहुति पर ही मासक्षमण की पूर्णाहुति थी। पूर्णाहुति पर अठाई महोत्सव हुआ। पूजा पढ़ाने के लिए यतिवर्य श्री रूपचन्दजी एवं जयपुर से नागौरीजी पधारे। शंखेश्वर अट्ठम (तेले) काफी हुए। पूजा-भक्ति, आंगी प्रभावना, स्वामीवात्सल्य का भरपूर लाभ अजमेर के खरतरगच्छ संघ ने दिल खोलकर लिया। तप-दान-पूजा का रंग बरसने लगा।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के पू० श्री नानालालजी म०सा० का चातुर्मास भी अजमेर ही था। वे स्वयं ही एक बार सुख-साता पूछने पधारे। इससे दोनों सम्प्रदायों में स्नेह की वृद्धि हुई।

इधर जयपुर से समाचार मिले कि पू. प्रवर्तिनी विचक्षणश्रीजी के कैंसर की गाँठ में दर्द बहुत बढ़ गया है और खून आने लगा है। विचित्रता यह थी कि इस बीमारी में अन्य लोगों के तो दुर्गन्धयुक्त रक्त-पीव रिसता है किन्तु पूज्या प्रवर्तिनीजी के तो एकदम शुद्ध रक्त रिसता था। उधर अनुयोगाचार्यजी की निश्रा में बाड़मेर से पालीताणा का छःरी पालित संघ निकल रहा था, जिसमें गुरुवर्याश्री को सम्मिलित

होने का अनुयोगाचार्यजी का आदेश था। दुविधापूर्ण स्थिति हो गयी। इधर पूज्य प्रवर्तिनीजी के स्वास्थ्य की चिन्ता, उधर अनुयोगाचार्य जी का आदेश। क्या किया जाय ? गुरुवर्या की इच्छा थी कि पहले जयपुर जाकर पू. प्रवर्तिनीजी की दशा स्वयं आँखों से देखूँ, इसके बाद अनुयोगाचार्यजी के आदेश का पालन करूं। लेकिन शारीरिक स्थिति ऐसा उग्रविहार करने की नहीं थी। आखिर शशिप्रभाजी ने कहा—आप मुझे आदेश फरमायें ताकि मैं स्वयं जयपुर जाकर पू प्रवर्तिनीजी की सारी स्थिति देख आऊं। पूज्याश्री ने आदेश फरमाया और शशिप्रभाजी व दिव्यदर्शनाश्री जी ने जयपुर के लिए विहार किया। उस समय जयपुर में विचक्षण भवन का उद्घाटन व हेमलताजी का दीक्षा समारोह था। दोनों में ही भाग लिया तथा 5-6 दिन रुककर पुनः अजमेर लौट आयीं। वहाँ से संघ में सम्मिलित होने के लिए 6 साध्वीजी ने विहार किया।

साध्वी मण्डल ब्यावर से सोजत होकर पाली प्रस्थान कर रहा था कि बीच में ही गुरुवर्याश्री के पांवों में दर्द होने लगा, मुश्किल से पाली पहुँच सके। तीन-चार दिन रुककर मालिश करवाई, दर्द कुछ कम हुआ। विहार कर दिया। एक ही मंजिल पहुँचे कि दर्द फिर शुरू हो गया, जैसे-तैसे गुन्दोज पहुँचे। दर्द बहुत बढ़ गया, घुटनों में सूजन आ गई, उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया। गुन्दोज में ही स्थिरता करनी पड़ी। संघ के लिये शशिप्रभाजी और सम्यग्दर्शनाजी को विहार करा दिया, वे लोग गांधव ग्राम में जाकर संघ में सम्मिलित हो गयीं।

आहोर से सिवाणा :

पूज्यवर्याश्री आदि कुछ दिन गुन्दोज में रहे। यहाँ जिनमन्दिर भी हैं और श्रावकों के 15-20 घर भी। सभी अच्छे श्रद्धावान् हैं। यहाँ रहकर आयुर्वेदिक उपचार कराया, मेथी आदि अधिक मात्रा में ली, दर्द बिल्कुल समाप्त प्रायः हो गया तब विहार करके वादनवाड़ी, अदूपुरा होते हुए आहोर आये। कष्ट और पीड़ा के क्षणों में भी गुरुवर्या में अपार सहनशीलता और तीर्थबन्दना की उमंग देखकर लगता है असातावेदनीय भी उनके सत्संकल्पों के समक्ष हार-सा गया।

होली के दिन निकट थे, अतः संघ के आग्रह से 8-9 दिन रुके। व्याख्यानों से प्रभावित होकर संघ ने चातुर्मास की विनती की। सिवाणा से 5-7 व्यक्ति चातुर्मास की विनती लेकर आ गये, बहुत आग्रह किया। दिव्यदर्शनाजी व तत्व-दर्शनाजी ने वर्षीतप का पारणा सिवाणा करने की भावना व्यक्त की। आखिर चातुर्मास की विनती स्वीकार हुई। आहोर से सिवाणा की ओर चैत्र कृष्ण पक्ष में हम लोगों ने विहार कर दिया।

तखतगढ़, सांडेराव आदि छोटे-छोटे नगरों में विशाल जिन-मन्दिरों के दर्शन करते हुए मोकलसर आये संघ के आग्रह से 8-10 दिन रुके। फिर विहार करके सिवाणा पहुँचे जहाँ दोनों साध्वीजी के वर्षीतप का पारणा सानन्द सम्पन्न हुआ।

जैन कोकिला पू० प्रवर्तिनीजी का देवलोक गमन

प्रतिदिन के समान वैशाख शुक्ला 5 को भी व्याख्यान चल रहा था। इसी बीच जयपुर से तार आया पू० प्रवर्तिनीजी श्री विचक्षणश्रीजी के स्वर्गवास का समाचार लेकर। सुनकर बहुत दुःख हुआ। व्याख्यान-सभा शोक-सभा बन गयी। जैनजगत की एक दिव्य तारिका का अवसान! सर्वत्र ही शोक छा गया। शोक आखिर मोह का ही एक रूप है। मोह निवृत्ति वीतराग दर्शन से ही संभव है। अतः हमने सभी लोगों के साथ देव-वन्दन किये, मन्दिर गये। वीतराग चरणों में दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धा व शोक निवृत्ति की प्रार्थना की।

दो दिन पश्चात् गुणानुवाद सभा का आयोजन किया गया। पू० प्रवर्तिनीजी के आदर्श जीवन और दिव्यगुणों पर प्रकाश डाला गया।

सिवाणा चातुर्मास (सं० 2037)

कुछ दिन के लिए हम लोग मिठोड़ावास-उम्मेदपुरा (सिवाणा का एक उपनगर) चले गये। वहाँ खरतरगच्छ के 240 घर हैं। 30-40 लड़कियाँ धार्मिक अध्ययन करने हमारे पास आती थीं। शशिप्रभाजी म० आदि जो संघ में गये थे, वे भी पालीताणा से उग्रविहार कर ज्येष्ठ सुदी में ही सिवाणा वापस आ गयीं। मिठोड़ावास वालों का भी चातुर्मास के लिए अत्यधिक आग्रह हुआ, अतः शशि-प्रभाजी और सम्यग्दर्शनाजी को मिठोड़ावास का चातुर्मास करवाया गया तथा पूज्या गुरुवर्याश्री एवं प्रियदर्शनाजी व दिव्यदर्शनाजी ने गांव में चातुर्मास किया। व्याख्यान दोनों ही जगह होते थे। मिठोड़ावास में शशिप्रभाजी व्याख्यान फरमातीं और गाँव में गुरुवर्याश्री। गुरुवर्याश्री के व्याख्यानों से कुमारी नीता (नारंगी) ललवाणी के मानस में वैराग्य भावना उद्बुद्ध हो गई।

शशिप्रभाजी म० के व्याख्यानों में मानसपरिवर्तन करने की अद्भुत शक्ति थी। उन्होंने मिठोड़ावास के लोगों के मन में पडी हुई तड़ों (भेद रेखाओं) को दूर कर दिया। मनोमालिन्य समाप्त हो गया। जो काम बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान मुनि भी नहीं कर पाये, वह आपने कर दिखाया। पूज्या गुरुवर्या के आशीर्वाद से आपकी वाणी में भी एक चमत्कार पैदा हो गया था।

आपश्री के व्याख्यानों से 10 वर्षीया कुमारी नारंगी उर्फ निशा तथा लक्ष्मी मंसाली—दो लड़कियों के मानस में शुभ प्रेरणा और प्रवचन के अमृत सिंचन से संस्कारों के बीज अंकुरित हुए। उन पर वैराग्य, समत्व व निर्वृत्ति के सुमन खिलने लगे।

दोनों जगह (गाँव और मिठोड़ावास) त्याग-तप-प्रत्याख्यान आदि खूब हुए। कई बहिनों ने 15-16-11 के तप किये। तपस्वी बहिनों का बहुमान किया गया। पूजा-प्रभावना-स्वामिवात्सल्य का ठाठ रहा। अष्टम शताब्दी मनाने का निर्णय भी इसी चातुर्मास में हुआ। मन्दिर बनवाने का निर्णय व गुरुदेव की मूर्ति बनाने का आदेश दे दिया गया।

अजमेर निवासी श्री मानमलजी सुराणा की पुत्री मंजु सुराणा के मानस में वैराग्य बीज 4 वर्ष पहले अंकुरित हो चुका था, पर घरवालों ने स्वीकृति नहीं दी थी। किन्तु सिवाणा के चातुर्मास में श्री मानमलजी सा. अपनी सुपुत्री को लेकर सिवाणा आये और शिक्षा हेतु पास रखने की भावना तथा दीक्षा दिलाने के लिए अजमेर पधारने की विनती की, जो गुरुवर्या ने स्वीकार कर ली। साथ ही जीवाणा निवासी स्व. हस्तीमलजी बागरेचा की सुपुत्री लीलाकुमारी, जो वैरागिन के रूप में दो वर्ष से हमारे साथ ही रह रही थी, उसके परिवार वालों ने भी दीक्षा की स्वीकृति प्रदान कर दी। इस प्रकार सिवाणा चातुर्मास सभी प्रकार से सफल रहा।

पालीताना चातुर्मास पूर्णकर पू. गुरुदेव कांतिसागरजी म. सा. धोलका में नूतन दादाबाड़ी की प्रतिष्ठा कराने हेतु पधारे थे। वहीं वैराग्यवती लीला बागरेचा अपने परिवारीजनों के साथ दीक्षा के अवसर पर पधारने की विनती करने गई। गुरुदेव ने नाकोड़ा में दीक्षा कराने का सुझाव दिया, जिसे परिवार वालों ने स्वीकार कर लिया। पौष शुक्ला 10 का दिन दीक्षा दिवस निर्णीत किया गया। तद्नुसार गुरुदेव नाकोड़ा पधारे।

नाकोड़ा में दीक्षा समारोह

हम लोग सिवाणा से विहार करके पू. श्री चम्पाश्रीजी म. सा. की सेवा में बालोतरा पहुँचे। 15 दिन रुके। पार्श्वनाथ जन्म कल्याणक (पौष बदी 10) को नाकोड़ा पहुँच गये। इसी अवसर पर छत्तीसगढ़ रत्नशिरोमणि पू. मनोहर श्रीजी म.सा. 17 ठाणा व जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके पू. मणिप्रभाश्रीजी आदि 3 ठाणा पौष बदी 10 के मेले पर नाकोड़ा पधार गये। सभी ने उत्साहपूर्वक मेला मनाया। जीवाणा श्रीसंघ के आग्रह से गुरुवर्याश्री ने शशिप्रभाश्रीजी आदि को जीवाणा

विहार कराया व पू. मणिप्रभाजी आदि कुछ दिन के लिए सिवाणा, मोकलसर आदि पधार गये, क्योंकि अभी दीक्षा में 15 दिन बाकी थे।

कुमारी लीला बागरेचा की दीक्षा

कुमारी लीला की दीक्षा पर शशिप्रभाजी म., पू. श्रीमणिप्रभाजी म. आदि पुनः नाकोड़ा पधार गये। पू. मनोहरश्रीजी म. सा. और हम सब लगभग 30-35 ठाणा थे। पू. गुरुदेव की निश्रा में पौष शुक्ला 10 को दीक्षा सम्पन्न हुई। कुमारी लीला को दीक्षोपरान्त नाम दिया गया—शुभदर्शनाजी और उनको पूज्या सज्जनश्रीजी की शिष्या घोषित किया गया।

पू. गुरुदेव ब्यावर की ओर विहार कर गये, क्योंकि उनका दिल्ली चातुर्मास निश्चित हो चुका था।

कुमारी मंजु सुराणा की दीक्षा

मंजु सुराणा की दीक्षा हेतु हम लोगों ने अजमेर की ओर विहार किया तथा पू. मणिप्रभाजी के साथ तीनों बहनों (खड्गपुर वाली) ने जैसेलमेर की ओर कदम बढ़ाये। अजमेर वालों की विनती स्वीकार कर दीक्षा करवाने हेतु पू. गुरुदेव श्री कैलाशसागरजी म. सा. पधारने वाले थे। हम लोग दीक्षा से 10-15 दिन पहले ही अजमेर पहुँच गये। पू. कैलाशसागरजी म. सा. नियत तिथि पर पहुँचे। पूज्य विजयेन्द्रश्रीजी म. सा. पहले से ही विराजित थे। तपागच्छ के साधु महाराज भी विराजित थे। जयपुर से गुरुवर्या जी की गुरुबहिन जिनेन्द्रश्रीजी म. सा. व जयश्रीजी म. सा. भी पधार गयी थीं। वैशाख कृष्णा 6, सं. 2038 को सुभाष उद्यान में कुमारी मंजु की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। दीक्षोपरान्त नाम रखा गया–मुदित-प्रज्ञाश्री। वे भी गुरुवर्या श्री की शिष्या घोषित हुईं। इनकी बड़ी दीक्षा वैशाख शुक्ला 10 को सम्पन्न हुई।

शशिप्रभाश्रीजी के द्विवार्षिक तप का पारणा अक्षय तृतीया के दिन कोठी के मन्दिर में हुआ। यहाँ मूलनायक श्री ऋषभदेव भगवान हैं। संघ ने सिद्धचक्र, महा-पूजन सहित अष्टान्हिका उत्सव किया।

ब्यावर में हालवालों के नवनिर्मित मन्दिर की प्रतिष्ठा ज्येष्ठ शुक्ला 10 को पू. कैलाशसागरजी म. सा. की निश्रा में हो रही थी। हमें भी आमन्त्रित किया गया, अतः सम्मलित हुए। सानन्द धूम-धाम से प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

चातुर्मास के लिये ब्यावर संघ की विनती स्वीकार कर ली गयी, पर जयपुर वालों का भी अत्यधिक आग्रह था, अतः प्रियदर्शनाजी आदि ठाणा 5 को जयपुर विहार करवा दिया और गुरुवर्याश्री शशिप्रभाश्री आदि ठाणा 6 ब्यावर में ही विराजे।

ब्यावर चातुर्मास (सं. 2038)

ब्यावर चातुर्मास में मन्दिर के परिसर में बनी धर्मशाला में व्याख्यान गुरुवर्याजी ही फरमाती थीं। यहाँ तप-नियम-त्याग-प्रत्याख्यान आदि खूब हुए।

दिल्ली चातुर्मास पूर्ण कर पूज्य गुरुदेव अनुयोगाचार्य जी ब्यावर पधारे। अजमेर से प्रधान सा आदि तथा जयपुर से हम लोग भी ब्यावर पहुँच गये। पू. गुरुदेव को नागेश्वर दादाबाड़ी की प्रतिष्ठा कराने जाना था। अतः सिर्फ एक दिन रुककर नागेश्वर की ओर प्रस्थान कर दिया तथा हम लोगों ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया।

नागेश्वर में अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ की मीटिंग में पू. श्री उदयसागरजी म. सा. व पू. कांतिसागरजी म. सा. को आचार्य पद पर तथा पूज्या गुरुवर्याजी को प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित करने का निर्णय लिया गया तथा पद-समारोह जयपुर में करने का निश्चय किया गया। जयपुर संघ तथा अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ का गुरुवर्याश्री से अत्यधिक आग्रह था कि पदोत्सव उत्सव पर जयपुर पधारें, पर शारीरिक अस्वस्थता के कारण नहीं पधार सकीं, अपने प्रतिनिधि के रूप में शशिप्रभाजी म. को जयपुर भेजा। उधर अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ ने गुरुवर्याश्री को जोधपुर में ही ठाठ से पद-प्रदान करने का निर्णय लिया।

जयपुर में आचार्य पद समारोह

आषाढ़ कृष्णा 6, सं. 2039 को जयपुर में बड़े ही समारोहपूर्वक पू. उदयसागरजी म. सा. तथा पू. कान्तिसागरजी म. सा. को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

पू. उदयसागरजी म. सा. का चतुर्मास तो जयपुर में था अतः वे वहीं विराजे। किन्तु पू. कान्तिसागरजी म. सा. ने अपने शिष्य-मंडल के साथ जोधपुर की ओर विहार किया। शशिप्रभाजी ने भी जोधपुर की ओर प्रस्थान किया।

जोधपुर चातुर्मास (सं. 2039)

उग्र विहार करते हुए सभी रातानाड़ा जोधपुर पधारे। जोधपुर संघ ने रातानाड़ा से जोधपुर शहर तक विराट जुलूस के साथ धूम-धाम से आप सबका नगर प्रवेश कराया।

चातुर्मास में न्याति नौहरे में व्याख्यान पूज्य आचार्यश्री फरमाते थे। महामनीषी पूज्य प्रवर मणिप्रभसागरजी म. सा. पूज्या गुरुवर्याजी से आचाराँग की वाचना लेते थे और अन्य भी कई प्रकार की शास्त्रचर्चाएँ करते थे। गुरुवर्याजी मधुर ओजस्वी वाणी में 'श्रीचन्द केवली रास' फरमाती थीं।

श्री मुदितप्रज्ञाश्रीजी ने इस चातुर्मास में मासक्षमण तप की आराधना की।

संयमी जीवन में प्रवेश के समय जो आध्यात्मिक लक्ष्य गुरुवर्याश्री ने अपने लिए निर्धारित किया था, जो संकल्प संजोया था उसे उसी दृढ़ता और उत्साह के साथ आपने पूरा किया। आपकी गौरवपूर्ण संयम यात्रा न केवल आपके जीवन का यशस्वी गौरव गान है अपितु सम्पूर्ण जैन समाज का मार्ग प्रशस्त करने वाला महान् अभियान है। देश के कौने-कौने में घूमकर अनेकानेक पावन तीर्थों की यात्रा कर आपने यह सिद्ध कर दिया है कि संघ को आपकी देन किसी महान् आचार्य की देन से कम नहीं है। नारी समाज को जो आत्म-विश्वास आपके सान्निध्य-सम्पर्क से मिला वह भी अनुपमेय था।

श्रमणी शिरोमणी का दिव्य रूप

आर्यारत्न प्रवर्तिनी पूज्या श्री सज्जन श्री जी म.सा. एक विदुषी साधिका, अद्भुत प्रभामण्डल से युक्त विशिष्ट गुणों से मण्डित, आकर्षक व्यक्तित्व की धनी थीं। जैसी सरल प्रकृति उन्होंने पायी थी, प्रकृति का वैसा ही अनुकूल सहयोग उनको जीवन में प्रतिपल मिलता रहा था। कहा भी है—पुण्यवानों के पग-पग निधान होते हैं। आपको भी जीवन के हर चरण पर सफलता मिलती थी। एक सुदीर्घ एवं उपलब्धियों भरी संयम-यात्रा को यदि सम्पन्नता के उपरान्त तथा पूज्या प्रवर्तिनी जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी के स्वर्गगमन के पश्चात् श्री प्रवर्तिनी पद का भार अब आपको सौंपने की विधिवत् तैयारी होने लगी।

जोधपुर में सं. 2039 का चातुर्मास चल रहा था। इस चातुर्मास के प्रारम्भ से ही प्रवर्तिनी पद समारोह की तैयारियाँ शुरू हो गयी थीं। समारोह की सम्पूर्ण व्यवस्था नीमाज की हवेली में थी। अध्यक्षता तत्कालीन न्यायाधीश श्रीमान गुमानमलजी लोढा ने की। आचार्य प्रवर श्रद्धेय गुरुदेव ने पू. गुरुवर्याश्री के प्रवर्तिनी पद की क्रिया बड़े सुव्यवस्थित ढंग से करवाई। पू. गुरुदेव ने प्रवर्तिनी पद से सम्बन्धित अधिकारों, कर्तव्यों और पद की गरिमा प्रकट करते हुए सारगर्भित विवेचन किया और शुभकामना प्रकट की कि प्रवर्तिनीजी इस पद की गरिमा बढ़ाती हुई चिरकाल तक जिनशासन की सेवा करती रहेंगी।

इसी अवसर पर गुरुवर्याश्री द्वारा अनूदित 'कल्पसूत्र' का विमोचन श्री लोढाजी के करकमलों से हुआ और ग्रन्थ पू. गुरुवर्याश्री के पाणिपद्मों में अर्पित किया गया। गुरुवर्याश्री के संसारपक्षीय भ्राता श्रीमान केसरीचन्दजी लूणिया और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रेखाजी ने पूज्या गुरुवर्या को कम्बली ओढ़ाकर सम्मानित किया, तत्पश्चात अन्य लोगों ने भी यथाशक्ति कम्बली ओढ़ाई।

समारोह हर्षोत्साहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

आचार्यश्री अपने शिष्यमंडल सहित नाकोड़ाजी की ओर विहार कर गये। हम लोगों ने पू. धर्मश्रीजी म. सा. व रतिश्रीजी म. सा. के अत्यधिक आग्रह से फलौदी की ओर विहार किया। कारण यह था कि पूज्यवर्याओं के परिवारीजनों ने महापूजन सहित अष्टान्हिका महोत्सव तथा स्वामिवात्सल्य का आयोजन किया था। यथासमय हम यहाँ पहुँचे। सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए। हम लोग एक माह तक वहाँ रुके।

दादा गुरुदेव जिनकुशल की सप्तम शताब्दी : सिवाणा

सिवाणा में ही दादा गुरुदेवश्री जिनकुशलसूरि का सप्तम जन्म शताब्दी समारोह मनाने का निर्णय हो चुका था। साथ ही अंजनशलाका सहित प्रभु गुरुदेव का प्रतिष्ठा समारोह भी विराट आयोजन के साथ 20 मई '83 को मनाना निश्चित किया जा चुका था। इस शुभ अवसर पर पू. श्री चम्पाश्रीजी म. सा. का शतायु अभिनन्दन तथा 6 कुमारी बालिकाओं का दीक्षा समारोह भी था।

इन बालिकाओं में दो बालिकाएँ (कुमारी नीता ललवानी व निशा छाजेड़) पिछले डेढ़-दो साल से पूज्या गुरुवर्याश्री की निश्रा में रहकर धार्मिक अध्ययन कर रही थीं, उनके परिजनों ने दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी थी। वैरागिनों के परिजनों तथा सिवाणा संघ की इच्छानुसार खरतरगच्छ के सभी साधु-साध्वियों को इस शुभ अवसर पर सम्मिलित होने को आमंत्रित किया गया। हम भी आमंत्रित थे। प्रथम फाल्गुन शुक्ला में हमने फलौदी से विहार किया और क्षेत्रावा के प्राचीन मन्दिर के दर्शन कर शेरगढ़ पहुँचे। वहाँ जैनों के 60 घर हैं तथा बाजार में बीचों-बीच शिखरबद्ध मन्दिर है। दो दिन रुकने का विचार था पर अधिक दिन रुकना पड़ा। मन्दिर के परिसर में बनी धर्मशाला में प्रतिदिन व्याख्यान होते, रात्रि को कहानियाँ कहना प्रारम्भ हो गया। बड़ी संख्या में जैन-अजैनों की उपस्थित होती। लोगों की रुचि देखकर सामूहिक आयंबिल, शंखेश्वरजी के तेले व सामूहिक एकासन आदि कर लिये। लोगों का उत्साह बराबर बढ़ने लगा। होली का पर्व निकट था। लोगों का आग्रह मानकर वहीं रुक गये और होली के बाद ही विहार करने का निश्चय किया।

गुरुवर्याजी के प्रवचनों से लोग बहुत प्रभावित हुए। कई अजैनों ने अभक्ष्य-भक्षण का त्याग किया। एक मोची परिवार ने तो परम्परा से चली आ रही हिंसावृत्ति का सर्वथा त्याग कर दिया। उसी परिवार की सदस्या मोहिनीबाई ने पूर्णतः जैनधर्म स्वीकार कर लिया। उसने पूर्णतः जमीकन्द त्याग दिया। प्रतिदिन नवकारसी करना, नवकार मंत्र की माला फेरना, चातुर्मास में चौविहार करना, पर्व-तिथि को उपवास-पौषध करना उसका नियम बन गया। उसके इस आचरण से सभी प्रभावित हुए।

होली के पश्चात् विहार किया। विहार में शेरगढ़ के कई व्यक्ति साथ थे। मार्गस्थ छोटे-छोटे ग्रामों में धर्म-जागरणा करते हुए हम पचपदरा पहुँचे। वहाँ के लोगों के अत्यधिक आग्रह से शाश्वत ओली पर्व की वहीं आराधना की। तत्पश्चात् सिवाणा की ओर विहार किया। 4-5 दिन में सिवाणा पहुँच गये। वहाँ लोग बड़ी

उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रवेश में काफी लोग साथ थे। श्रद्धेय आचार्य श्री कांतिसागरजी म.सा. वहाँ पहले ही पधार गये थे। सभी की निश्रा में वैराग्यवती बहनों का डोरा-बन्धन हुआ।

अंजनशलाका प्रतिष्ठा निमित्त प्रभु का पंच कल्याणक महोत्सव बड़ी धूमधाम से चल रहा था। सभी उत्साहित थे। वैराग्यवती बहिनों का जुलूस और वर्षीदान देखकर तो लोग अत्यधिक प्रभावित हुए।

कुमारी नीता-निशा की दीक्षा

वैराग्यवती बहनों की दीक्षा वैशाख शुक्ला 6 (18 मई, 1983) को पू. आचार्य प्रवर उदयसागरजी म.सा., आचार्य प्रवर कांतिसागरजी म.सा. आदि मुनि-वृन्दों एवं समुदायाध्यक्षा श्रीचम्पाश्रीजी म. सा., पू. प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म. सा. आदि की निश्रा में सानन्द सम्पन्न हुई।

20 मई को सप्तम शताब्दी समारोह भी सम्पन्न हो गया। सिवाणा संघ की समुचित व्यवस्था सराहनीय तथा प्रशंसनीय रही, शासन की बहुत प्रभावना हुई।

कु. नीता लालवानी और निशा छाजेड़ के दीक्षोपारांत नाम क्रमशः शील-गुणाजी और सौम्यगुणाजी दिये गये तथा ये दोनों पू० गुरुवर्या की शिष्यायें घोषित हुईं।

महोत्सव के अवसर पर शेरगढ़ से भी एक बस आई थी। इनके अत्यधिक आग्रह पर चातुर्मास की स्वीकृति देकर प्रियदर्शनाजी आदि ठाणा 4 को शेरगढ़ की ओर चातुर्मासार्थ प्रस्थान करवाया गया और पू० प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म.सा. नूतन दीक्षिताओं सहित 6 ठाणा मिठोड़ावास की विनती को स्वीकार करके भंसाली भवन में चातुर्मासार्थ विराजीं।

मिठोड़ावास-सिवाणा चातुर्मास (सं० 2040)

इस चातुर्मास में तप-त्याग-प्रत्याख्यान खूब हुए। चातुर्मास सफल रहा।

जयपुर चातुर्मास के लिए जयपुर संघ का आग्रह शताब्दी समारोह के पहले से ही चल रहा था लेकिन चातुर्मास के बाद तो वे लोग आकर जम ही गये। इच्छा न होते हुए भी स्वीकृति देनी पड़ी। बागरेचा परिवार द्वारा मेन रोड़ पर नवनिर्मित भव्य, विशाल चौमुख मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा कर वहाँ से विहार

करके नाकोड़ा के दर्शन करते हुए जोधपुर पहुँचे। जोधपुर वालों ने भी चातुर्मास का आग्रह किया। सत्य स्थिति बतानी पड़ी। उन्होंने जयपुर वालों को पत्र डाला तो वे लोग आ गये। उन्होंने जोधपुर चातुर्मास के लिए हाँ भरवानी चाही पर उनके सभी प्रयास विफल हुए। आखिर जोधपुर से जयपुर की ओर विहार करवा के ही वे गये। हम लोग कापरडा, विलाड़ा की यात्रा करते हुए ब्यावर पहुँचने ही वाले थे कि शशिप्रभाजी को एक पागल कुत्ते ने काट लिया। ब्यावर पहुँचकर श्रावकों की सहमति से पेट में 14 इन्जैक्शन लगवाने पड़े। शाश्वत ओली की आराधना ब्यावर में ही की।

वैशाख में विहार करते हुए अजमेर गुरुदेव के दर्शन कर शहर में पहुँचे। पूज्याश्री का रक्तचाप बढ़ जाने से यहाँ 2-3 दिन रुकना पड़ा। वहाँ से विहार कर वैशाख शुक्ला 10 के दिन जयपुर की सीमा में प्रवेश किया। जयपुर संघ के लोगों में खूब उत्साह था, अतः अपनी गुरुवर्याश्री की अगवानी के लिए सांगानेरी गेट पर इकट्ठे हो गये। जयपुर के प्रसिद्ध जिया बैण्ड और वीर बालिका स्कूल के बालिका-बैण्ड के साथ शान से जयपुर में प्रवेश किया। प्रसिद्ध गायक लक्ष्मीचन्द जी भंसाली के गायन की मधुर स्वर लहरी की सबने प्रशंसा की। सैकड़ों व्यक्तियों के जुलूस के साथ पंचायती मन्दिर के दर्शन करते हुए विचक्षण भवन पहुँचे। वहाँ नववधुओं ने विभिन्न प्रकार की गहुँलियों से आपका स्वागत किया। जयपुर के कई प्रसिद्ध श्रावक—हीराचन्दजी सा. बैद, महताबचन्दजी सा. गोलेच्छा, उत्तमचन्दजी सा. बडेर आदि ने आपके तेजस्वी व्यक्तित्व के गुणग्राम किये। आपश्री ने ओजस्वी प्रवचन दिया, अन्त में मांगलिक फरमाई।

जयपुर चातुर्मास (सं. 2041)

इस चातुर्मास में गुरुवर्याश्री ने 'आचारांग सूत्र' की व्याख्या फरमाई। चार महीने तक प्रवचन होते रहे। भावनाधिकार में 'नरवर्म चरित्र' का आख्यान किया। त्याग, तपस्या, नियम, प्रत्याख्यान अठाई और मासक्षमण भी हुए। चातुर्मास संपन्न कर दादाबाड़ी पहुँचे।

दस दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

खरतरगच्छ संघ की ओर से पू० प्रवर्तिनीजी की निश्रा में जून, 1985 में दस दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया जिसका संचालन विद्वद्वर श्री कुमारपालभाई ने किया एवं श्री ज्योतिकुमारजी व कमलकुमारजी का पूर्ण सहयोग रहा। लगभग 200 विद्यार्थी थे। व्यवस्था बड़ी ही सुन्दरथी। सम्पूर्ण।

जयपुर चातुर्मास (सं. 2042)

गुरुवर्याश्री का यह चातुर्मास भी संघ के अत्याग्रह से जयपुर में ही हुआ। किन्तु प्रियदर्शनीजी आदि को बालोतरा भेज दिया और सम्यग्दर्शनाजी ठाणा 3 को जीवाणा। इसका कारण यह था कि जीवाणा निवासी श्री हस्तीमलजी बागरेचा की सुपुत्री मंवरी बागरेचा गुरुवर्याश्री की निश्रा में रहकर पिछले दो वर्षों से धार्मिक अध्ययन कर रही थी और उसकी दीक्षा की आज्ञा भी उसके परिजनों से मिल चुकी थी। अतः चातुर्मास के बाद तुरन्त उसकी दीक्षा होना निश्चित हो गया था। इसीलिए बालोतरा और जीवाणा की ओर विहार करवाया गया था।

जयपुर में गुरुवर्याश्री का चातुर्मास शानदार ढंग से शुरू हुआ। आपने आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन शास्त्र-परिज्ञा की सारगर्भित विवेचना श्रोताओं को सुनाई। त्याग-तपस्या आदि से चातुर्मास सफल रहा।

जीवाणा में प्रथम बार ही दीक्षा हो रही थी। प्रियदर्शनाजी आदि ने बालोतरा चातुर्मास पूर्ण करके सिवाणा में पू० आचार्यश्री के तथा पू० चम्पाश्री जी के दर्शन किये और दीक्षा के अवसर पर अपनी शिष्याओं को भेजने का आग्रह कर क़च्चे रास्ते से जीवाणा के लिए रवाना हो गये।

आचार्य श्री का स्वर्गगमन

आचार्यश्री ने भी मिगसिर बदी 4 को सिवाणा से जीवाणा की ओर विहार कर दिया। मोकलसर, रमणिया होकर जैसे ही गुरुदेव मांडवला पहुँचे कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया, शरीर काँपने लगा, बुखार चढ़ने लगा। धूजनी इतना अधिक थी कि 10 कम्बली ओढ़ाने पर भी कम्पन बन्द नहीं हुआ। गाँव छोटा होने से कोई बड़ा डॉक्टर नहीं था। सामान्य कम्पाउण्डर था, उसे ही बुलाया गया, उसने इंजैक्शन लगाया, कुछ राहत मालूम हुई। रात्रि को नींद आ गई। दूसरे दिन 9 बजे तबियत फिर बिगड़ने लगी। जालौर से बड़े डॉक्टर को बुलाने गये। डॉक्टर आता इससे पहले ही नवकार का उच्चारण करते हुए आचार्यश्री ने इस नश्वरदेह का त्याग कर दिया।

इस अनहोनी से सभी विस्मित हो गये, शोक में डूब गये। तार-टेलीफोन से समाचार पाते ही श्रद्धालुजनों की भीड़ उमड़ पड़ी। सभी के नेत्र आँसुओं से भरे थे। अग्नि-संस्कार की बोलियाँ 14 लाख रुपये की हुईं और उसी स्थान पर विशाल गुरु मन्दिर निर्माण करवाने का निर्णय सर्व संघ ने ले लिया।

इस अप्रत्याशित घटना से भँवरी बागरेचा की दीक्षा स्थगित होने की सम्भावना बनने लगी। सभी संशयसागर में गोते खाने लगे। लेकिन पू. प्रवर मणिप्रभसागरजी म. सा. ने सिर्फ दो शब्द—'दीक्षा होगी' कहकर जीवाणा संघ का सन्देह दूर कर दिया और श्रद्धेय मणिप्रभसागरजी की निश्रा में भँवरी बागरेचा की दीक्षा सम्पन्न हुई। इन्हें कनकप्रभाजी नाम दिया गया और पू. गुरुवर्याश्री की शिष्या घोषित किया गया।

सम्यग्दर्शनाश्री जी आदि 3 ठाणा दीक्षा के पश्चात् जयपुर की ओर विहार कर गये। प्रियदर्शनाश्री जी, तत्त्वदर्शनाश्री जी, शुभदर्शनाश्री जी नूतन दीक्षिता कनकप्रभाजी की बड़ी दीक्षा कराने हेतु पू. श्री कैलाशसागरजी म.सा. के पास गये। बड़ी दीक्षा के बाद वे भी जयपुर पहुंचे।

विचक्षण मूर्ति - स्थापना समारोह

संवत् 2042 के गुरुवर्याश्री के चातुर्मास में ही पूज्याश्री जैन कोकिला श्री विचक्षण श्री जी म.सा. के अग्नि-संस्कार-स्थल (गलता रोड़, मोहनबाड़ी) विशाल समाधि - स्थल पर मूर्ति स्थापित करने के निमित्त विराट समारोह का निर्णय खरतरगच्छ संघ ले चुका था। मूर्ति स्थापना समारोह की तिथि फाल्गुन शुक्ला 3 निर्णीत हुई थी।

प्रधान सा. पू. अविचलश्रीजी म.सा. आदि, पू. श्री चन्द्रप्रभाश्री जी म. सा. आदि तथा पू. श्री मणिप्रभाश्री जी म.सा. आदि सभी पधार गये थे। पू प्रवर्तिनीजी वहाँ विराजमान थीं ही। बड़ी धूमधाम से फाल्गुन शुक्ला 3 के दिन सभी की निश्रा में विचक्षण - मूर्ति स्थापना समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

समारोह के बाद ही चातुर्मास की विनतियाँ आने लगीं। जोधपुर का अत्याग्रह था, किन्तु पू. श्री मणिप्रभाश्री जी की इच्छा पूज्या प्रवर्तिनीजी के साथ जयपुर चातुर्मास करने की थी। अतः पू. श्री सुरञ्जनाश्रीजी म.सा., मुदितप्रज्ञाश्रीजी व सिद्धांजनाश्रीजी का जोधपुर चातुर्मास निश्चित किया गया और सम्यग्दर्शनाश्रीजी, विद्युतप्रभाश्रीजी आदि ठाणा 5 का दिल्ली।

वैशाख में पू. श्री मणिप्रभाश्रीजी म.सा. एवं पू. श्री शशिप्रभाश्री जी म.सा. आदि ठाणा 11 श्री जिनकुशल गुरुदेव के चमत्कारी स्थान मालपुरा के दर्शनार्थ गये। प्रियदर्शनाजी व विद्युतप्रभाश्रीजी ने अक्षय तृतीया से वर्षीतप प्रारम्भ किया। पू. मणिप्रभाश्रीजी म सा., सौम्यगुणाश्रीजी एवं मृदुलश्रीजी तीन ठाणा ने ज्येष्ठ

मास में देवलिया की ओर विहार किया, क्योंकि वहाँ प्रतिष्ठा करवानीं थी। श्री शशिप्रभाश्रीजी आदि तीन साध्वी मांडोली यात्रा हेतु प्रस्थान कर गये। सम्यग्दर्शनाजी आदि ठाणा पाँच पुनः जयपुर आ गये।

आषाढ़ बदी 4 को सम्यग्दर्शनाजी आदि ठाणा 5 को दिल्ली चातुर्मास हेतु प्रस्थान करवाया। आषाढ़ शुक्ला 3 को पू. प्रवर्तिनीजी, पूज्या श्री अविचलश्रीजी म.सा. और प्रियदर्शनाश्रीजी, तीनों दादाबाड़ी आये। दूसरे दिन देवलिया प्रतिष्ठा कर पू मणिप्रभाश्री जी म.सा. आदि पधार रहे थे तो गरुवर्याश्री उन्हें लिवाने के लिए नीचे उतर कर पधारीं। मणिप्रभाश्रीजी ने कहा—'महाराज साहिबा ! मैं तो आपसे बहुत छोटी हूँ और आप मुझे लेने नीचे तक पधारी हैं ?' तब आपने फरमाया—'यह आप लोगों का नहीं श्रामण्य का विनय है।' कितनी विनम्रता एवं श्रमण धर्म के प्रति अगाढ़ निष्ठा थी पूज्या प्रवर्तिनीजी म.सा. में !

उसी दिन स्वस्थ चित्त से आप स्थण्डिल पधारीं। प्रियदर्शनाश्री जी साथ ही थीं। लौटीं तो अनमने भाव से बोलीं—आज तो मेरे बायें अंग में कुछ शून्यता-सी महसूस हो रही है, सिर भारी हो रहा है, जीभ लड़खड़ा रही है, कहीं हैमरेज या पक्षाघात न हो जाय !

प्रियदर्शनाजी घबड़ा गईं। तुरन्त पू. मणिप्रभाश्री जी को बुलाया। उन्होंने स्थिति देखते ही श्रावकों से कहा। गाड़ियाँ दौड़ गईं। 15-17 मिनट में डॉक्टर साहब पधार गये। बोलीं—बी.पी. बहुत हाई हो गया है, नापा तो 240। उसी क्षण अर्काइन तथा अन्य इजेक्शन मिक्स करके लगाया। दवाएं दीं। हमें ध्यान रखने के लिए सावधान किया। सारी रात पूज्याश्री को बेचैनी रही और हम लोगों को चिन्ता।

श्री शशिप्रभाजी आदि मांडोली, सिवाणा, नाकोड़ा आदि की यात्रा सम्पन्न कर दादाबाड़ी पहुँचीं। देखते ही घबड़ा गईं, आँखों से सावन-भादों बरसने लगा। श्रीशशिप्रभाजी मात्र 5 वर्ष की आयु में ही गुरुवर्याश्री के पास आ गई थीं और उन्हें गुरुवर्याश्री से मां से भी बढ़कर वात्सल्य प्राप्त हुआ था। जीवन के अन्तिम चरण में शारीरिक अस्वस्थता के कारण पूज्या प्रवर्तिनीजी 6 वर्ष से जब जयपुर में ठाणापति के रूप में विराजीं तो श्री शशिप्रभाजी उनकी सेवा में ही संलग्न रहीं। अन्य साध्वियाँ चातुर्मास तथा अन्य दिनों में भी इधर-उधर जाती रहतीं, लेकिन शशिप्रभाजी म. तो गुरुवर्या श्री के साथ ही छायावत् रहीं। उन्होंने अपना जीवन गुरुवर्या श्री के चरणों में समर्पित कर दिया।

जयपुर चातुर्मास (सं. 2043–2045)

औषधोपचार से गुरुवर्या के स्वास्थ्य में सुधार तो था पर स्थिति ऐसी नहीं थी कि दो किलोमीटर की यात्रा कर जयपुर पधार जाएँ। पू. प्रधान सा., पू. मणिप्रभाजी म.सा. आदि का चातुर्मासार्थ जयपुर शहर में प्रवेश हो चुका था। गुरुवर्याश्री भी किसी प्रकार श्रावण शुक्ला 3 तक शहर में पधार गईं। कारण यह था कि पू. निर्मलाश्री म.सा. के 21 उपवास तथा बालसाध्वी सौम्यगुणाजी एवं कनकप्रभाजी के अठाई की पूर्णाहुति श्रावण शुक्ला 5 को होनी थी। गुरुवर्याश्री की निश्रा में सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए।

चातुर्मास के बाद सदा की भाँति दादाबाड़ी आ गये। पू. मणिप्रभाश्रीजी म.सा. आदि विहार करके दिल्ली पधार गये और पौष सुदी 11 को सम्यग्दर्शनाजी आदि ठाणा 4 दिल्ली से विहार करके जयपुर आ गये।

पू. गुरुवर्याश्री 'श्रीमद् देवचन्द चौबीसी' (स्वोपज्ञ बालावबोध) के अर्थ का कार्य नियमित रूप से करा रही थीं।

रोग का आक्रमण और साधना का चमत्कार

23 दिसम्बर, मध्याह्न 1 बजे आपश्री स्थण्डिल पधारीं तो देखा, दस्त का रंग एकदम काला। चिन्ता हुई। मैंने पूछा तो आपश्री ने फरमा दिया—वैद्य की दवा ले रही हूं, उसका असर होगा। थोड़ी देर पश्चात् पूज्या श्री ने कहा, मुझे कुछ कमजोरी महसूस हो रही है, लिखने में भी तकलीफ होती है। खैर, लेटकर ही लिखती हूँ। कुछ समय तक लिखा, किन्तु चैन नहीं था, बेचैनी हो रही थी। 3 बजे पुनः स्थण्डिल पधारीं तो दस्त का वही रंग और 4 बजे पुनः पधारने पर भी वही स्थिति। साध्वी शशिप्रभाजी ने डॉ. सोगानीजी को बुलवाया। डॉक्टर साहब के आते ही नई दवा लिखी तथा स्टूल, यूरीन आदि के टेस्ट लिखे। दस्त को देखा तो खून। उसे भी टेस्ट के लिए भिजवा दिया। उसी वक्त नर्स आई। उसने ब्लड लिया। यूरीन के लिए जैसे ही आप उठीं कि इतनी जोर से चक्कर आया कि आँखें ही फेर दीं। हम पास खड़े थे, संभाल लिया। उसी क्षण बड़े जोर की खून की उल्टी हुई। दो-तीन मिनट बाद चेतना लौटी। हम लोग खड़े ही थे। कुछ शाँति हुई। किन्तु कुछ समय बाद ही खून की 3-4 दस्तें। कुछ देर बाद खून की उल्टी और वही स्थिति। हम लोग घबड़ा गये। पुनः सोगानी साहब को बुलवाया।

इस बीच जयपुर के 200-250 व्यक्ति इकट्ठे हो गये। गुरुवर्या की इस दशा से सभी चिन्तित थे। डॉ. सौगानी सा. ने गुरुवर्या की स्थिति देखकर श्री शशिप्रभाजी से कहा—दशा बहुत चिन्ताजनक है। ब्लड की बहुत कमी हो गई है। 75 प्रतिशत ब्लड जा चुका है। तुरन्त हॉस्पीटल ले चलिए। ब्लड चढ़ाना बहुत जरूरी है। शशिप्रभाश्री जी ने डॉक्टर साहब से कहा—इस विषय में मैं निर्णय नहीं ले सकती, क्योंकि गुरुवर्याश्री सदा हॉस्पीटल ले जाने के बारे में हमें सावधान करती रही हैं कि 'मुझे हॉस्पिटल न ले जाया जाय', फिर भी मैं उनसे पूछकर आपको बता देती हूँ।

श्री शशिप्रभाजी तथा श्रावकों ने गुरुवर्या से बहुत कहा पर उन्होंने एक ही जवाब दे दिया—मैं ठीक हूं, आप लोग घबराओ मत। मेरा कुछ नहीं बिगड़ने वाला है। मेरी स्थिति बहुत गम्भीर नहीं है। निराश होकर डॉक्टर सा. ने कहा—जब महाराज साहब मान ही नहीं रही हैं तो मैं क्या कर सकता हूँ? अब तो बस, आपका भाग्य ही है। रात निकल जाय तो बहुत समझो। और, डॉक्टर साहब चले गये।

रात निकली। सुबह हुई। डॉक्टर सौगानी पुनः आये। रिपोर्ट देखी तो बोले—आपके ब्लड में हेमोग्लोबिन सिर्फ 4 रह गया, अतः ब्लड चढ़वाना ही होगा। गुरुवर्याश्री ने शान्त भाव से फरमाया—डॉक्टर साहब! मैं केवल 4-5 दिन का अवकाश चाहती हूँ। थाइराइड ग्रन्थि की प्रेक्षा करूँगी। मुझे विश्वास है, ब्लड की क्षतिपूर्ति हो जायेगी।

डॉक्टर साहब क्या कहते, चले गये। 4-5 दिन बाद पुनः ब्लड टेस्ट हुआ, रिपोर्ट पढ़कर चकित रह गये। हेमोग्लोबिन पूरा 7 था। डॉ. साहब श्रद्धा से विनत होकर बोले—मेरे लिये यह चमत्कार ही है, डॉक्टरी इतिहास में इतनी जल्दी ब्लड कवर हो जाना आश्चर्यजनक है। हम सब भी श्रद्धा से भर उठे—धन्य साधना, धन्य योग-साधना, धन्य क्षमता, तितीक्षा, परीषह - विजय और समता! इतनी उम्र में और इतनी कमजोरी में भी ऐसी उच्चकोटि की साधना थी गुरुवर्याश्री की। आपकी स्वयं की साधना और डॉ. सौगानी जी के औषधोपचार से पुनः पहले जैसी स्वस्थ स्थिति बन गयी।

इधर पू मणिप्रभसागरजी म.सा. आदि पू. गुरुवर्याश्री को दर्शन देने हेतु जयपुर पधार रहे थे। दो दिन बाद ही वे पधार गये। 5-7 दिन जयपुर रहे। पूज्या प्रवर्तिनीवर्या के प्रति आपश्री का सदा से मातृवत् भाव है। कुछ दिन बाद पू. मणिप्रभाश्रीजी आदि भी दिल्ली से जयपुर पधार गयीं।

वर्षीतप का पारणा

प्रियदर्शनाजी व विद्युतप्रभाजी का वर्षीतप चल रहा था, जिसका पारणा अक्षय तृतीया को होना था। श्रीमान माणिकचन्दजी गोलेच्छा एवं उनकी धर्मपत्नी भंवरीबाई आदि के भी वर्षीतप का पारणा था। पारणे का सम्पूर्ण कार्यक्रम मोहनबाड़ी (जहाँ मन्दिर में मूल नायक आदिनाथ के चरण हैं—समोसरण) में पू. प्रधान सा. श्री अविचलश्रीजी म.सा. व पू. प्रवर्तिनी महोदया आदि की निश्रा में धूमधाम से सानन्द सम्पन्न हुआ।

पूज्या गुरुवर्या श्री प्रवर्तिनी महोदया (सज्जनश्री जी म.सा.) का विहार का विचार तो पक्षाघात के उपरान्त छूट ही गया था। शीतऋतु में मोती डूंगरी रोड़ स्थित दादाबाड़ी में धीरे-धीरे पधारने क्रम चलता रहा।

सं. 2044 के जयपुर चातुर्मास में अस्वस्थता के कारण व्याख्यान का भार शशिप्रभाश्रीजी को सौंप दिया गया। प्रवर्तिनी श्री जी के अन्तिम समय तक यह जिम्मेदारी शशिप्रभाजी ही निभाती रहीं।

इस (सं. 2044) चातुर्मास के पर्युषण में पू. महाराजश्री की सद्प्रेरणा से शिवजीराम भवन के नवनिर्माण हेतु श्रीमान् ताराचन्दजी संचेती ने 5 लाख रुपये देने की स्वीकृति दी। खरतरगच्छ संघ के मन्त्री श्री उत्तमचन्दजी बडेर की देख-रेख में निर्माण कार्य सुचारु रूप से चला। ऊपर-नीचे 10-12 कमरे बन गये जिससे यात्रियों और आने-जाने वालों को सुविधा हो गयी है। भोजनशाला आदि में भी काफी परिवर्तन हो गया है।

सं. 2045 के जयपुर चातुर्मास में श्री कनकप्रभाजी ने मासक्षमण तप की आराधना गुरुवर्याश्री की निश्रा में की। इतनी छोटी आयु में ऐसा तप करना आश्चर्यकारी रहा। पू. प्रधान सा श्री अविचलश्री जी म सा. एवं पू. प्रवर्तिनी म.सा. की निश्रा में तपस्विनी का अभिनन्दन आदि सभी कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुए।

पूज्या गुरुवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी ठाणापति रूप में जयपुर में ही विराजित रहीं। अन्तिम समय तक आपश्री जप-ध्यान-स्वाध्याय आदि में अत्यधिक रुचि लेती रहीं। आपका मानना था कि स्वाध्याय वह अमृत है जिसका पान करके मानव अमर हो सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र में भी भगवान महावीर ने स्वाध्याय को ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय का कारण बताया है। आगम-मर्मज्ञा तो आप थीं ही, आचारांग सूत्र का स्वाध्याय निरन्तर चलता रहा था। यद्यपि इस सूत्र को आप अनेक बार पढ़ चुकी थीं फिर भी भगवान की वाणी को जितनी भी बार पढ़ो बुद्धि

के नये-नये उन्मेष खुलते हैं, नये-नये रहस्य प्रगट होते हैं, स्फुरणा जागती है और हृदय आनन्द विभोर हो जाता है, रस-मग्न हो जाता है। ऐसा ही आप अनुभव किया करती थीं। ज्ञातासूत्र, प्रज्ञापना, अध्यात्म - प्रबोध सूत्र, ओघनिर्युक्ति, व्यवहारसूत्र, वृहत्कल्पसूत्र, निरयावलिया आदि चार सूत्र, सुरसुन्दरीचरियं, रयणचूड़चरियं, भीमसेन - हरिषेण, रायप्पसेणीय सुत्त आदि कितने ही सूत्रों का आप स्वाध्याय और पारायण करती रहती थीं।

साध्वी मण्डल को भी स्वाध्याय की प्रेरणा देती रहतीं। उन्हें वाचना भी प्रदान करतीं। शंकाओं और जिज्ञासाओं के शास्त्रसम्मत समाधान भी देतीं। बार-बार पूछने पर भी न कोई झुंझलाहट, न कोई ऊब। अन्य गच्छों की साध्वियों को भी सूत्रों के भाव बिना भेदभाव आप प्रायः रुचि लेकर बताया करती थीं।

लगभग 81 वर्ष की उम्र में भी इतना उत्साह और ऐसी अप्रमत्तता अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। समताभाव इतना कि इतने उच्चपद पर प्रतिष्ठित होकर भी गर्व का नामोनिशान तक नहीं, साध्वी-वृन्द को कभी आदेश की भाषा नहीं। अपने कार्य को स्वयं ही कर लेतीं, किसी से कहती तक नहीं।

वस्तुतः, आपका जीवन खरा कंचन था। स्वाध्याय-तप-ध्यान-संयम आदि की कसौटी पर कसा हुआ खरा सोलहवानी सुवर्ण। संयम की महक भावना चन्दन की सुवास से भी अधिक सुरभित। आपका जीवन व आपकी संयमचर्या संसार समुद्र में डूबते प्राणियों के लिए दीप-स्तम्भ के समान पथ-प्रदर्शित करने वाले बने रहे।

□

अभिनन्दन - अभिवन्दन

विशाल वट वृक्ष की छाया में वर्षों तक सुखपूर्वक जीवन-यापन करने वाले अबोध पशु-पक्षी भी सहज कृतज्ञता के भाव से अभिभूत रहते हैं। प्रातः की मंगल बेला में सब मिलकर सुमधुर कंठ से वे उस वृक्ष का स्तुतिगान करते हैं, बाल-गोपाल नाना क्रीड़ाएँ कर उसको प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं तथा साँझ ढ़ले उसके अवदान को नमन कर उसके चिरंजीवी होने की कामना करते हैं।

ससार में अनेक दुर्लभ व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने अपने बहु-आयामी वर्तृत्व से समाज को अनेकानेक शुभ दिशाएँ दी हैं। समाज उनके प्रति 'चिरऋणी' भाव से श्रद्धाशील बना है, हर्षोल्लास के वातावरण की सृष्टि कर उसके प्रति अपने कृतज्ञ-भावों को श्रद्धासुमन बनाकर अर्पित करता रहा है। मन ही मन प्रतिदिन अभिनन्दन के भाव घनीभूत होकर जब प्रकट होते हैं तो स्वतः ही समारोह का रूप ले लेते हैं।

श्रमणी शिरोमणि, आगम-ज्योति, निर्मल चरित्रा सद्गुरुवर्याश्री सज्जनश्रीजी का व्यक्तित्व और कर्तृत्व न केवल खरतरगच्छ संघ और जैन समाज के लिए अपितु पूरे मानव समाज के लिए उत्कृष्टता लिये था। उनके दुर्लभ व्यक्तित्व का अभिनन्दन एक श्रमणी शिरोमणि, आगम-ज्योति, अध्यात्म, साधना, चारित्र और तप का अभिनन्दन था। अतः जयपुर के खरतरगच्छ संघ ने निर्णय लिया कि पूज्या प्रवर्तिनी श्री का अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जावे ताकि जहाँ उस महान् आत्मा के प्रति समाज भावांजलि अर्पित कर सके वहीं किंचित कृतज्ञता ज्ञापन का उपक्रम भी किया जा सके।

अभिनन्दन समारोह वैशाखी पूर्णिमा (20 मई, 1989) के दिन करना निर्णीत किया गया। साध्वी - मण्डल के साथ-साथ पूज्या श्री के संसारपक्षीय भतीजे, जैन समाज के प्रबुद्ध एवं उत्साही श्रावक श्री पुखराज जी लूणिया ने भी इच्छा व्यक्त की कि पूज्याश्री का 'अभिनन्दन ग्रंथ' तैयार कर इस अवसर पर भेंट किया जावे। सबकी इच्छा को साकार रूप मिला तथा 'श्रमणी श्री सज्जनश्री जी म सा. अभिनन्दन ग्रंथ'—'श्रमणी' अत्यन्त उपयोगी, सार युक्त प्रचुर सामग्री के साथ वृहद् आकार के साथ निर्मित हुआ। खरतरगच्छ संघ का यह प्रथम अभिनन्दन ग्रंथ था। पूज्य प्रवर मणिप्रभसागर जी म.सा. ने ग्रंथ के प्रकाशन का अनुमोदन एव प्रेरणा प्रदान की साथ ही मार्गदर्शन भी किया।

ग्रंथ की रूपरेखा

ऐसे उन्नत, उज्ज्वल एवं उत्कृष्ट व्यक्तित्व तथा जन-मन के कण-कण को आलोकित करने वाले प्रेरणा-स्तम्भ रूप कृतित्व की धनी, परम पूज्या निर्मल चरित्रा पावन-पुनीता परमश्रद्धेया गुरुवर्या श्री सज्जन श्री जी म.सा., जो सदा विश्ववंद्या अभिनन्दिता तो थीं ही, पर उनके अनिर्वचनीय व्यक्तित्व-कृतित्व को शब्दों की सरगम में आबद्ध कर अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में जनता के समक्ष विराट आयोजन के साथ समर्पित किया जाये, ऐसी अन्तर्भावना मेरे व भगिनी-मंडल के मन में जाग्रत हुई। ऐसा महसूस हुआ मानों उत्साह का एक नया आलोक बिखरा हो और हम नये लक्ष्य की ओर गतिमान बन गये हों।

इसी बीच पूज्या श्री को दर्शन प्रदान करने हेतु पूज्य गुरुदेव महामनीषी गणिवर्य महोदय श्री मणिप्रभसागर जी म. सा. जयपुर पधारे। हमारी उद्भूत भावना को हमने पूज्य गुरुदेव के समक्ष व्यक्त किया तो वे भी अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुये बोले—आपकी भावना अति सुन्दर है। गच्छ में ऐसी विदुषी एवं आगम ज्ञान की मर्मज्ञा विरली ही साध्वीजी हैं, जिसमें प्रवर्तिनी जी का सानी तो अन्य है ही नहीं, अतः यह उत्तम कार्य तो अवश्य ही होना चाहिए। वर्तमान में वे अपनी श्रेष्ठ संयम-साधना के चार दशक व चार वर्ष पूर्ण कर चुकी हैं, अतः लगभग 50 वर्ष के दीर्घ संयमी जीवन की सम्पन्नता पर, अर्थात् 'स्वर्ण जयन्ती' के प्रसंग पर आपकी भावना को साकारता प्रदान करें तो अत्युत्तम होगा। इस प्रकार पू. गुरुदेव ने हमें न केवल उत्साहित ही किया, अपितु संपूर्ण मार्गदर्शन करने तथा हर प्रकार से सहयोग प्रदान करने का आश्वासन भी दिया।

पूज्य गणिवर्य के उत्साह संवर्द्धन से प्रेरित होकर हमने धीरे-धीरे अभिनन्दन ग्रन्थ की परिकल्पना को एक आकार प्रदान किया साथ ही भाई पुखराज जी, जो (पूज्या श्री सज्जन श्री जी म.सा. के भतीजे) एक प्रतिभाशाली उत्साही युवक हैं, जिनका मानस धार्मिकता से ओतःप्रोत है, जो बौद्धिक प्रतिभा से सम्पन्न हैं, जवाहरात के बड़े व्यापारियों में जिनकी गिनती होती है तथा जो पूज्या श्री के प्रति पूर्णरूपेण श्रद्धान्वित भी हैं, उनके समक्ष भी हमने हमारी भावना वर्णित की। उन्होंने कहा—"महाराज! आपने तो आज मुझे यह बात कही है, पर मैंने तो कभी से ही सोच रखा है कि पू. प्रवर्तिनी जी म.सा. की प्रतिभा के अनुरूप उनके विशिष्ट व्यक्तित्व एवं विद्वत्तापूर्ण कृतित्व को शब्दों की शृखला में आबद्ध कर अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में उन्हें समर्पित किया जाये, जिसका समर्पण समारोह राष्ट्रीय स्तर पर विराट रूप में आयोजित हो। ऐसी मेरी स्वयं की भी भावना है,

पर मेरी आपसे प्रार्थना है कि इस महान् कार्य को रचनात्मक रूप देने का परम सौभाग्य मुझे प्राप्त हो।"

इस प्रकार श्री पुखराज जी हमारी भावना को साकार रूप देने में पूर्ण सहयोगी एवं दृढ़ संकल्पी बन गये। उन्हीं के सतत् प्रयासों से एवं जयपुर खरतरगच्छ संघ की सत्प्रेरणा व सहयोग से "प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री अभिनन्दन समिति" एवं सम्पादक मंडल का गठन हुआ। सभी सदस्यों की योग्यतानुसार उन्हें कार्य सौंप दिये गये। प्रबन्ध सम्पादक व मुद्रण का कार्य सौंपा गया—आगरा निवासी साहित्य-मनीषी प्रबुद्ध चेत्ता श्री श्रीचन्दजी सुराणा एवं श्री सुरेन्द्र जी बोथरा को। ग्रन्थ का नाम रखा गया 'श्रमणी'।

ग्रन्थ के पांच आयाम

इस महान् ग्रन्थ "श्रमणी" को पांच खण्डों में विभाजित किया गया। चूंकि गुरु जिस प्रकार रत्नत्रय का मध्यबिन्दु है, उसी प्रकार पांच परमेष्ठी का भी। वह अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पद में केन्द्रीय शक्ति है। पांच पदों का प्रतिनिधित्व गुरु में मूर्तिमंत है। इसी कारण इस ग्रन्थ को भी पांच खण्डों में विभक्त किया है। पांचों ही खण्ड सुन्दर, सारपूर्ण तथा मौलिक सामग्री से युक्त हैं जो इतनी गहन भी नहीं है कि आम आदमी पढ़कर समझ भी न सके, और न ही इतनी सामान्य है कि ग्रन्थ की गुरुता का आभास ही न हो। ग्रन्थ की उपयोगिता इसी से सिद्ध होती है कि वर्तमान में ग्रन्थ की अत्यधिक मांग हो रही है, विशेष रूप से शोध छात्रों द्वारा तो बार-बार मांग की जा रही है।

ग्रन्थ के पांच खण्ड निम्नांकित हैं :—

(1) प्रथम खण्ड : जीवन ज्योति—'व्यक्तित्व परिमल एवं कृतित्व दर्शन'।

(2) द्वितीय खण्ड : आशीर्वचन, शुभकामनाएं एवं श्रद्धार्चन-काव्याञ्जलियां।

(3) तृतीय खण्ड : इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ।

(4) चतुर्थ खण्ड : धर्म-दर्शन एवं आध्यात्मिक चिन्तन।

(5) पंचम खण्ड : त्याग, तप एवं सेवा की सुरसरि-नारी।

इस प्रकार पांच खण्डों में विभाजित 'श्रमणी' ग्रन्थ की सामग्री भी सम्पादक मडल के सहयोग एवं सूझबूझ से एकत्रित की गई जो श्रेष्ठता एवं यथेष्ठता दोनों ही दृष्टियों से विशिष्ट थी। माननीय सुराणा जी के निर्देशन में मुद्रण कार्य व संशोधन कार्य पूरी तत्परता एवं जोर-शोर से चला। सामग्री की अधिकता ने चिन्तन को

अवकाश दिया । प्राथमिकता किसे दी जाये ? प्रश्न को हल करने की प्रखर प्रज्ञा ने प्रबन्ध सम्पादक जी को सहयोग प्रदान किया व उन्होंने अपनी प्रबुद्ध मनीषा से 'मधुर एवं संक्षिप्त' न्याय पर विद्वत्तापूर्ण लेखों को प्राधान्यता प्रदान की ।

इस प्रकार सभी के सुन्दर व सतत् प्रयासों से अत्यल्प समय में महान् सुन्दर व लोकप्रिय अभिनन्दन ग्रन्थ की संरचना हुई, जिसको सर्वथा सार्थक व गौरवान्वित "श्रमणी" नाम प्रदान किया गया ।

"श्रमणी" नाम कितना श्रेष्ठ, कितना सार्थक ?

भगवान महावीर के श्रेष्ठ चतुर्विध संघ की परम्परा में प्रथम स्थान श्रमण वर्ग का है तो द्वितीय स्थान श्रमणी वर्ग का । क्षमा युक्त श्रेष्ठ व कठोर तपरूप अग्नि के माध्यम से अपने अशेष अर्थात् सम्पूर्ण कर्म - पुद्गल पिण्ड रूप ईंधन को जलाकर भस्मीभूत कर देने में जो कठिनतम परिश्रम करते हैं वे ही वास्तव में श्रमण और श्रमणी कहलाते हैं ।

श्रमण संस्कृति का मूल आधार "श्रमण" शब्द ही है । लाखों वर्षों की श्रमण संस्कृति संबंधी व्यापक चेतना हमें एक मात्र "श्रमण" शब्द में ही प्राप्त हो सकती है । "श्रमण" को प्राकृत में "समण" कहते हैं, जिसके संस्कृत में तीन शब्द बनते हैं—श्रमण, समण और शमन ।

(1) 'श्रमण' शब्द श्रम धातु से बनता है, जिसका अर्थ है— श्रम करना । अर्थात्—व्यक्ति अपना विकास अपने ही श्रम - पुरुषार्थ द्वारा कर सकता है । सुख, दुःख, उत्थान, पतन सभी के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है ।

(2) 'समण' अर्थात् समताभाव, सभी को आत्मवत् समझना, सभी के प्रति समभाव रखना ।

(3) 'शमन' का अर्थ है— अपनी वृत्तियों को शांत रखना । श्रमण सु-मना होता है, वह कभी भी पाप-मना नहीं होता, अर्थात् जिसका मन सदा प्रफुल्लित रहता है, जो कभी भी पापमय चिन्तन नहीं करता है, जो स्वजन-परिजन में तथा मानापमान में बुद्धि का उचित संतुलन रखता है, वही श्रमण है ।

प्रभु महावीर ने भी अपनी अन्तिम देशना स्वरूप "उत्तराध्ययन सूत्र" में श्रमण शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है—"न वि मुंडिएण समणो, समयाए समणो होई ।" जो साधक शरीर आदि में आसक्ति नहीं रखता है, किसी प्रकार की सांसारिक कामना नहीं करता है, किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता है, अर्थात्

पाँचों महाव्रतों का सम्यक् पालन करता है। क्रोधादि कषाय, जो आत्मा के पतन के हेतु हैं, उनसे सदा निवृत्त रहता है तथा जो इन्द्रिय विजेता है, संयमी है, मोक्षमार्ग का सफल यात्री है, शारीरिक मोह-ममत्व से रहित है, समता का साधक है, वही वस्तुतः श्रमण है।

उपर्युक्त श्रमण शब्द का सम्पूर्ण अर्थ गौरव पूज्या श्री सज्जन श्री जी के दिव्य-जीवन में अन्तर्निहित था। सरलमना पूज्याश्री कोधादि कषाय से दूर, अति दूर थीं, अनासक्त योगिनी की भांति वे संसार में जल - कमलवत् थीं। न शरीर के प्रति उनके मन में राग था, न शिष्यादि परिवार व स्वजन परिजनादि का मोह। न बाह्य तुच्छ परिग्रहादि का उन्हें ममत्व था न ही इन्द्रियादि विषयों का लगाव। वे इस प्रकार की मोहासक्ति से सर्वथा दूर थीं। जिसका प्रत्यक्षीकरण तीन वर्ष पूर्व उनके शरीर में उत्पन्न रक्त सम्बन्धी भयंकर व्याधि के समय हुआ। जो भी उनके पास रहा, वह प्रत्यक्ष रूप से तथा अन्य उनकी उस जीवन-ज्योति को पढ़कर श्रमणी शिरोमणि के उस अनासक्त योग का सहज ही अनुमान लगा सकता है।

इस प्रकार "श्रमणी" शब्द शील, साधना, संयम व शुचिता का प्रतीक है, पवित्रता और परम-वत्सलता का प्रतिनिधि है, श्रमण सस्कृति का प्राण है। पूज्या गुरुवर्या श्री के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति प्रदान करने में एक यही शब्द उपयुक्त है। वस्तुतः, पूज्या श्री का जीवन सर्वथा इस नाम के अनुरूप ही है, "श्रमणी" शब्द ग्रन्थ की सम्पूर्ण गरिमा की स्वयं अभिव्यक्ति दे रहा है।

अभिनन्दन समारोह की तैयारियां

राष्ट्रीय स्तर पर गुरुवर्य्या श्री को अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने हेतु विराट् आयोजन की जोर-शोर से तैयारियां चलने लगीं। 20 मई सन् 1989 का दिन निश्चित किया जा चुका था। जिस दिन वैशाखी पूर्णिमा थी और जो गुरुवर्याश्री का जन्म-दिवस भी था।

पत्र-पत्रिका एवं पोस्टरों द्वारा ग्राम, नगर, देश-विदेश की सम्पूर्ण जनता को समारोह में पधारने हेतु भावभरा आमन्त्रण प्रदान किया गया। परम श्रद्धेय गणिवर्य महोदय को समारोह की सान्निध्यता करने हेतु विनती पत्र प्रेषित किये गये व साथ ही संघ के वरिष्ठ सदस्य शीघ्र जयपुर पधारने हेतु विनती करने गये, जिसकी स्वीकृति पूज्य गणिवर्य महोदय ने सहज सरलता से प्रदान कर दी। चूंकि, उन्होंने पूज्या श्री को सदा से मातृस्वरूपा समझा है, अतः स्वीकृति देते समय उन्होंने

कहा—'यह तो मेरा अपना काम है । इस समारोह में मेरी उपस्थिति देकर मैं अपने आपको भाग्यशाली समझूंगा । ऐसे स्वर्णिम अवसरों की प्राप्ति भाग्य से ही प्राप्त होती है, अतः मैं अवश्य ही उपस्थित होऊंगा ।'

पूज्य गुरुदेव की उपस्थिति के शुभ समाचार सुनकर मन आनन्दित हो उठा, क्योंकि गुरुदेव के आने से समारोह के कार्यों में चार चांद लग जायेंगे । सत्य भी है, उनकी सूझ-बूझ, अनुभव, अप्रतिम प्रतिभा व प्रखर प्रज्ञा से सभी कार्य सहज ही सुन्दर व श्रेष्ठ बन जाते हैं ।

बीकानेर का उपधान तप खूब धूमधाम से सम्पन्न करवाकर पूज्य गणिवर्य महोदय ने मुनि-मंडल के साथ जयपुर की ओर प्रस्थान किया । अपनी मधुर वाणी से जन मानस को तृप्त करते हुए, ग्रामीण जनता को अपनी अमृत वाणी का आस्वादन कराते हुए चैत्र बदी दशमी के दिन गुरुवर दादाबाड़ी में पधारे । दूसरे दिन एकादशी को प्रातः जयपुर सघ ने बड़े भव्य रूप में आपका नगर प्रवेश करवाया । विचक्षण भवन के प्रांगण में विशाल जनसमूह को अपनी मधुर वाणी से उन्होंने सम्बोधित किया । तत्पश्चात् आप श्री संघ के आग्रह से "कुशल भवन" पधारे ।

उसी दिन से प्रतिदिन विचक्षण भवन में व्याख्यान का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया । गुरुवर की मृदु-मधुर अमृतमयी, हृदयस्पर्शी वाणी को तथा "जटाशंकर" के मनोरंजक किन्तु आध्यात्मिकता से भरे दृष्टांतों को सुनने के लिए आप श्री के पधारने से पूर्व ही प्रतीक्षारत जनता व्याख्यान हॉल में उपस्थित हो जाती थी । इस प्रकार प्रवचनों का ठाठ भी दर्शनीय बन गया ।

गुरुवर की निश्रा व श्री श्रीचन्दजी सुराणा 'सरस' के निर्देशन में ग्रन्थ का कार्य बड़े ही सुन्दर ढंग से व शीघ्रता से चल रहा था । श्री सुरेन्द्र जी बोथरा के संशोधन के पश्चात् लेखन सामग्री प्रायः प्रतिदिन प्रेषित की जा रही थी । उधर आगरा में मुद्रण का कार्य तीव्र गति से चल रहा था । साथ ही गुरुवर्या श्री का अन्य साहित्य भी आगरा, जयपुर व कलकत्ता में मुद्रित हो रहा था । उस सारे ही साहित्य का विमोचन भी ग्रन्थ के साथ ही हो, ऐसा सोचकर सभी मुद्रणालय मुद्रण कार्य को गति दे रहे थे ।

इधर जयपुर संघ व भाई पुखराज जी लूनिया भी अभिनन्दन समारोह को विराट रूप प्रदान करने में काफी उत्साहित थे । मुख्य अतिथि के रूप में देश के किसी महान् व्यक्ति को बुलाने के लिए काफी प्रयत्नशील थे । फलस्वरूप राजस्थान के महामहिम राज्यपाल श्री सुखदेव प्रसाद जी ने सहज ही स्वीकृति प्रदान करदी ।

गणिवर्य्य महोदय के निर्देशन में स्वागत समिति का गठन हुआ, जिसमें सभी प्रान्तों के व मुख्यतया जयपुर के वरिष्ठ व्यक्तियों को लिया गया।

जिनेन्द्र-भक्ति स्वरूप दस दिन तक महापूजन व लघु पूजन कराने का निर्णय लिया गया। साथ ही 51 छोड़ का उद्यापन व विजयगच्छ के मंदिर में नूतन भगवान की प्रतिष्ठा का महान् कार्य भी इसी बीच वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को रखा गया। ये सारे महान् कार्य पूज्या श्री की महान् पुण्यायी से ही एक साथ करवाने का जयपुर श्री संघ को सौभाग्य प्राप्त हो रहा था। जिन दिनों की प्रतीक्षा थी वे प्रतीक्षित दिन शीघ्र ही निकट आते जा रहे थे।

दशाह्निक महोत्सव (11 से 20 मई, 1989)

दशाह्निकोत्सव के साथ-साथ जनमानस को आकर्षित करने वाले विविध विषयों पर पूज्य गणिवर्य महोदय के विशेष प्रवचन भी प्रारम्भ हो गये। प्रातः प्रवचन, मध्यान्ह पूजन व संध्या-भक्ति के कार्यक्रम बड़े ही सुन्दर ढंग से हो रहे थे। 18 मई को नवकारमंत्र के प्रति गहरी श्रद्धा–निष्ठा रखने वाले श्रीमान् शशिकान्त भाई का विशेष प्रवचन प्रेम प्रकाश टॉकिज में रखा गया। नवकार मंत्र पर अति गहन किन्तु सुन्दर - सरल भाषा में बड़ा ही रुचिकर प्रवचन हुआ। दिनांक 19-5-89 को शुभ मुहूर्त में विजयगच्छ के मंदिर में शासनाधीश्वर महावीर प्रभु की प्रतिष्ठा करवाई। सम्पूर्ण विधि-विधान पूज्य गुरुदेव की निश्रा में जयपुर के प्रसिद्ध क्रियाकारक श्री धनरूपमल जी नागौरी ने सम्पन्न करवाये।

अभिनन्दन समारोह का द्वि-दिवसीय कार्यक्रम

पूज्या प्रवर्तिनी महोदया अपने होने वाले अभिनन्दन के प्रति सर्वथा उदासीन थीं, न हर्ष का भाव था न खिन्नता का। जब से अभिनन्दन ग्रन्थ तथा समारोह की हलचल प्रारम्भ हुई तभी से वे और अधिक मौन हो गई थीं। "ये सब मुझे पसन्द नहीं, चूंकि मुझ में इतनी योग्यता नहीं।" ऐसा उन्होंने कई बार फरमाया था। किन्तु गुरुवर्याश्री की प्रौढ़ता, साधुता, विद्वत्ता, सरलता, सहजता, निरभिमानता, गंभीरता, तल-स्पर्शिता, आगम-ज्ञान की गहनता एवं कठोर आचरणप्रियता आदि गुणावली ने न केवल हमारे, पुखराजजी व लूनिया परिवार के अपितु सर्व-संघ के मानस को एक सुन्दर अभिनन्दन ग्रन्थ की संरचना कर विराट् आयोजन के साथ समर्पण करने को प्रोत्साहित किया। यद्यपि उनके दिव्य औजस्वी-तेजस्वी एवं महान् गुणों से युक्त व्यक्तित्व को शब्दों में बांधना कठिन ही नहीं कठिनतम या उनके अनुपम-अद्भुत उत्तुंग जीवन को शब्दों में वर्णित करना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा था,

तथापि ऐसे दुर्लभ व अप्राप्त स्वर्ण - क्षणों में मौन रहना भी वाणी की कृपणता ही होगी।

अतः, अनेक वक्ता, अपने भावों को अभिव्यक्ति देने के लिए आतुर हो रहे थे। पर, प्रश्न था, एक ही दिन में इतने लोग कैसे बोल पायेंगे ? इसीलिए अभिनन्दन समारोह में बोलने वाले वक्ताओं के बोलने के क्रम को दो दिनों में विभक्त किया गया। प्रथम दिन का कार्यक्रम प्रातः नौ बजे से ग्यारह बजे तक शिवजीराम भवन के प्रांगण में रखा गया। उस दिन प्रायः सर्व साध्वी - मंडल एवं अन्य वक्ताओं ने गुरुवर्या श्री की गुणावली को अभिव्यक्ति दी। सभी लोग बड़े ही प्रसन्न थे, पूज्याश्री के गुण-गान करते-सुनते हुए।

इसी दिन विजय मुहूर्त्त में प्रतिष्ठा थी। तत्पश्चात् श्रीमान् अमरचन्द जी धर्मचन्द जी सा. नाहर की ओर से सामूहिक आयम्बिल की व्यवस्था भी शिवजीराम भवन में थी, लगभग हजार–आठ सौ आयम्बिल थे। उसके बाद शांति स्नात्र महापूजन का मंदिर में कार्यक्रम था। प्रसिद्ध नाटककार श्रीमान् शैलीजी के निर्देशन में उसी दिन रात्रि में शिवजीराम भवन में श्री वीर बालिका विद्यालय की ओर से भव्य सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन हुआ, जिसमें अन्य आकर्षक प्रोग्रामों के साथ पूज्या प्रवर्तिनी महोदया के जीवन से सम्बन्धित एक भव्य, सुन्दर एवं आकर्षक नाटिका भी प्रस्तुत की गयी। इस नाटिका में पूज्याश्री के बाल्यकाल से लेकर दीक्षा-पर्यन्त जीवन की सक्षिप्त झांकी थी। इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों में आर्थिक सहयोग का सम्पूर्ण श्रेय श्रीमान् नरेन्द्रकुमार जी सा. गोलेच्छा (सुपुत्र श्री सरदारमल जी सा. गोलेच्छा) जो पूज्याश्री के ससुराल पक्ष में देवर के लड़के हैं, को रहा। श्रृंखलाबद्ध सभी कार्य बड़े ही सुन्दर वड़े व्यवस्थित ढंग से सम्पन्न हो रहे थे। लोग बड़ी ही रुचिपूर्वक सभी कार्यों में अपनी उपस्थिति दे रहे थे।

दूसरे दिन, 20 मई के मुख्य समारोह की तैयारियां भी बड़े जोर-शोर से चल रही थीं। जिसकी व्यवस्था का कार्य श्रीमान् पुखराज जी लूनिया के निर्देशन में हो रहा था।

वैशाख की पूर्णाहुति व ज्येष्ठ माह का आगमन होने वाला था, अतः गर्मी अपना प्रचण्ड रूप दिखा रही थी। इसलिए पाण्डाल बड़े ही सुन्दर व सुविधाजनक ढंग से बनाये जाने का निर्देश था। करीब 5000 जनता व्यवस्थित बैठ सके इतना लम्बा-चौड़ा विशाल पांडाल बनवाया गया था। जिसमें डबल टैन्टों की व छत के पंखों की सुरुचिपूर्ण व्यवस्था भी इसी प्रकार की सुन्दर, भव्य व दर्शनीय थी।

मुख्य समारोह

जिसकी प्रतीक्षा हजारों लोग कर रहे थे वह प्रतीक्षित दिन भी आ पहुंचा। प्रातः काल का स्वर्णिम सूर्य अपनी स्वर्णाभा के साथ उदित हुआ। सभी के मानस में विराजित सौम्य-उत्फुल्ल अभिव्यक्ति चेहरों के माध्यम से प्रकट हो रही थी। जयपुर के विशाल रामलीला ग्राउण्ड में प्रातः 9.00 बजे से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। पूज्य गुरुवर्य्या श्री प्रवर्तिनी महोदया प्रधान पद विभूषिता तपस्विनी श्री अविचल श्रीजी म सा. एवं विनयशीला पूज्याश्री विनीता श्री जी म.सा. आदि ज्येष्ठ भगिनी-मंडल ने अपनी शिष्या-मंडली व श्रावक-श्राविका समूह के साथ रामलीला मैदान की ओर प्रस्थान किया। श्राविकाओं की मांगलिक गीत-ध्वनि व श्रावकों की जय-जयकार के मधुर नाद के साथ आप रामलीला मैदान में पधारीं, जहां आपकी अपलक प्रतीक्षा हो रही थी।

चारों ही संघ के वरिष्ठ श्रावकों ने व अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ के अध्यक्ष श्रीमान् मोहनचन्दजी सा. ढड्ढा आदि तथा तत्रस्थ उपस्थित सभी श्रावक-श्राविकाओं ने पूज्या प्रवर्तिनी श्री आदि चारित्रात्माओं की अगवानी की। भगवान महावीर के जयनाद, पूज्य गुरुदेव व प्रवर्तिनीवर्य्या की जय के उद्घोष हुए। एक अनुपम आभा के साथ चरितनायिकाजी मंच पर पधारीं। सभी ने उनका भावभीना अभिवादन कर अपने-अपने आसन ग्रहण किये। पूज्य गुरुदेव श्री गणिवर्य्य महोदय तो पहले ही मंच पर पधार चुके थे।

स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्ष, मंत्रीगण आदि तथा बाहर से पधारे हुए मुख्य अतिथि महानुभाव सभी अपने नियत स्थानों पर विराज चुके थे। मंच के एक ओर नियत स्थान पर पत्रकार बन्धु बैठे थे जो प्रत्येक घटना को साक्षरता प्रदान करने को आतुर दिखायी दे रहे थे।

मंच की सुन्दर व्यवस्था व सजावट सभी को आकर्षित कर रही थी। संघ मंत्री श्री उत्तमचन्दजी सा. बडेर एवं सुश्री सरोज जी कोचर बड़े ही सुन्दर ढंग से मंच-व्यवस्था को सम्भाल रहे थे। प्रोग्राम प्रारम्भ होने से पहले 'प्रभु महावीर की जय' के उद्घोष के साथ विशाल जनसमूह को शान्त किया गया। सभी का ध्यान एकाग्र हो गया।

शुभारम्भ

कार्यक्रम का शुभारम्भ स्थानीय वीर बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं द्वारा बड़े ही सुमधुर कण्ठ से प्रस्तुत गुरु-गुण-गीतिका के साथ हुआ, जिसके

बोल थे—"गच्छ प्रवर्तिनी जय हो···· ! भगवती आपकी जय हो···· !" उसके पश्चात् लूनिया परिवार की सदस्याओं ने अत्यन्त मधुर स्वर-लहरी में 'अभिनन्दन गीतिका' गाई, जिसे सुनकर न केवल मंच पर स्थित विशिष्ट महानुभाव ही प्रभावित हुए अपितु विशाल जनसमूह भी भावविभोर हो उठा। इसके अनन्तर बाहर से पधारे हुए व स्थानीय मुख्य अतिथियों ने अपने-अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये।

श्री मोहनचन्द जी ढड्ढा

अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ के अध्यक्ष श्रीमान मोहनचन्द जी ढड्ढा ने पूज्या प्रवर्तिनी महोदया का अभिनन्दन करते हुए कहा—'आज मेरे लिए ही नहीं, अपितु समूचे समाज के लिए गौरव का विषय है कि एक ऐसी विभूति, जिसका व्यक्तित्व तो अपने आप में दिव्य और अलौकिक है ही, उसके कृतित्व में भी उनके जीवन की अद्भुत आभा झलकती है। आपने जो भी गद्य-पद्य आदि साहित्य की रचना की है उन्हें आपने अपनी लेखनी का विषय ही नहीं बनाया अपितु जीवन व आचरण का विषय भी बनाया। इसी कारण खरतरगच्छ संघ ने आपको प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया तथा आज वह आपका अभिनन्दन कर गौरव की अनुभूति कर रहा है। मूर्तिपूजक संघ में तो ऐसा अभिनन्दन ग्रन्थ भी पहला ही छपा है। यह सब कुछ आपके ही गुणों का परिचायक है।

तपागच्छ संघ के मंत्रीजी

'यह हमारा प्रथम अवसर है जबकि हमें एक साध्वी का अभिनन्दन करने का अवसर मिला है और वह अवसर भी किसी सामान्य साध्वी का नहीं, एक विशाल हृदया, विराट, अनुपम, अपार गुणों से विभूषित महान् पू. प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म.सा. का। इनका यह अभिनन्दन सदा के लिए आदर्श व प्रेरणा-स्तम्भ रहेगा, क्योंकि ये कभी सम्प्रदायवाद से नहीं जुड़ीं। हमारे यहाँ जब कभी भी कार्यक्रम हुए, व्याख्यान हुए और आपको आमंत्रित किया तो आपने सदैव सहर्ष स्वीकृति प्रदान की। ननु-नच तो कभी देखा ही नहीं। जबकि आजकल श्रमण-श्रमणी वर्ग सहज आज्ञा प्रदान नहीं करते। अतः, ऐसी महान् साध्वी का अभिनन्दन तो हमें करना ही चाहिए था।'

तेरापंथ संघ के मंत्री श्री राजकुमार जी बरड़िया

'तेरापंथ के आंगन में पलने वाली महान् साध्वी का अभिनन्दन करने का अवसर हमें भी मिला, इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या होगी। यह अभिनन्दन उनके यशस्वी जीवन का है, जिन्होंने अपना समग्र जीवन स्व-पर कल्याण

के लिए जीया, समय का प्रत्येक पल समाज के उत्थान व उसे अग्रसर करने हेतु व्यतीत किया। दूसरों के सुख में ही अपना सुख, दूसरों के दुःख में अपना दुःख माना। ऐसी महान् साध्वी का भावात्मक सम्बन्ध तो हमारे संघ के साथ पहले से ही जुड़ा है। क्योंकि तेरापंथ के अग्रगण्य श्रावक धर्म-प्राण श्री गुलाबचन्दजी सा. लूनिया की आप पुत्री हैं। ऐसी उदात्त, विशाल गुण सम्पन्न साध्वी के दीर्घ संयम की कामना करते हुए यह भाव भरा अभिनन्दन - पत्र आपकी सेवा में समर्पित करते हैं।' श्री राजकुमारजी ने तेरापंथ समाज की ओर से एक अभिनन्दन पत्र गुरुवर्याश्री को भेंट किया।

इसी बीच सुश्री सरोज कोचर ने यह मुक्तक कहा :

'तुम पानी बाहर बरसने वाले हो
डूबे लोगों की अनन्त की यात्रा का विस्तार करने वाले हो,
पथिक के पावन साथी !
इस विशाल समारोह में भी व्यक्तित्व प्रभावित करने वाले हो।'

स्थानकवासी संघ के अध्यक्ष श्री सरदारमल जी सा. चौपड़ा

जब मुझे पता लगा कि प्रवर्तिनी श्रीजी का अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जा रहा है तो मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा, रोयां-रोयां हर्ष से भीग गया। इसका कारण था, जो सदा साम्प्रदायिकता से अछूती रहीं, तेरे-मेरे का घेरा जिसने जाना ही नहीं, ऐसी महान् साध्वी का अभिनन्दन करने का अवसर हमें भी प्राप्त होगा, कल्पना भी नहीं थी। होती भी कैसे ? महान् साधकों का गुणगान करने का अवसर महान् पुण्य से ही प्राप्त होता है। एकता व अखण्डता आपश्री के जीवन के सदा से अंग रहे हैं। तेरापंथ में जन्म, स्थानकवासी संघ में विवाह व खरतरगच्छ में संयम; मानो आपकी भावनाओं ने ही ऐसा अद्‌भुत सामंजस्य बिठाया हो। ऐसी अद्‌भुत साध्वीजी का अभिनन्दन हम सबके लिए निश्चय ही प्रेरणास्पद होगा।

तेरापंथी साध्वी श्री मधुबाला जी

'व्यक्ति के व्यक्तित्व का, गुणों का, आचार का अभिनन्दन होता है। आपका जन्म लूनिया परिवार में हुआ। लूनी - मक्खन का एक रूप है, बड़ा मुलायम होता है, सरल होता है, ऐसे ही माधुर्ययुक्त परिवार में आपका जन्म हुआ था। आपके पिताश्री नाम था—गुलाबचन्द। गुलाब जिसमें सौरभ होता है। आपकी माताजी थी—महताबदेवी जो चन्द्रमा की चांदनी का स्वरूप है और आपके पतिदेव

थे श्री कल्याणमल जी, जिन्होंने आपके अन्तर साम्राज्य को कल्याण भावना से ही भर दिया।

इसके अनन्तर एक राजस्थानी गीत प्रस्तुत किया गया :

"ओ छैल-छबीलो अवसरियो, आयो रे आंगणिये,
अभिनन्दन रो अवसरियो·····
ओ सहज-सुहाणो अवसरियो, आयो रे आंगणिये।

आर्या शशिप्रभा श्री जी

"अन्य महापुरुषों के समान ही प्रवर्तिनी श्री जी का जन्म हुआ, किन्तु आपके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी कहना सीमातीत है। शब्द अपने आप में सीमित हैं, जबकि गुरुवर्या श्री का जीवन– संपूर्ण परिचय जन्म से लेकर दीक्षा तक, विस्तृत व विराट है। विस्तृत को सीमित में बांधना कठिन है, जैसे गागर को सागर में बांधना। आपको मंदिरमार्गी धारा की प्रेरणा सेठानीजी श्री गुलाबसुन्दरीजी बाफना (कोटा) से मिली थी। सेवा की प्रेरणा पूज्या प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी म.सा. से मिली थी। अध्ययन के प्रति आप में इतनी रुचि है कि आप भोजन-पानी के बिना रह सकती हैं पर अध्ययन के बिना नहीं रह सकतीं। पूज्य जनों के प्रति आपके हृदय में विनय की प्रबल प्रधानता है।

संयोजिका सुश्री सरोज कोचर ने लूणिया परिवार का परिचय देते हुए कहा : "आज समाज धर्म से विमुख होता जा रहा है, लेकिन लूनिया परिवार पीढ़ी दर पीढ़ी धर्म की ओर अग्रसर होता जा रहा है। यह पूरे समाज के लिए अनुकरणीय है।"

श्री पुखराज जी लूनिया

श्री पुखराजजी ने लूनिया परिवार एवं स्वागत समिति की ओर से उल्लास बिखेरते हुए कहा—मैं उपस्थित सभी महानुभावों का विशेष स्वागत करता हूँ। आप सभी ने यहां पधार कर जैन एकता का परिचय दिया है। पूज्य गुरुवर्या श्री का जीवन भी एकता का जीता-जागता आदर्श उपस्थित करता है। उनकी भावना सभी के प्रति समान रही है।

"खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे" की भावना ही आपके जीवन से सदा बरसती रही है। अतः, आज यह समारोह अभिनन्दन का होने के साथ-साथ जैन समाज की एकता का समारोह भी बन गया है। यही एकता हमारे

समाज में, राष्ट्र में, गच्छों में आत्मोन्नति के साथ-साथ आत्मिक सुख भी प्रदान करेगी।

तपस्विनी साध्वी श्री निर्मला श्री जी म.सा. का आयम्बिल तप

तपस्विनी साध्वीजी श्री निर्मला श्री जी म.सा. (जो महान् साधक श्री अमरचन्द सा. नाहर की सुपुत्री हैं) के 81 आयम्बिल की सतत् आराधना 81वें दिन में चल रही थी। कारण कि पूज्या गुरुवर्या श्री भी अपने साधनामय यशस्वी जीवन के 81 वसंत पर्ण कर वैशाखी पूर्णिमा को 82 वें वर्ष में प्रवेश कर रही थीं। इसी उद्देश्य से साध्वी श्री ने यह महान् तप किया था, जिसकी पूर्णाहुति वैशाख पूर्णिमा को ही हो रही थी। अभिनन्दन समारोह के साथ-साथ इस महान् मांगलिक तप का समापन समारोह भी हुआ। उन्होंने भी पूज्याश्री की दीर्घायु की शुभकामना करते हुये दो शब्द श्रद्धा-सुमन के रूप में समर्पित किये।

ग्रन्थ अर्पण

सभी की मंगलमय शुभकामनाओं के पश्चात् महामहिम राज्यपाल श्री सुखदेव प्रसाद ने दीपक प्रज्ज्वलित करते हुये मंगलमय वाद्य-ध्वनि के साथ अभिनन्दन ग्रन्थ का विमोचन किया। सभी ने तालियों की व महावीर प्रभु की जय के उद्घोष के साथ पूज्या प्रवर्तिनी श्री का जयनाद किया और अभूतपूर्व अभिनन्दन ग्रन्थ 'श्रमणी' राज्यपाल द्वारा पूज्या प्रवर्तिनी महोदया के करकमलों में समर्पित किया गया। उसके पश्चात् श्री पुखराज जी लूनिया ने वहां विराजित सभी साध्वी-मण्डल व गणिवर्य महोदय को ग्रन्थ की प्रतियां भेंट कीं। पूज्याश्री के द्वारा लिखित अन्य साहित्य भी श्रीमान् गुमानमल जी सा. लोढ़ा के द्वारा भेंट किया गया। 'कुशल गीतांजलि,' 'गुलाब की सुगन्ध' तथा भजनों के अन्य कैसेट्स आदि का भी राज्यपाल महोदय द्वारा विमोचन हुआ। "कुशल गीतांजलि" में पूज्या प्रवर्तिनी महोदया द्वारा रचित गुरुदेव की स्तवनाएं आदि हैं। 'गुलाब की सुगन्ध' में पूज्या श्री के पिता श्री गुलाब चन्दजी सा. लूनिया द्वारा रचित प्रभु-भजन अत्यन्त सुमधुर धुनों में गूंथे हुए हैं।

कम्बली का दान

इसी क्रम में पूज्या प्रवर्तिनी महोदया को कम्बली बहराने की बोली बोली गयी, जिसका लाभ भी लूनिया परिवार ने ही लिया एवं श्रीमती रेखादेवीजी लूनिया (धर्मपत्नी श्रीमान् केशरीचन्दजी सा. लूनिया) ने पूज्याश्री को कम्बली अर्पित की।

इसके अनन्तर श्रद्धेय गणिवर्य मणिप्रभसागरजी म. ने पूज्य आचार्य श्री कांति सागर सूरीश्वरजी म. सा. की स्वयं की कम्बली पूज्या श्री को अर्पित कर

सम्मानित किया। उपस्थित जन समुदाय ने कम्बली अर्पण के हृदयग्राही अवसर का हर्षध्वनि के साथ अनुमोदन किया। और, इसके पश्चात् प्रारम्भ हुआ पूज्या प्रवर्तिनी श्री जी का अमृतोपम उद्‌बोधन।

प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म.सा. का उद्‌बोधन

जैन शासन क्या है ? जैन शासन का अर्थ है—अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त और आत्मवाद। जैन शासन की इन विशेषताओं को समझने व आचरण में लाने का बड़ा भारी महत्त्व है। और कोई भी हो, किसी भी प्रकार का सिद्धान्त हो, जब तक वह आचरण में नहीं आये तब तक उसका कोई महत्त्व नहीं। संसार में सदा से ही अहिंसा का महत्त्व, अहिंसा के आचरण का महत्त्व और अपरिग्रह का महत्त्व आज से नहीं, असंख्य वर्षों से चला आ रहा है। जब-जब मानव ने इन सिद्धान्तों को नहीं समझा तथा जीवन में स्थान नहीं दिया, तब तब वह महान् संकटों से घिर गया है। आज तो इस वैज्ञानिक युग में, अणुशक्ति के युग में और भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं के युग में अहिंसा, अपरिग्रह, आत्मवाद की बड़ी भारी आवश्यकता है।

आत्सवाद का अर्थ है-अस्तित्ववाद। हम जब तक आत्मवाद को स्वीकार न करें तब तक हमारे आन्तरिक व बाह्य किसी भी काम के नहीं रहते। यह सब भगवान महावीर का उपदेश है। भगवान ने कहा-संसार में ऐसे अनेकों जीव हैं जो अपने आप को नहीं जानते कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? इन सब बातों को समझने के लिए हमें महान् पुरुषों की शरण में जाना पड़ेगा। इस समय आप इस प्रकार का जो ग्रन्थ समर्पित कर मेरा अभिनन्दन कर रहे हैं यह मेरा अभिनन्दन नहीं है। मेरे अभिनन्दन की कोई आवश्यकता भी नहीं थी। यह अभिनन्दन तो भगवान् की वाणी का है। भगवान के द्वारा बतलाये हुए उस मार्ग का अभिनन्दन है। संयम व आराधना का अभिनन्दन है। इस माध्यम को लेकर कोई जैन आचार को समझना चाहे, जैन वाणी को, जैन सिद्धान्तों को समझना चाहे तो यह सामग्री इस ग्रन्थ में मिलेगी।

पूज्य गणिवर्य्य श्री मणिप्रभसागर जी म. ने जयपुर पधारकर मुझ पर जो अनुग्रह किया है उसके लिए मैं उनकी करबद्ध अनन्तशः वन्दना करती हूँ।

महामहिम राज्यपाल महोदय

पूज्या सज्जन श्रीजी के चरणों में कोटि वन्दना ! जब मेरे सामने यह प्रस्ताव आया कि महासती जी सज्जनश्रीजी का अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जा रहा है तो मेरे मन में एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि जिसने जीवन के 81 वर्षों

को कठिन साधनामय जीवन में बिताया, चलकर उनके एक बार दर्शन तो कर लूँ। ऐसी महान् विभूतियाँ युगों में कहीं एक पैदा होती है। जिसका केवल समाज ही नहीं पूरा विश्व गुणगान करता है। यहां आकर मैंने जो देखा, उसने वास्तव में मेरी विचारधारा को एक नया रूप दिया है। जैन दर्शन व समाज का थोड़ा बहुत अध्ययन करने का अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ है। मैंने पाया कि 'जैन' शब्द जिन से उत्पन्न हुआ है। 'जिन' का लौकिक अर्थ है —ज्ञान। उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए जिसने लौकिक सुखों का परित्याग कर दिया, जिसने माया-मोह का त्याग कर दिया, सांसारिक बन्धनों को तोड़ा, वही तो जिन है। उनको मानने वाले बन्धु ही जैन कहलाते हैं।

मैं आपको बताऊँ—हम यदि कर्मकाण्डों में चलते रहे तो उन कर्मकाण्डों में बहुत सी बातें—चीजें ऐसी थीं जो जीव मात्र के लिए दुःखदायी थीं। जैसे वैदिक कर्मकाण्ड के अनुसार राजा-महाराजाओं का अश्वमेघ यज्ञ, या इसी प्रकार का अंग यज्ञ, जिसमें कि पशुओं का वध किया जाता था और वह यज्ञ बहुत बडी सफलता व कामना का सम्बल माना जाता था। इन सब बातों को सोचते हुए हमारे महर्षियों ने कुछ और सोचा, गौर किया कि आखिर हम जिस देश में रहते हुए आर्ष वचन का दिग्भान करते हैं कि "जो कुत्ते में और चाण्डाल में व एक महान् ज्ञानी के जीव में कोई फर्क नहीं समझता, वही पण्डित है।" और यहां क्या हो रहा है ? यह काल करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व का था जबकि भगवान महावीर अवतरित हुये और तभी बुद्ध का भी अवतरण हुआ।

संयोग से दोनों क्षत्रियकुल के थे और उनके ही खानदान में यह कुरीतियां व्याप्त थीं। उन्होंने विद्रोह का झण्डा उठाया व बताया कि सभी जीव समान हैं। सभी जीवों पर दया करो। जब तुम आत्मा के साथ अन्याय करते हो तो, भगवान के प्रति अन्याय करते हो। इससे तुम लोगों का उत्थान नहीं हो सकता। इसी बात कोलेकर भगवान ने कहा—जीओ और जीनो दो, 'आत्मवत्सर्वभूतेषु'। वे आर्ष वचन अब कहां हैं ?"

आपको पता होगा, जैन कोई साम्प्रदायिक धर्म नहीं, बल्कि यह एक दर्शन है। दर्शन का अभ्यास करके मानव मात्र उन विचारों को मानने लगता है जिसको कि महाप्रभु ने हमें बतलाया व दिखाया। इस दर्शन का अभ्यास न करें तब तक आप स्वयं को अपूर्ण ही समझें। दर्शन ही किसी धर्म का मूल तत्त्व होता है। जब तक मूल दर्शन को नहीं समझेंगे, तब तक धर्म व उसके सिद्धान्तों को भी हम नहीं समझ पायेंगे।

इसी कड़ी से जुड़ी पूज्या सज्जन श्री जी का जीवन प्रारम्भ से ही त्यागमय रहा है। त्याग किसका होता है ? जो अपना प्रिय होता है, जिसको हम चाहते हैं, उसी का त्याग होता है। पूज्या सज्जन श्रीजी माता-पिता, धन, कुटुम्ब, परिवार सब का त्याग करके महान् आत्मा बन गईं। यही होता है त्याग, वैराग्य।

आज अणुबम का बादल हमारे सिर पर मंडरा रहा है। हम निरन्तर विनाश के चक्कर में फंसते जा रहे हैं। हम अपनी मानवता व सज्जनता को खोते चले जा रहे हैं। किन्तु महान् पुण्य से ऐसी विभूतियां, ऐसे विषम वातावरण में प्रकट होकर अपनी वाणी से जनमानस को आश्वस्त करती हैं। अतः समय-समय की अपनी आवश्यकता होती है। हमें इस अभिनन्दन के उपलक्ष में नियम लेना है कि जीवन तो सब जीते हैं, अपने जीवन की तो सब रक्षा करते हैं, किन्तु जो दूसरे जीव की रक्षा करता है वही भगवान की रक्षा करता है। आज आप एक ऐसी महान् साध्वी के सामने बैठे हैं अतः मेरी अपील है कि आज यदि आप अपनी जैन एकता के रूप में, अपनी सम्पत्ति का एक अंश यदि अकाल राहत के लिए दें तो बहुत बड़ा उपकार का काम होगा। पीड़ित लोगों को राहत मिलेगी।

परम पूज्य श्री मणिप्रभसागर जी म.सा.

प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म. के अभिनन्दन समारोह पर मैं उपस्थित हुआ, इसके लिए प्रवर्तिनी श्रीजी ने अपने उद्‌बोधन में मेरा आभार व्यक्त किया, निश्चित तौर पर मैं एक तरह से शर्म से झक गया। इसमें आभार जैसी कोई बात नहीं। प्रवर्तिनी श्री का अभिनन्दन हो और मैं उपस्थित न होऊँ ऐसा सम्भव नहीं। और इसका कारण यही है कि ज्योंही मैंने दीक्षा ली, तब पू. आचार्य श्री के साथ पावापुर में मेरा दूसरा चातुर्मास था। उस समय प्रवर्तिनी श्रीजी का चातुर्मास भी वहीं था। मेरा अध्ययन काल चल रहा था। प्रवर्तिनी श्री ने मुझे 'लघु सिद्धान्त कौमुदी" आदि का अध्ययन करवाया था, अतः वे मेरी उपकारी हैं। अपने उपकारी का अभिनन्दन हो और मैं न आऊँ ? यदि आता हूँ तो आभार जैसी कोई बात नहीं। यह तो मेरा निजी कर्तव्य है।

जैसा कि अभी राज्यपाल महोदय एवं लोढ़ाजी ने जैन धर्म की विशिष्टता के बारे में बताया। जैन दर्शन की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि आज सारा संघ एकत्रित होकर प्रवर्तिनी श्री का अभिनन्दन चतुर्विध संघ की निश्रा में कर रहा है।

यदि हम ध्यान से देखें व जरा गहराई में जाकर सोचें तो पायेंगे कि जैन दर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं है, जैन दर्शन कोई जाति नहीं है, वह तो ऐसा दर्शन है, जिसके

दर्पण में हम स्वयं की आत्मा को देख सकते हैं। यह तो बिल्कुल ऐसी ही बात है कि जिस भी तत्त्व का दर्शन होगा, हर तत्त्व में दर्पण का अपना कार्य है। हमारी दशा यदि इस समय इतनी कटुता से व नाना विचारों से भरी है तो इसका कारण है कि हमने अभी तक जैन धर्म को देखा तो सही पर जैन-दर्शन को समझा नहीं। जैन दर्शन को जब तक सम्प्रदाय के रूप में हम मानेंगे, तब तक हमारे भीतर की कटुताएँ समाप्त नहीं हो सकतीं। यदि धर्म के रूप में मानें, विकास के रूप में मानें तो यही दर्शन जीवन में क्रान्ति ले आएगा।

हमारी दशा बड़ी विचित्र है। मैंने एक बार अखबार में पढ़ा था–एक व्यक्ति ने एक टेबलेट निकाली, एक गोली का आविष्कार किया तथा अखबारों में बड़े विज्ञापन छपाये कि जो भी एक गोली खा लेगा, उसका मोटापा कम हो जाएगा। जो भी शरीर से मोटे थे उन सबने विज्ञापनों को पढ़कर गोली मंगवाना शुरू किया। 500 रुपये की थी एक गोली। उस गोली में कुछ हिदायतें लिखी थीं। विज्ञापन में भी स्पष्ट लिखा था कि इसको पानी से निगलने की आवश्यकता नहीं। यह गोली पीढ़ी दर पीढ़ी काम आएगी। लोगों में बड़ी उत्सुकता जगी। हिदायतें लिखी थीं कि सुबह ही सुबह गोली को दायें हाथ में धारण कर फिर रामलीला मैदान तक एक चक्कर लगायें। उसके बाद घर जायें। फिर दायें हाथ से गोली को बायें हाथ में लें व एक कि.मी. फिर चलें। यह प्रथम हिदायत। उसके बाद गोली को हाथ में रखकर घर में कमरे के अन्दर एक कागज रखें। वह कागज पांच बाई पांच इन्च का होना चाहिये। 8 फुट दूर कागज को रखकर गोली का निशाना कागज पर लगायें। यदि गोली कागज से दूर गिर जाये तो नियम लें कि उस दिन लूखी (बिना घी की) रोटी व दाल के सिवाय कुछ नहीं खायेंगे। और यदि गोली संयोग से कागज पर निशाना लगा जाये तो 8 बार राम, कृष्ण - परमेश्वर का नाम लेकर दुबारा उसका प्रयोग करें।

मैंने समझा–गोली तो मात्र बहाना था। मूल उद्देश्य था मोटापा कम करना। इसी प्रकार सारे सम्प्रदाय बहाने हैं, अपना मूल उद्देश्य है—स्वयं की आत्मा का दर्शन करना, स्वयं को देखना, भीतर की सारी बुराइयों को निष्कासित करना।

इस प्रकार अन्त में युवा मनीषी महाप्राज्ञ श्रद्धेय गणिवर्य्य महोदय ने जो मांगलिक प्रवचन दिया वह न केवल जनमानस को प्रभावित करने वाला एवं विद्वत्ता-पूर्ण था अपितु उनकी प्रांजल एवं साहित्यिक भाषा तथा रोचक शैली बड़ी ही हृदयग्राही थी। सुन्दर शैली में गुंथा बड़ा ही सारगर्भित था आपका प्रवचन जिसे सुनकर उपस्थित जन समुदाय भाव-विभोर हो उठा। लोगों को इतना आनन्द आ रहा

था कि सूर्य मध्याह्न की ओर तेजी से गति कर रहा था, उसकी तीव्र किरणें धरती के तापमान को प्रचण्ड बना रही थीं, फिर भी सभी यथावत् बैठे थे और समारोह के आनन्द-रस का पान कर रहे थे। अन्त में पूज्य गणिवर्य्य महोदय ने अपनी मधुर वाणी से मांगलिक श्रवण कराई। महावीर प्रभु, गुरुदेव, जिनशासन व प्रवर्तिनी महोदया की जय के साथ सभा विसर्जित हुई। उसी दिन शिवजीराम भवन में श्रीमान् विजयचन्द जी सा. नरेन्द्र कुमार जी सा. गोलेच्छा (जो पूज्याश्री के देवर के लड़के हैं) की ओर से स्वधर्मी वात्सल्य का आयोजन किया गया जिसमें चारों ही समाजों के लोग सादर आमन्त्रित थे। गोलेच्छा बन्धुओं ने बहुत ही उल्लासपूर्वक स्वधर्मी भक्ति का लाभ लिया।

पूज्या श्री के अभिनन्दन समारोह के सभी कार्यक्रम बहुत ही भव्य व सुन्दर ढंग से सम्पन्न हुये। इस ऐतिहासिक कार्यक्रम की परिसम्पन्नता के अनन्तर मध्याह्न में विचक्षण भवन में अखिल भारतीय खरतरगच्छ संघ की मीटिंग हुयी जिसमें संघ के विकास से सम्बन्धित उपयोगी चर्चाएँ की गयीं।

पूज्य गणिवर्य्य महोदय से विनती एवं जयपुर चातुर्मास

पूज्य गणिवर्य्य महोदय के मधुर एवं आध्यात्मिक प्रवचनों से जयपुर की जनता अत्यन्त प्रभावित थी, अतः चाहती भी यही थी कि अबकी बार (वर्ष 2046) श्रद्धेय गणिवर्य्य श्री के चातुर्मास का लाभ जयपुर संघ को ही मिले। इस उद्देश्य से आप श्री से विनती की गयी, किन्तु गुरुदेव श्री को पालीताना मंदिर व धर्मशाला का कार्य पूरा करवाना था। आपका पालीताना पधारना अत्यन्त आवश्यक था; इसके उपरान्त भी गणिवर्य्य श्री ने यही फरमाया कि—'जैसा प्रवर्तिनी श्री जी सा. फरमायेंगी, वैसा ही करूँगा।'

पूज्या प्रवर्तिनी महोदया की इच्छा भी यही थी कि आने वाला चातुर्मास पूज्य गणिवर्य्य श्री की पावन निश्रा में ही हो, तथा उनके प्रवचन श्रवण का अपूर्व लाभ सबको मिलता रहे। अतः एक दिन पूज्या श्री ने गुरुदेव श्री से अर्ज की—"पूज्यवर! आप श्री का यह चातुर्मास जयपुर की पावन भूमि में हो और आपके प्रवचन-श्रवण एवं सन्निध्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो, ऐसी मेरी आन्तरिक भावना है। अभी तो आप इधर पधारे हुये हैं, चातुर्मास भी निकट आ रहा है, अतः आपकी निश्रा में रहने का सहज अवसर प्राप्त हो रहा है, तो इससे वंचित न कीजिएगा, ऐसी करबद्ध प्रार्थना है। भविष्य में न जाने कब, ऐसा मौका आयेगा। फिर इस जीवन का भी क्या भरोसा है? नदी किनारे का वृक्ष है, न जाने कब मृत्यु का प्रवाह आये और कब यह जीवन-वृक्ष ढ़ह जावे। अतः, प्राप्त सान्निध्य का सदुपयोग करने का सुअवसर प्रदान करियेगा।"

पू. गणिवर्य्य श्री ने जैसे ही प्रवर्तिनी श्री के ये शब्द सुने, उसी क्षण आपने फरमाया—"महाराज श्री ! आपकी अन्तर्भावना का सहज सम्मान करना मेरा प्रथम कर्तव्य है; किन्तु आने वाले दिनों में मुझे कई काम सम्पन्न करवाने हैं, यथा—पालीताना में मन्दिर एवं धर्मशाला का, मांडवाला में गुरुमन्दिर का तथा अन्य कई ग्राम-नगरों में प्रतिष्ठादि कार्य । अतः इससे अगले वर्ष का चातुर्मास मैं अवश्य यहाँ करूँगा । ऐसा आप निश्चित समकिये ।"

पर गुरुवर्या ने पुनः अर्ज की—"भगवन् ! तब तक मैं कहाँ रहूँगी ?"

गणिवर्य श्री ने कहा—"यह आप क्या कह रही हैं ? अभी तो वर्षों तक आपको शासन की सेवा करनी है । शासन व गच्छोन्नति के लिए आप श्री ने अनेक कार्य किये हैं व अभी और करने शेष हैं । गच्छ को आप जैसी कुशल नेत्री की तो महती आवश्यकता है ।" पूज्याश्री ने फरमाया—"भगवन् ! क्या बैठी ही थोड़े ही रहूँगी । अब तो उम्र का भी तकाजा है और सृष्टि का यह अकाट्य नियम है कि जो आया है उसे जाना अवश्य है, अतः मेरा सानुग्रह निवेदन है कि यह चातुर्मास यहीं कराकर सान्निध्य का सौभाग्य प्रदान करें ।" पूज्य गणिवर्य्य श्री ने कहा—"महाराज श्री ! मैं आपकी अन्तःकरण की भावना को तोड़ नहीं सकता । आपके निर्देश की उपेक्षा नहीं कर सकता । फिर भी कुछ सोचने के लिए अवकाश दीजिए ।" गुरुदेव श्री के कथन से मन में बारह आना विश्वास जम गया था कि अब तो आप चातुर्मास के लिए अवश्य स्वीकृति फरमा देंगे ।

एक दिन व्याख्यान के पश्चात् संघ के सभी वरिष्ठ सदस्यों ने गुरुदेव से अतिआग्रहपूर्वक विनती की । हम सभी अनुमान लगा रही थीं कि गुरुदेव श्री का प्रत्युत्तर अब क्या होगा; 'हाँ' में होगा अथवा 'ना' में । हमारे साथ-साथ उपस्थित श्रावक-श्राविका भी प्रतीक्षारत थे—पूज्य गणिवर्य्य महोदय के मुखारविन्द से कुछ सुनने के लिए । कुछ क्षणों के पश्चात् सहसा पूज्य गणिवर्य्य श्री ने फरमाया—"मातृस्पदा पूज्या प्रवर्तिनी महोदया की आन्तरिक भावना का सम्मान करता हुआ तथा संघ की विनती को मान देता हुआ वि. सं. 2046 का चातुर्मास जयपुर में करने की स्वीकृति प्रदान करता हूँ ।"

जैसे ही पूज्य श्री के ये शब्द सुने कि उपस्थित जनसमूह व संघ के वरिष्ठ सदस्यों ने तालियों की गड़गड़ाहट, जिनशासन व दादा गुरुदेवों की जयनाद के साथ सारे विचक्षण भवन को गुँजा दिया । सभी के चेहरों से प्रसन्नता के उत्फुल्ल-भाव व्यक्त हो रहे थे । स्वयं गुरुवर्य्या श्री को भी आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता हो रही

अभिनन्दन समारोह में भावोल्लासपूर्वक कम्बली औढाने की मुद्रा में पूज्य गणिवर्य श्री मणिप्रभ सागर जी म.सा.

अभिनन्दन समारोह 20.5.1989

राजस्थान के राज्यपाल श्री सुखदेवप्रसाद जी प्रवर्तिनीश्री जी को अभिनन्दन ग्रन्थ-'श्रमणी' समर्पित करते हुए।

मृदु-मधुर तेजोमयी वाणी में विशाल जनसमूह को उद्‌बोधन

अभिनन्दन

समारोह में उपस्थित विशाल जनसमूह

श्रद्धेय गणिवर्य श्री मणिप्रभ सागर जी म.सा. द्वारा प्रवचन एवं
आर्यामण्डल के साथ विराजित पू. प्रवर्तिनी श्रीजी

समारोह

विशाल मंच पर आसीन विशिष्ट अतिथिगण एवं भाषण करते हुए श्री पुखराज जी लूनिया

समारोह में पूज्या प्रवर्तिनी श्रीजी की दिव्य जीवन झांकी प्रस्तुत करती हुयीं विदुषीवर्या श्री शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

अपनी शिष्या-मण्डली के साथ चैत्य-वन्दन करती हुयीं पूज्या प्रवर्तिनी श्रीजी

थी कि कितनी सहजता व सरलता है गुरुदेव में, जो अपने सभी बड़े-बड़े कामों को गौण करके, मेरी भावनाओं को सम्मान देते हुए जयपुर चातुर्मास की अनुमति प्रदान कर दी है ! हम सभी बड़े प्रसन्न थे।

चातुर्मास में अभी डेढ़-पौने दो महीने शेष थे, अतः पूज्याश्री के परामर्श से गुरुदेव समीपस्थ क्षेत्रों में—मालपुरा, केकड़ी, सरवाड़, विजयनगर आदि के श्रावकों का अत्यन्त आग्रह होने के कारण कुछ समय के लिए पधार गये। इसी बीच पूज्याश्री ने अपने साध्वी-मंडल की प्रियदर्शनाजी आदि श्रमणियों को नागौर, सम्यग्दर्शना श्री जी आदि को कोटा, हर्षयशा श्री जी व मुदितप्रज्ञा श्री जी को जोधपुर की ओर चातुर्मास करने हेतु प्रस्थान करवा दिया। जयपुर से बाहर चातुर्मास करने वाली साध्वियों के मन में यह दुःख रहा कि वे गुरुदेव के जयपुर चातुर्मास में उनका सान्निध्य लाभ नहीं ले पायेंगी।

चातुर्मास प्रारम्भ :

पूज्य गुरुदेव निश्चित कार्यक्रम के अनुसार मालपुरा, केकड़ी आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए, जैनशासन की प्रभावना करते हुए चातुर्मास हेतु जयपुर पधारे। आषाढ़ शुक्ला नवमी को शुभ मुहूर्त में पू. गणिवर्य्यश्री का जयपुर संघ ने बड़ी ही धूमधाम एवं ठाठ-बाट के साथ भव्य नगर प्रवेश करवाया। और, उसी दिन से प्रतिदिन व्याख्यान का क्रम प्रारंभ हो गया। पूज्य गुरुदेव की सतत् प्रवाहित मधुर पयस्विनी, आध्यात्मिकता से ओतःप्रोत संवेदिनी-निर्वेदिनी, साहित्यिक, लच्छेदार वाणी श्रोताओं के मन को सहज ही आकर्षित करती थी। साथ ही 'जटाशंकर' के मनमोहक दृष्टान्त सुनकर कर तो समा में जादू का-सा समा बंध जाता था। उपस्थित जन समूह के होठों पर एक मधुर मुस्कान छा जाती थी। व्याख्यान के विषय का चयन भी उतना ही सुन्दर था। वह था—1444 ग्रन्थों के रचयिता आचार्य हरिभद्र सूरि द्वारा रचित 'धर्मबिन्दु ग्रन्थ', जिसमें मार्गानुसारिता के 35 गुण, अर्थात् श्रावकों का सम्पूर्ण आचार वर्णित है। साथ ही जन-जन के मन को आकर्षित करने वाला 'महाबल मलया चरित्र' प्रवचनों के रस को शतगुणित कर रहा था। इस प्रकार प्रवचनों में श्रोताओं की संख्या दिनानुदिन बढ़ती ही जाती थी। विचक्षण भवन का विशाल हॉल भी संकीर्ण होने लगा था। लोगों की कतार सीढ़ी तक पहुँच जाती थी।

चातुर्मास हेतु जयपुर में विद्यमान साध्वी समुदाय के साथ श्रद्धेया प्रव. महोदया श्री स्वयं भी व्याख्यान श्रवण हेतु नीचे हाल में पधारती थीं। इस प्रकार बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में चातुर्मास हो रहा था।

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व में जयपुर के लोगों का अधिकाधिक संख्या में आवागमन, उनका आन्तरिक उत्साह तथा धार्मिक भावना बड़ी ही दर्शनीय, प्रशंसनीय एवं अनुमोदनीय थी। इस बार तो श्रद्धेय गुरुदेव का चातुर्मास होने से कुछ विशेष ही रौनक थी। माहौल बड़ा ही दर्शनीय था। पर्युषण पर खूब धर्म लाभ हुआ तथा लोगों ने एक नयी आध्यात्मिक ऊर्जा अर्जित की। कुल मिलाकर यह चातुर्मास जयपुर के लिए अत्यन्त उपयोगी एव उत्साहवर्धक रहा।

शशिप्रभाश्री जी का ऑपरेशन

इसी बीच शशिप्रभाश्री जी किसी स्त्री विशेष रोग से आक्रान्त हो गईं। व्याधि क्रमशः बढ़ने लगी। इस व्याधि की जानकारी भी तब मिली जब एक दिन सेठ श्री घीसीलालजी सा. गोलेच्छा की धर्म - पत्नी (जो पूज्या प्रवर्तिनी श्री जी की संसार पक्षीया देवरानी हैं) ने महाराज श्री को कुछ उदास-सा देखा। पूछने पर व्याधि की जानकारी मिली। तुरन्त उन्होंने अपनी पुत्र-वधू दीपिकाजी (पारसचन्दजी गोलेच्छा की धर्म-पत्नी, जो कुछ माह पूर्व ही इस बीमारी का ऑपरेशन करा चुकी थीं और प्रायः सभी लेडी डाक्टरों से परिचित थीं) को तुरन्त महाराज श्री के पास भेजा। दीपिकाजी ने सारी बात बतायी और आग्रहपूर्वक इलाज के लिए कहा। मौन स्वीकृति पाकर शीघ्र ही ऑपरेशन क्रिया में अत्यन्त निष्णात लेडी डॉक्टर सुधाजी गर्ग से बातचीत की गयी। दीपिकाजी के कारण शीघ्र ही सारी जाँच व सोनोग्राफी आदि हो गईं। संध्या के समय रिपोर्ट आयी तो ज्ञात हुआ कि गर्भाशय में गाँठ है, शीघ्र ही ऑपरेशन कराना पड़ेगा। दीपिका जी ने पूज्या प्रवर्तिनी श्री को स्थिति बतायी और साथ ही यह भी कह दिया कि ऑपरेशन सम्बन्धी सारी व्यवस्था उनकी ओर से होगी।

विचार-विमर्श के पश्चात् 'ऑपरेशन अभी ही कराना है' ऐसा निर्णय ले लिया गया। पू. प्रवर्तिनी महोदया ने शशिप्रभा श्रीजी से कहा मैं स्वयं तुम्हारे साथ रहूँगी, तुम चिन्ता न करो। वे स्वयं भी यही चाहती थीं। यद्यपि ऑपरेशन का भय दिमाग में था तथापि प्रवर्तिनी महोदया का सान्निध्य रहेगा, इसकी मन में प्रसन्नता थी।

दूसरे ही दिन चाँदपोल गेट के बाहर जनाना हॉस्पिटल में डाक्टर से बात की गयी। 28 सितम्बर को ऑपरेशन होना था, तदनुसार कॉटेज वार्ड की व्यवस्था कर ली गयी। 27 सितम्बर को प्रातः शुभ चौघड़िये में सभी साध्वी - मंडल से विदा लेकर तथा पूज्य गणिवर्य महोदय से मांगलिक श्रवण कर हॉस्पिटल के लिए शशिप्रभाश्री जी ने प्रस्थान किया। 28 सितम्बर को प्रातः प्रतिक्रमण, पाठ माला,

जाप ध्यान आदि सर्व क्रिया से निवृत्त होकर साढ़े आठ बजे ऑपरेशन थियेटर में जाने से पूर्व उन्होंने प्रवर्तिनी गुरुवर्य्या श्री के मुख से सर्व आन्तरित व बाह्य परिग्रह के साभारी प्रत्याख्यान कर लिये थे।

ऑपरेशन थियेटर में पहुँचने पर शशिप्रभाश्रीजी ने डॉक्टर से कहा—डॉक्टर साहब, मेरा नम्र निवेदन है कि बने जहाँ तक दो कार्य मेरे लिये न करें : प्रथम तो मेरे खून न चढ़ायें, द्वितीय मेरे मूत्र-नली न लगायें। डॉक्टर ने उनकी दोनों बातें स्वीकार कर लीं कि यदि 'कन्डीशन' ठीक रही तो आपके बताये अनुसार दोनों ही कार्य मैं नहीं करूँगी।

हुआ भी यही। पूज्या गुरुवर्य्या श्री के आशीर्वाद से तथा स्वयं के जप-तपादि के प्रभाव से ऑपरेशन पूर्णतः सफल रहा। लगभग डेढ़ किलो की गाँठ निकली। 10 दिन तक हॉस्पिटल में ही रहना हुआ, उसके बाद 15 दिन स्टेशन मंदिर, तीन दिन बैराठी भवन। इस प्रकार सभी जगहों का स्पर्श करती हुयीं पूज्या प्रवर्तिनी महोदया अपनी सुशिष्या श्री शशिप्रभा जी आदि के साथ सानन्द पुनः विचक्षण भवन पधारीं। इस बीच तक की सारी व्यवस्थाएं श्री गोलेच्छा जी की ओर से थीं। उन्होंने तन-मन-धन से खूब लाभ लेते हुए महान् पुण्योपार्जन किया।

उपधान तप की प्रेरणा

धर्म-धरा जयपुर नगरी के धर्मनिष्ठ श्रावक-श्राविका वर्ग की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्य गणिवर्य्य महोदय के सान्निध्य में जयपुर नगरी में उपधान तप की आराधना हो। जयपुर संघ की भी इच्छा थी; पर उनकी यह इच्छा साकार रूप न ले पायी। पर आश्चर्य की बात कि पूज्या गुरुवर्य्या श्री की आन्तरिक प्रेरणा की सूक्ष्म तरंग पहुँची टोंक निवासी श्रीमान् सौभागमल जी सा. लोढ़ा के पास। एक अज्ञात प्रेरणा ने उनको प्रेरित किया और उनका सुप्त किन्तु तेजस्वी मानस और मनोभूमि में उपधान कराने की एक सहज ही भावना जागृत हुई कि "अब के गणिवर्य्य श्री के सान्निध्य में उपधान तप की महान् आराधना करानी है।" ऐसा मन में निर्णय लिया और उसे साकारता प्रदान करने की रूपरेखा बनाने के लिए तथा विनती के लिए वे पूज्य गणिवर्य्यश्री के पास जयपुर आये। पहले वे पूज्या प्र. महोदया एवं श्री अविचल श्री जी म.सा. के दर्शनार्थ आये और उनके सामने अपनी आन्तरिक भावना प्रकट की। पूज्या श्री ने तथा पू. प्रधान सा. ने श्रीमान् लोढ़ा जी की सारी बात सुनी और कहा—लोढ़ा जी सा.! आपकी भावना प्रशंसनीय व अनुमोदनीय है। 'शुभस्य शीघ्रम्'—अर्थात् शुभ कार्य में देरी नहीं करनी

चाहिए । गणिवर्य्य श्री की निश्रा में आपकी भावना शीघ्र ही साकार रूप ले, हमारी भी यही भावना है ।

लोढ़ा जी गणिवर्य्य श्री के पास आये । शशिप्रभा श्री जी, जो पू. गणिवर्य्य श्री के दर्शनार्थ गई हुई थीं, ने श्रीमान् लोढ़ा जी की भावना से पू. गुरुदेव को परिचित कराया । पू. गणिवर्य्य श्री ने भी उनकी भावना का बहुत सत्कार किया, पूछा—इस महान् तप की आराधना आप कहाँ करवायेंगे ?

लोढ़ाजी ने कहा—महाराज श्री ! यदि जयपुर वालों का तन-मन से पूर्ण सहयोग प्राप्त हो तो मेरी जयपुर में ही कराने की भावना है, अन्यथा मालपुरा में ।

पूज्य श्री ने कहा—क्षेत्र की दृष्टि से मालपुरा क्षेत्र अति उत्तम रहेगा । फिर जयपुर संघ से बातचीत कर लेंगे । एक दो दिन पश्चात् संघ की मीटिंग हुई, सब कामों की रूपरेखा बनाई गई । प्रायः सभी ने मालपुरा का ही निर्णय दिया । गुरुदेव श्री ने मुहूर्त्त देखा और मिगसर सुदी तीज के शुभ मुहूर्त में मालपुरा में उपधान कराने का निर्णय हो गया । पूज्य गणिवर्य्य महोदय ने पूज्या श्री से कहा—मातेश्वरी ! आपकी प्रेरणा से उपधान का निर्णय तो हो गया है, पर उपधान में आपश्री अपनी शिष्या-मंडली सहित उपस्थित होंगी, ऐसा निर्णय भी आपको अवश्व-मेव लेना होगा । पूज्या श्री ने फरमाया—मेरी शारीरिक अवस्था ठीक होगी तो आपश्री की आज्ञा अवश्य ही शिरोधार्य करूँगी, अन्यथा शिष्या-मंडली को तो अवश्य ही भेजना है ।

इस प्रकार जयपुर में पूज्य गुरुदेव गणिवर्य्य श्री का वह चातुर्मास बड़ी ही धूमधाम के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ । कुल मिलाकर सभी कार्य बड़े ही सुन्दर व व्यवस्थित ढंग से हुये । साथ ही एक सुन्दर कार्य हुआ । गणिवर्य श्री के प्रवचनों की पुस्तक छपाने का निर्णय लिया गया । शशिप्रभाश्रीजी की प्रेरणा से अथक परिश्रम के साथ सम्पादन कार्य किया विदुषी बालसाध्वी सौम्यगुणा श्री ने तथा 'मणि-मन्थन' के नाम से सुन्दर कृति प्रस्तुत हुयी ।

मालपुरा की ओर प्रस्थान

परम श्रद्धेय, शासन सम्राट् पूज्य आचार्य स्व. श्री कान्तिसागर सूरीश्वरजी म.सा. की (मिगसर बद षष्ठ व सप्तमी) चतुर्थ पुण्य तिथि द्वि-दिवसीय कार्यक्रम के साथ सुन्दर ढंग से सम्पन्न हुई । साथ ही अष्टमी के दिन सायं गणिवर्य्यश्री का उपधान तपाराधना हेतु जयपुर से मालपुरा की ओर बड़े ही ठाठ से समारोहपूर्वक

प्रस्थान हुआ। दादाबाड़ी तक पूज्या प्रवर्तिनी श्री अपनी शिष्या-मंडली सहित पूज्य गणिवर्य्य श्री के साथ पधारीं। विदा लेते हुए पूज्य गणिवर्य्य श्री ने आप से पुनः आग्रह किया कि आप श्री मालपुरा अवश्य ही पधारियेगा। इधर कोटा चातुर्मास सानन्द पूर्णकर साध्वी सम्यक्दर्शना श्री जी आदि 3 साध्वियां मिगसर बदी 11 को सानन्द जयपुर पहुँचीं तथा दो दिन पूज्याश्री की निश्रा में रहकर चतुर्दशी को प्रातः उन्होंने मालपुरा की ओर प्रस्थान कर दिया।

उन्हीं दिनों अयोध्या राम-मन्दिर के विषय को लेकर अनेक स्थानों पर साम्प्रदायिक झगड़े चल रहे थे। जिसकी चपेट में जयपुर भी बुरी तरह से आ गया था। लूटमार, आगजनी आदि काण्ड होने लगे थे। परिणामस्वरूप शहर में कर्फ्यू लग गया। उपधान में पहुँचने वाले श्रावक-श्राविका आदि बहुत ही मुश्किल से पू. प्रवर्तिनी महोदया श्री की वासक्षेप लेकर जयपुर से मालपुरा की ओर रवाना हो सके।

उन्हीं दिनों, अर्थात् मिगसर सुदी नवमी को शुभ मुहूर्त में पू. प्रवर्तिनी महोदया के कर कमलों से वैराग्यवती कु. बेला व अनीता की भागवती दीक्षा का निर्णय हो चुका था। आमन्त्रण पत्रिका आदि भी छप चुकी थीं। किन्तु, कर्फ्यू की भयावहता के कारण संघ व पारिवारिक सदस्यों ने दीक्षा महोत्सव को स्थगित रखना उचित समझा। वस्तुतः, माहौल बड़ा ही भयावह था। या यों कहें कि गुरुवर्य्या श्री के हाथों से दीक्षा का योग नहीं बना था। आखिर दीक्षा स्थगित कर दी गई। भावी के गर्भ में क्या छुपा था, उस समय यह कोई नहीं जानता था।

□

महाप्रयाण

इस परिवर्तनशील संसार में प्रत्येक आत्मा जन्म लेता है तथा आयुष्य की कारा को पूर्ण कर पुनः मृत्यु की गोद में सो जाता है। अर्थात् जो जन्म लेता है उसे एक दिन मरना ही पड़ता है। जो पुष्प विकसित होकर अपने सौरभ से वातावरण को मादक-मधुर बनाते हुये सुगन्धि से भर देते हैं, वे कुछ समय पश्चात मुरझाकर सूख जाते हैं और धूल-धूसरित हो जाते हैं। जो सूर्य प्रभात में प्राचीन दिशा को अरुणमय बनाते हुये अग-जग को प्रकाशित करता है और मध्यान्ह में अपनी प्रखर किरणावली के प्रचण्ड ताप से धरती को तपाता है, उसे ही सन्ध्या को सारी किरणें समेट कर अस्त हो जाना पड़ता है। यहां की (संसार की) प्रत्येक वस्तु क्षणिक और नश्वर है। प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की प्रक्रिया से गुंथित है। द्रव्य में उत्पाद व व्यय पर्याय है तो ध्रौव्य से द्रव्य का अस्तित्व विद्यमान रहता है। पर्याय का परिवर्तन उत्पाद-व्यय कहलाता है।

यद्यपि आत्मा अमर है, तथापि शरीरधारी आत्मा को एक शरीर त्यागकर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। यह संसार में भ्रमण करने वाली आत्माओं का अटल नियम है। सकर्मा आत्माओं को इस चक्र में पिसना ही पड़ता है।

जन्म लेकर कोई न मरे, यह असम्भव है। तीर्थंकर हों या अवतार, उन्हें भी एक दिन शरीर त्यागना ही पड़ता है। संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो मृत्यु से प्राणियों की रक्षा कर सके। यहाँ तक कि विज्ञान भी इसके आगे विवश हो घुटने टेक चुका है। इसका वारण्ट कभी लौटाया जा नहीं सकता, न कभी रद्द ही किया जा सकता है। जीवन की ज्योति इस काल रूपी झञ्झावात के आते ही विलुप्त हो जाती है।

मृत्यु ! ओह कितना भयावह शब्द है ? शब्द की भीषणता से भी अर्थ की भीषणता का विचारमात्र अत्यन्त भयावह लगता है।

यमराज का वारण्ट आते ही क्षण भर में प्राणी क्या से क्या हो जाता है। एक ही क्षण में सारी चेष्टाएं बन्द हो जाती हैं। चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना, पढ़ना-लिखना आदि सैकड़ों शारीरिक क्रियाएँ और संकल्प - विकल्प, चिन्तन - मनन आदि मानसिक क्रियायें अपना पूर्ण संवरण कर लेती हैं। शरीर व

मन निष्क्रिय, निष्पाद, नीरव हो जाते हैं। इन सबको सक्रिय रखने वाला आत्मा जब शरीर को त्याग देता है तब इसके सभी कार्य बन्द हो जाते हैं। आत्मा रहित शरीर शीघ्र ही विशीर्ण होने लगता है, फिर उस शरीर को कोई भी, यहां तक कि प्रिय व्यक्ति भी रखना नहीं चाहता। अपनी-अपनी रीति के अनुसार सभी देश व जातियां उसका विर्सजन कर देती हैं।

सामान्य जीवों के लिए मृत्यु विभीषिका का भयावह रूप है; किन्तु विशिष्ट व्यक्तियों को न जीवन से मोह होता है न मृत्यु का भय। वे जितना जीवन को प्यार करते हैं, अपनी मृत्यु को भी महोत्सव जैसा मानते हैं। साधारण प्राणी परिवार, परिजन, धन-धरती, कुटुम्ब-कबीला, सत्ता-सम्पत्ति एवं शारीरिक भोगों में आसक्त रहता है। उनसे छूटने की तनिक आशंका भी उन्हें कंपा देती है; किन्तु चिन्तनशील मनीषी, जिसका आत्मा ऊर्जस्वित हो ऊर्ध्वगमन का मार्ग स्वीकृत कर चुका है, वह उपर्युक्त परिजनादि की आसक्ति में लिप्त नहीं होता। उसके जीवन में केवल कर्तव्य-पालन ही लक्ष्य होता है। कर्तव्य का पालन करते-करते वह प्रसन्नता से मृत्यु का आलिंगन कर लेता है। जो अपनी आत्मा के स्वरूप और ससार की नश्वरता से परिचित है, आत्मा को अमरत्व प्राप्त कराने की साधना में लीन है, विश्व-कल्याण की भावना से जिसका मन आप्लावित है, जिसने जीवन का एक-एक क्षण परोपकार व आत्मचिन्तन में व्यतीत किया है, उसे भला मृत्यु का भय क्यों होगा? शरीर से सबधित उपादानों से विछोह का भय क्यों होगा? वह दुःखी क्यों होगा?

ऐसे व्यक्ति जब तक जीवन धारण करते हैं, स्व-कल्याण के साथ ही विश्व श्रेय - साधना में भी लगे रहते हैं। और जब परलोक के लिए प्रयाण करते हैं तो जन मानस क्षण-प्रतिक्षण उनके अभाव की अनुभूति करता है। ऐसे महामानवों का अभाव युग-युग तक सालता रहता है। पर, ऐसे गरिमामय तेजस्वी व्यक्ति के धनी मरकर भी अमर रहते हैं। मृत्यु उनके स्थूल शरीर को नष्ट कर सकती है, पर यशःकाय को नहीं। जैन परिभाषा में ऐसा मरण 'पण्डितमरण' कहलाता है जो संसार में सर्वोच्च कोटि का मरण माना जाता है। ऐसे ही सर्वोच्च कोटि के मरण का वरण किया था—अध्यात्मयोगिनी, आगम-ज्योति, परम श्रद्धेया प्रवर्तिनी महोदया गुरुवर्या श्री सज्जन श्री जी म० सा० ने।

'कर्फ्यू' के कारण ज्योंही वैराग्यवती कु० बेला व कु० अनीता भंडारी की दीक्षा अनिश्चित काल के लिए स्थगित हुई, त्योंही मिसगर सुदी 7 को गुरुवर्या श्री ने शशिप्रभाश्री जी के सामने दादाबाड़ी पधारने का निश्चय प्रकट किया; क्योंकि पूज्या श्री चातुर्मास के पश्चात् शेषकाल में प्रायः दादाबाड़ी पधार जाया करती थीं।

दादाबाड़ी का खुला वातावरण, धूप आदि की सर्व सुविधा तथा स्थंडिल भूमि आदि निरवद्य थी। आज्ञा शिरोधार्य कर शशिप्रभा श्री जी ने पूरी तैयारी कर ली। वे सामान को व्यवस्थित करने में व्यस्त हो गयीं; क्योंकि चार-पांच महीनों के लिए जाना था, अतः साथ में लेने के सामान को व्यवस्थित रूप में बांध लिया।

दादाबाड़ी में पदार्पण

मिगसर सुदी अष्टमी को प्रातः श्री प्रधान-सा आदि को वन्दनादि कर विदाई ली। शिष्या मंडली के साथ दादाबाड़ी के लिए प्रस्थान किया, किन्तु कौन जानता था कि यह विदाई अन्तिम विदाई होगी! पूज्या श्री की शारीरिक स्थिति वैसे स्वस्थ व सामान्य ही थी, एक-दो दिन से कुछ वायु कुपित सी थी; पर आपश्री को यह शिकायत तो प्रायः बनी रहती थी। फिर भी उनकी संयम-साधना एवं आराधना व्यवस्थित व नियमित रूप से चलती थी; इतनी अवस्था होने पर भी उनकी अप्रमत्त दशा अनुकरणीय, दर्शनीय एव प्रेरणास्पद थीं।

दादाबाडी तक पैदल चलने के पश्चात भी उनका मन प्रसन्न था। वहां भगवान व गुरुदेव के दर्शन कर मन आनन्दित हो उठा था। इस प्रसन्न मुद्रा में आप ऊपर छत पर धूप में जाकर विराज गयीं और प्रतीक्षा करने लगीं अपनी प्रिय शिष्या शशिप्रभा श्री जी के आगमन की।

जैसे ही वे आयीं, पूज्याश्री ने बड़ी प्रसन्नता के साथ ऊपर से ही फरमाया- "छोटोड़ा! आज हम चालीस मिनिट में ही यहाँ पहुंच गये, बिना रुके और बिना विश्राम के।" वस्तुतः, दो वर्ष पूर्व उन्हें पक्षाघात का हल्का सा झटका लगा था तथा औषधोपचार के उपरान्त वे ठीक तो हो गई थीं; किन्तु हाथ-पैर के आगे के हिस्से में हल्की-सी झनझनाहट व अड़कन रहती थी; अतः वे विश्राम लेती हुईं शहर से दादाबाड़ी व दादाबाड़ी से शहर पधारती थीं।

एक दर्द का आगमन

पूज्या प्रवर्तिनी श्री के शब्द उनकी दृढ आत्म-शक्ति के परिचायक थे। Strong will power के प्रतीक थे। दो-चार दिन से वायु कुपित हो जाने के कारण उनके शरीर में स्थान-स्थान पर दर्द बना रहता था। प्रायः गैस भी बना करती थी तथा नियमित व्यायाम व दवा के प्रयोग से शीघ्र ही ठीक भी हो जाया करती थी; किन्तु विगत दो-चार दिनों से तो वे इस दर्द की सतत पीड़ा महसूस कर रही थीं। कौन जानता था कि यही दर्द हमारी पूज्येश्वरी को हमसे दूर ले जायेगा!

क्या वह दर्द ही कराल काल का रूप लेकर उपस्थित हुआ था ? किन्तु, ऐसा तो तब कोई भी नहीं जान सकता था। हाँ, पूज्येश्वरी को स्वयं को यह आभास हो चुका था। महाप्रयाण के पूर्व दिन अर्द्धरात्रि के पश्चात् करीब एक-डेढ़ बजे वह अत्यधिक पीड़ादायक दर्द हुआ। पूज्या श्री एक दम उठ कर बैठ गयीं। बेचैनी अधिक होती जा रही थी। उसी पल उन्होंने सर्व सागारी प्रत्याख्यान कर लिये। फिर भी पूज्याश्री समाधिस्थ हो ध्यानलीन हो गयीं। वे एकाग्रचित्त हो आत्मस्थ हो चुकी थीं, फिर भी शरीर तो अपना कार्य कर ही रहा था। एक-दो उबाकियाँ आयीं कि उनकी आवाज से समीप ही सोयी हुयीं शशिप्रभाश्री जी एकदम उठीं और साथ ही अन्य साध्वीजी भी उठ गयीं। पूज्या गुरुवर्या श्री को बैठे देखकर सबने पूछा – "क्या दर्द ज्यादा हो रहा है ?"

पूज्याश्री ने फरमाया—'नहीं, गैस कुछ अधिक बन गयी है, शायद। कोई विशेष बात नहीं है। तुम सब सो जाओ।'

शशिप्रभाश्री जी ने आपके दवा आदि लगाई। स्थिति में आंशिक सुधार आया, पर नींद नहीं आयी। शेष रात्रि जप करते हुए ही व्यतीत की। उस दिन दशमी थी।

एकादशी को प्रातः भी वैसी ही स्थिति बनी रही। फिर भी आपका आत्म-बल इतना मजबूत था कि आपने अपने सभी-कार्य व्यवस्थित ढग से किये। प्रति-क्रमण, माला-पाठ आदि। उनका मन चाहता था, इतनी बड़ी तिथि है, उपवास कर लूँ। इच्छा व्यक्त की अपनी पट्ट शिष्या के समक्ष। प्रत्युत्तर में शशिप्रभा श्रीजी ने बड़े ही विनम्र शब्दों में कहा—पूज्याश्री ! रात्रि से ही आपश्री के गैस अधिक बन रही है, अतः दवा आदि ले लीजिए, ताकि कुछ आराम मिले। पूज्याश्री ने अपनी जग-विश्रुत सरलता के साथ सहज ही स्वीकृति प्रदान कर दी। पर, 'सार्ध-पौरसी तो कर ही लूँ', ऐसा विचार कर उन्होंने प्रत्याख्यान भी ले लिये।

दस बजे लगभग आप मन्दिर पधारीं। शशिप्रभाश्री जी साथ ही थीं। आज आपका चित्त अत्यन्त प्रसन्न था। आपके मन् का भावोल्लास भी दर्शनीय था। एक-एक भगवान के दर्शन इतनी तन्मयता के साथ किये कि उन क्षणों का वर्णन करने में लेखनी समर्थ नहीं है। उनकी भाव-भंगिमा के माध्यम से सहज ही उनकी सर्वात्मना-समर्पित आत्म-भावनाओं का दर्शन हो रहा था। प्रभु-दर्शन के पश्चात् गुरुदेव के दर्शन भी पूज्याश्री ने पूरी श्रद्धा-भक्ति के साथ किये। इसके अनन्तर ऊपर पधार कर पचखाण पूर्ण किये तथा दवा आदि लीं। दर्द पूर्वापेक्षा अब ठीक था, अतः हलका भोजन भी किया।

आहार से निवृत्त हो कुछ समय के लिए लेटकर विश्राम किया, उसी समय आपके समीप ही विराजित शशिप्रभाश्रीजी को सम्बोधित करते हुए कहा—छोटोड़ा ! आज रात्रि को करीब डेढ़ बजे जब गैस का प्रकोप अत्यधिक हो गया और छाती में भी जब बहुत जोर से दर्द होने लगा तो मैंने उसी क्षण सागारी प्रत्याख्यान कर लिये थे। सुनो – 'आहार मुवहि देहं सव्वं तिविहेण वोसिरे।' जानते हो न इसका अर्थ क्या होता है ? अर्थात् चारों आहार—अशन, पान, खादिम, स्वादिम का त्याग। उपधि – अर्थात् सारे द्रव्य और भाव परिग्रह का त्याग। देहं अर्थात् शरीर का त्याग। इन तीनों के सागारी त्याग तो मैंने रात्रि में ही कर लिये, अब भले इस देह से कभी भी मुक्त हो जाऊँ, कोई चिन्ता नहीं।'

इतने स्पष्ट संकेत को भी शशिप्रभाश्री जी समझ नहीं पायीं कि क्या वह वास्तव में पूज्याश्री के महाप्रयाण का निर्देश था ? सम्भवतः पूज्याश्री स्वयं तो सब कुछ जान गयी थीं और उन्हें आभास हो चुका था कि आज का दिन उनके जीवन का अन्तिम दिन है, पर ऐसी कल्पना भी कोई नहीं कर सकता था कि पूज्या गुरुवर्याश्री हम सबको यों असहाय छोड़कर इहलौकिक लीला का संवरण कर लेंगी और हमें सदा-सदा के लिए अपने से पृथक् कर अपनी छत्रछाया से दूर-अतिदूर कर देंगी। पर, वह मौन एकादशी का दिन आ ही गया था।

मौन एकादशी का वह दिन

जैन जैनेतर सभी पर्वों में विशिष्ट पर्व, तिथियों में शिरोमणि तिथि, दिनों में सर्वोत्तम-सर्वोत्कृष्ट दिवस, भरत-ऐरावत आदि क्षेत्रों के अतीत, अनागत व वर्तमान तीर्थंकरों के 150 कल्याणकों की सर्वोत्तम तिथि मौन एकादशी। कल्याणक महापुरुषों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना होती है। उनका प्रत्येक प्रसंग जग के कल्याण के लिए होता है। उनका जन्म भी कल्याण के रूप में होता है तो निर्वाण भी। इस प्रकार च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान व निर्वाण, ये पाँच महान् प्रसंग पंच-कल्याणक माने जाते हैं। इसी प्रकार के 150 कल्याणकों का पावन दिवस मौन एकादशी है। जिस पर्व को न केवल जैन धारा ही मनाती है अपितु हिन्दू, बौद्ध, वैदिक आदि प्रायः सभी धर्म-सम्प्रदाय अपने-अपने ढंग से हर्षोल्लासपूर्वक मनाते हैं।

दोपहर का समय, आप दादाबाड़ी के बाहरी प्रांगण में विराजी हुयी थीं। श्राविकाएं आलोचना का स्तवन गा रही थीं, पूज्याश्री उनको स्तवन की भाव-भाषा अर्थ आदि समझा रही थीं। थोड़ी देर पश्चात् आप डेढ़ सौ कल्याणक का वर्णन करने में लीन हो गयीं। दिन ढलने लगा, प्रभाकर अपनी प्रखर किरणों के तेज को समेटने की तैयारी करने लगा। उसकी गति अस्ताचल पर्वत की ओर तेज हुयी कि पश्चिम

का पीताभ मुख-कमल निस्तेज व मुरझाया-सा लगने लगा। मानो वह किसी अनहोनी के होने की पूर्व सूचना दे रहा हो। पर, किसे मालूम था कि मध्यान्ह के अन्त के साथ-साथ निस्पृह शिरोमणि, आगम-ज्योति, प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्री जी म.सा. के जीवन का अन्त हो जायेगा !

चिर-निद्रा !

जप पूर्ण होने को ही था कि जो दर्द प्रायः हलका हो गया था वही एकदम पुनः तेज हो गया और पूज्याश्री का हाथ सहसा उनके सीने पर गया। चरणों के पास ही विराजीं शशिप्रभाश्री जी ने यह सब देखकर तुरन्त पूछा—क्या दर्द अधिक है ? वे कुछ और पूछ भी नहीं पायीं और न ही पूज्याश्री कुछ उत्तर दे पायीं, पर उन्होंने वात्सल्य भरी दृष्टि से केवल मौन भावों में ही ऐसा अहसास कराया कि दर्द कुछ अधिक हो रहा है।

माला पूज्याश्री के हाथ में थी, सहसा उनके दोनों हाथ जुड़ गये और 'गुप्ति' शब्द कहती हुयीं सहजावस्था में वे सदा-सदा के लिए चिर-निद्रा में लीन हो गयीं। शशिप्रभाश्री जी क्षण मात्र में घटित इस अन्तिम लीला के रहस्य को समझ नहीं पायीं। वे सहज रूप से पूछने लगीं—'गुरुवर्याश्री ! आपको क्या हो गया है ?'

किन्तु, कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। सम्भवतः किसी उत्तर की अपेक्षा भी नही थी। क्योंकि, पूज्याश्री ने अपने अटूट वात्सल्य और असीम कृपा से उन्हें सराबोर कर दिया था, साथ ही अपना अमित बल-सामर्थ्य भी शशिप्रभाश्री जी को प्रदान कर दिया था। एक अद्‌भुत शक्ति का संचार उनमें हुआ, मानों पूज्य गुरुवर्या श्री ने कोई दिव्य शक्तिपात किया हो।

सामान्य रूप से देखें तो वह पल था रोने का, वह क्षण था डाक्टरों को बुलाने का, किन्तु पूज्या शशिप्रभाश्री जी ने बिना विलम्ब किए, उसी क्षण गुरुवर्याश्री को सारे व्रत-प्रत्याख्यान आदि करा दिये। पर, वे भाग्यशालिनी तो पहले ही पूर्ण सावधान थीं—सारे ही व्रत-प्रत्याख्यान आदि स्वय ने पहले ही ग्रहण कर लिये थे और पण्डित-मरण की राह पकड़ ली थी।

तत्काल उपस्थित साध्वी-मण्डल एवं श्राविका वर्ग ने अरिहत-सिद्ध की अखण्ड धुन प्रारम्भ कर दी जो लगभग एक घंटे तक चली। उधर कतिपय योग्य चिकित्सक को लाने का अथक् प्रयास चालू कर दिया। इधर से उधर कारें दौड़ायीं। एक घंटे तक यह सब प्रयत्न चले, किन्तु सब निष्फल रहे। कोई डाक्टर नहीं आया। इसको पूज्याश्री की महान् पुण्यायी कहें या हमारा दुर्भाग्य ! तीन

बजकर बीस मिनिट पर ही इस नश्वर शरीर का परित्याग कर वह पुण्य-पुनीता, तपःपूत आत्मा स्वर्गलोक को पवित्र बनाने हेतु महाप्रयाण के पथ पर बढ़ गयी थी।

एक आदर्श पण्डितमरण

पूज्या प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्री जी म.सा. का तपःपूत संयमी जीवन तो आदर्श रूप था ही उनकी मृत्यु भी कोई कम आदर्श रूप नहीं थी। ऐसा पण्डित-मरण तो भाग्यशालियों को ही सम्प्राप्त होता है।

जिन भाग्यशालियों ने उनकी वह अन्तिम छवि देखी उनके मानस पटल पर वह सदा-सदा के लिए अंकित हो गयी। कितनी भव्यता थी उस मुख-मण्डल पर! कैसी अपूर्व, स्निग्ध, कान्तिमयी शान्ति थी उनके वदन-सरोज पर! कैसी दिव्य समाधि थी! दर्शन करने वाले कृत-कृत्य हो गये, उनके मस्तक उस तपःपूत संयम-साधिका भगवती के चरणों में स्वतः ही झुक गये।

सर्वत्र उदासी

पुण्यशालिनी, पूज्येश्वरी प्रवर्तिनी महोदया के स्वर्गप्रयाण का संवाद विद्युतवत् पूरे नगर में फैल गया। श्रमणी-मण्डल एवं संघ पर शोक की कृष्ण-कादम्बिनी छा गयी। जैन समाज के लिए स्वनाम धन्या प्रवर्तिनी महोदया के देहावसान का समाचार वज्रपात सदृश्य था। दूर-दूर से जैन समुदाय दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा। भक्त श्रद्धालुगण अपने हृदयों को सुदृढ़ बनाकर आ रहे थे और अध्यात्म-योगिनी के गतप्राण शरीर के दर्शन कर अश्रुओं का अर्घ्य चढ़ाकर उदास मन लौट रहे थे। जयपुर के श्री संघ को तो ऐसा अनुभव हो रहा था मानो जैन समाज की कोई अमूल्य निधि सहसा खो गयी हो। सचमुच गुरुवर्याश्री एक अमूल्य रत्न ही थीं। आबाल वृद्ध नर-नारी, साधारण-विशिष्ट, शिक्षित - अशिक्षित, प्रायः सभी के चेहरों पर गहरी विषाद की छाप थी। सबकी जिह्वा पर एक ही बात थी और एक ही प्रश्न था—पूज्याश्री के वियोग से जैन संघ की अत्यधिक और दुष्पूर्य क्षति हुई है। भविष्य में इस क्षति की पूर्ति हो पायेगी या नहीं, दैव ही जानें।

अन्तिम यात्रा की तैयारी

मौन एकादशी का अपरान्ह काल था। जयपुर नगर की अधिकांश संस्थायें, प्रतिष्ठान आदि कर्फ्यू के कारण पहले ही बन्द थे। इधर पूरा संघ शोक-समुद्र में डूबा था। समूचा जैन समाज शोक विह्वल था। नगर भर में शोक-सन्नाटा छाया हुआ था। न केवल चार दीवारी के भीतर अपितु बाहर भी कर्फ्यू का आतंक था।

महाप्रयाण के पश्चात प्रवर्तिनी श्रीजी को शिष्या-मण्डल का अन्तिम वन्दन

महा-प्रयाण

जयपुर के जौहरी बाजार से गुजरती अन्तिम यात्रा का भव्य जुलूस

जयपुर स्थित मोहनबाड़ी में चन्दन-नारियल से निर्मित चिता में धरे
पूज्या श्री के पार्थिव तन का अग्नि—संस्कार करता लूनिया परिवार

स्मृति-सभा को सम्बोधित करतीं विदुषीवर्य्या श्री शशिप्रभा श्रीजी म. सा. एवं
सम्पूर्ण श्वेताम्बर समाज के विशिष्ट महानुभाव

चौराहों पर पुलिस का कड़ा पहरा था। कोई व्यक्ति घर के बाहर नहीं जा सकता था। यद्यपि दो-तीन दिनों से कर्फ्यू में थोड़ी-थोड़ी ढ़ील दी जाने लगी थी, फिर भी स्थिति तनावपूर्ण थी। ऐसी स्थिति में गुरुवर्याश्री की अन्तिम-यात्रा की व्यवस्था संघ के लिए एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में सामने थी। कहाँ तो मोती डूंगरी रोड़ स्थित दादाबाड़ी और कहाँ गलता रोड़ स्थित मोहनबाड़ी। दोनों के बीच लगभग 5 कि मी. की दूरी। फिर, रामगंज, गंगापोल क्षेत्रों से जुलूस ले जाना कोई साधारण कल्पना नहीं थी। सबसे अधिक तनाव और दंगों की आशंका से ग्रस्त ये क्षेत्र ही थे।

फिर भी पूज्या गुरुवर्या श्री की पुण्यायी के प्रभाव तथा संघ के अध्यक्ष, मंत्री तथा अन्य विशिष्ट सदस्यों के प्रयास, श्री पुखराज जी लूनिया, श्री माणकचन्द जी लूनिया आदि की राजनैतिक पहुँच एवं सक्रिय प्रयत्नों से रातों-रात हाथी, घोड़े, बैण्ड-बाजों आदि लवाजमे के साथ अन्तिम यात्रा का जुलूस निकालने की सरकारी आज्ञा मिल गयी। इधर अन्तिम यात्रा किसमें निकाली जाए, यह प्रश्न-चिन्ह भी सामने था। चूँकि दूकानें आदि सब बन्द थीं। किन्तु, क्रमशः ये सभी समस्याएँ हल होती चली गयीं। रातोंरात एक बहुत ही सुन्दर लकड़ी व चाँदी का विमान तैयार कराया गया जिसको चारों ओर से सुनहरी जरी एवं ध्वजाओं आदि से सजाया गया। भव्य कलात्मकता लिए चाँदी का विमान तैयार हो गया।

पूज्या प्रधान पद विभूषिता साध्वीश्री अविचलश्री जी म सा ने गुरुवर्याश्री के पार्थिव शरीर की अन्तिम विसर्जन - क्रिया सम्पन्न करायी। इससे पूर्व अन्तिम स्नानादि संस्कार कर, केशर-चन्दन चर्चित, शुभ्र केसरिया कलात्मक वस्त्रों से अलंकृत कर पूज्येश्वरी की पुनीत गतप्राण देह को चाँदी के विमान में विराजित कर दिया बढ़ गया था। अन्तिम यात्रा की घड़ी निकट आती जा रही थी।

अन्तिम यात्रा

प्रातः लगभग साढ़े नौ बजे महाप्रयाण की शोभायात्रा मोती डूंगरी स्थित दादाबाड़ी से प्रारम्भ हुयी। 'जय-जय नन्दा ! जय-जय भद्दा !!', जैन धर्म की जय !', "भगवान् महावीर की जय !", 'पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा. की जय !" आदि गगन भेदी नारों के साथ श्रावक समुदाय ने विमान को उठाकर कन्धों पर ले लिया और मुख्य मार्ग से गन्तव्य की ओर चल पड़ा। आगे-आगे 'उछाल' होती जा रही थी। वह दृश्य भव्य होता हुआ भी बड़ा ही करुण और हृदयद्रावक था। जन-समूह की आँखों में आँसू थे, वातावरण उदास और गमगीन था। हजारों की मानवमेदिनी साथ चल रही थी। शहर के प्रमुख बाजार—जौहरी

बाजार, माणक चौक, रामगंज बाजार से होता हुआ वह जुलूस सूरजपोल की ओर बढ़ रहा था जहाँ पवित्र तीर्थ मोहनबाड़ी स्थित है।

त्याग, तप, ज्ञान आदि गरिमाओं से दीप्त वह गुरुतर देहयष्टि आज जयपुर के प्रमुख मार्गों से अपना अन्तिम विहार सम्पन्न कर रही थी। भक्त श्रावकों की मण्डली अपनी महान् श्रद्धेया-नेत्री को भग्न हृदय से विदायी दे रही थी और शोक-भारावनत हो मन्थर गति से विमान के साथ-साथ चल रही थी। यथा समय वह विशाल यात्रा अपने पड़ाव पर 'मोहनबाड़ी' जा पहुँची।

जयपुर के पूर्व में अरावली की ऊँची पहाड़ियों के बीच गलता आदि अनेक प्राचीन तीर्थ स्थित हैं। सूरजपोल से ही एक नये प्राकृतिक परिदृश्य के दर्शन होने लगते हैं और मन एक सात्विक श्रद्धाभाव से अभिभूत होने लगता है। शहर का कोलाहल सिमटा-सा लगता है तो वहाँ बसी हरियाली किसी तीर्थ क्षेत्र का आभास देने लगती है। उसी सुखद परिवेश में स्थित है श्वेताम्बर जैन-क्षेत्र 'मोहनबाड़ी', जो समय-समय पर समाज के विभिन्न उत्सवों का केन्द्र तो बनता ही है, पवित्र आत्माओं का स्थायी समाधि-स्थल होने का गौरव भी उसे प्राप्त है।

पूज्या श्री की अन्तिम यात्रा के विशाल जुलूस ने मोहनबाड़ी के विस्तीर्ण परिसर में प्रवेश किया तो पूरा क्षेत्र जनमेदिनी से संकुल दीखने लगा। चारों ओर नर-नारी, जय-जयकार, उदासी और उल्लास। वहीं बनी हुयी थी पूज्या पुण्यश्री जी म.सा. की समाधि। इसी के निकट, मुख्य मार्ग की ओर के अग्रभाग में खाली स्थान का चयन किया गया तथा चन्दन-काष्ठ, नारियल आदि की चिता बनायी गयी। जय-घोषों के बीच गुरुवर्याश्री की पार्थिव देह को अन्तिम संस्कार के लिए चिता पर विराजित किया गया और मन्त्रोच्चार के साथ लूनिया परिवार एवं श्री-संघ के सदस्यों द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी गयी। आकाश पुनः 'प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी की जयकार' से गूँज उठा।

देखते-देखते चिता से ऊँची-ऊँची ज्वालाएं उठकर आकाश की ओर लपलपाती चली जा रही थीं तो उधर शत-शत कण्ठों से निकली जय-ध्वनियाँ प्रवर्तिनी महोदया के पास स्वर्गद्वार तक पहुँचने का प्रयत्न कर रही थीं। लोग इधर-उधर बिखर कर असार संसार और काल-चक्र की गति पर अपनी चर्चा पूरी भी नहीं कर पाये थे कि वह कंचनकाया पूरी तरह भस्मसात हो गयी। लोग उठकर भारी मन लिये पड़ाव से वापिस लौट आये। अपने-अपने स्थान पर शरीर और मन को मज्जित कर, शुद्ध वस्त्र धारण कर सभी पुनः उपाश्रय में उपस्थित हुए तथा मांगलिक श्रवण कर अपने-अपने स्थान पर चले गये।

गुरुवर्या श्री की शिष्या-मण्डली को पूरा घटनाक्रम एक नयी अनुभूति से भर गया। शोक-मग्न भारी हृदय से आवश्यक विधि-विधान, देव-वन्दनादि सम्पन्न किये गये। आज सभी के उपवास थे।

दूसरे ही दिन से मोती डूंगरी स्थित दादाबाड़ी में दशान्हिकोत्सव आरम्भ हो गया जो बृहद् शान्ति-स्नात्र के पश्चात् गुरुदेव की पूजा के साथ सम्पन्न हुआ। उसके पश्चात् शहर में भी बड़े ही उल्लास के साथ दशान्हिकोत्सव हुआ। अन्याय स्थानों पर भी श्रद्धालु भक्तों ने अष्टान्हिक, पंचान्हिक आदि उत्सव सम्पन्न कराये तथा स्थान-स्थान पर गुणानुवाद सभाएं आयोजित कर पूज्याश्री के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की।

मोहनबाड़ी में जहाँ गुरुवर्याश्री का अग्नि-संस्कार हुआ, उस समय वहाँ उपस्थित स्थानीय श्रावकगण ने उस स्थान पर एक भव्य स्मारक एवं साधना-स्थल बनाने का निर्णय ले लिया था। तदनुसार उस स्थान पर श्री संघ की ओर से एक भव्य समाधि-मन्दिर की निर्माण प्रक्रिया चालू है। समाधि का मानचित्र साथ में दिया जा रहा है।

परम श्रद्धेया प्रवर्तिनी श्री जी का दिव्य और उज्ज्वल जीवन अध्यात्म से ओतःप्रोत आदर्श जीवन था जो मानव-मात्र के लिए प्रेरणा पुंज था। मुक्ति-पथ की उस महान् पथिका के चरण-कमलों में हम निरन्तर अनन्तशः भावाभिवन्दन अर्पित करती हैं।

पूज्याश्री की सौम्य, शान्त मुख-मुद्रा, उनका सस्मित वदन-कमल, उनकी अमृतमयी मधुरवाणी, विशाल उदारता, सहज सरलता, अमित गाम्भीर्य, परम पावन संयमी जीवन, गहन आगम ज्ञान, विशुद्ध तत्त्व-चिन्तन आदि आदि अनेक गुणों से युक्त उनकी दिव्यात्मा जहाँ भी हो, वहाँ से हम पर अनुग्रह की वर्षा करती रहे तथा साधनामय जीवन जीने के लिए हमारे अन्तर में शक्ति का संचार करती रहे, हमारा मार्गदर्शन करती रहे, यही शिष्या-मण्डल की हार्दिक अभ्यर्थना है, विनम्र प्रार्थना है, आन्तरिक भावना है।

पुनः उस श्रेष्ठ आत्मा के परम-पावन चरणों में शतशः-अनन्तशः अभिवन्दन !

जय गुरुवर्या श्री !

ॐ शान्ति - शान्ति - शान्ति,

ॐ श्री सज्जन गुरुवर्य्याय नमः

–आर्या प्रियदर्शनाश्री

स्मृति-सूत्र एवं भावांजलियाँ

गुणानुवाद सभा

आगम-मर्मज्ञा, अध्यात्म-साधिका, सरल हृदया, परमपूजनीया महान् साध्वी प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी महाराज के देवलोकगमन पर समस्त श्वेताम्बर जैन समाज की ओर से विचक्षण भवन, मोतीसिंह भोमिया का रास्ता, जयपुर में एक गुणानुवाद सभा का आयोजन किया गया। यह सभा पूज्या प्रधान पद विभूषिता साध्वी श्री अविचल श्री जी म. सा. एवं साध्वी शशिप्रभा श्री के सानिध्य में सम्पन्न हुई। सभा में श्री वर्द्धमान स्थानकवासी संघ के अध्यक्ष श्री उमरावमल जी चौरड़िया तथा मंत्री श्री सरदारमल जी चौपड़ा, श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ के अध्यक्ष श्री कपिलभाई एम. शाह तथा संघ-मन्त्री श्री नरेन्द्रकुमार जी लूणावत, श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा के अध्यक्ष श्री उत्तमचन्द जी सेठिया एवं मंत्री श्री राजकुमार जी बरड़िया तथा श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ की अध्यक्ष श्रीमती जतनकंवर जी गोलेछा एवं संघ-मन्त्री श्री उत्तमचन्द जी बडेर ने दिवंगत पुण्यात्मा के प्रति श्रद्धासिक्त भावांजलियां प्रस्तुत कीं तथा प्रवर्तिनी श्री जी के स्वर्गवास को समूचे जैन समाज की अपूरणीय क्षति बताया। सभी वक्ताओं ने आगम-ज्योति महान् साध्वी जी के गुणों की पुनः-पुनः चर्चा की तथा इस बात पर जोर दिया कि उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिए।

गुणानुवाद सभा में लूनिया परिवार के श्री पुखराज जी लूनिया आदि तथा चौपड़ा परिवार के महानुभावों ने भी अपनी भावांजलियां अर्पित कीं।

अर्हद्-भक्ति महोत्सव

भगवान् और भक्त के बीच भक्ति ही एक मात्र सेतु है, जिसके माध्यम से भक्त स्वयं भगवान बन जाता है। परमात्मा के गुणों में अनुराग को भक्ति कहते हैं — गुणेशु अनुरागः भक्तिः। वह अनुराग दो प्रकार से प्रकट होता है। परमात्मा के गुणों के चिन्तन-मनन से तथा परमात्मा के दर्शन-वन्दन-पूजन-प्रार्थना आदि के माध्यम से। ये निश्चय भक्ति और व्यवहार-भक्ति के ही भिन्न रूप हैं।

इन दोनों भक्तियों के द्वारा संसारी जीव आत्मार्थी बनकर सहज ही सिद्धपद तक पहुँचता है। भक्ति मन, वचन तथा काया से की जाती है। स्व-कर्म पंक का भक्तिरूपी निर्मल जल से प्रक्षालन कर आत्मा को विशुद्ध-पवित्र कर सकें, इसी उद्देश्य से पूज्या गुरुवर्याश्री जी महाराज के स्वर्गगमन प्रसंगे जयपुर स्थित दादाबाड़ी में दशान्हिका महोत्सव सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् शहर में बृहद् पूजा सहित अष्टान्हिका महोत्सव भी मनाया गया। अन्य अनेक स्थानों पर भी इसी प्रकार पूजा महोत्सव आयोजित हुए।

बड़ौदा नगर में जैन कोकिला, समतामूर्ति, स्वर्गीया प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्रीजी म.सा. की सुशिष्याएं आर्या श्री सुरंजनाश्रीजी एवं आर्या श्री मणिप्रभाश्रीजी आदि ठाणा 6 के सान्निध्य में पौष बदी 3 (15.12.89) से पौष बदी सप्तम (19 दिसम्बर, 1989) तक प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म. सा. के स्वर्गगमन पर-स्मृति-समारोह एवं पचान्हिका महोत्सव का आयोजन किया गया। वल्लभ-समाज महिला मण्डल तथा पादरा महिला मण्डल, बड़ौदा के द्वारा पूजा पढ़ायी गयी।

गुणानुवाद एवं स्मृति-सभाएं

पंचाल शोध संस्थान, कानपुर

स्थानीय जैन समाज ने गुणानुवाद सभा का आयोजन कर पूज्या प्रवर्तिनी श्री जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की तथा अनुभव किया कि उनके निधन से सम्पूर्ण जैन समाज की, विशेषकर खरतरगच्छ संघ की अपार क्षति हुयी है।

जयपुर संघ को धन्यवाद दिया गया कि उसने लम्बे समय तक पूज्याश्री की सेवा का लाभ लिया और पिछले दिनों भव्य अभिनन्दन समारोह आयोजित कर एक स्मरणीय कार्य किया।

-हजारीमल बांठिया
कार्यवाहक अध्यक्ष एवं
अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश खरतरगच्छ महासंघ

52/16, शक्कर पट्टी, कानपुर-1
दिनांक : 14.12.89

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ, कलकत्ता

प्रवर्तिनी महोदया के देवलोकगमन के समाचार मिलते ही मिगसिर सुदी 15 को सामूहिक देव-वन्दन किया गया। पौष बदी 4, शनिवार को स्मृति-सभा हुयी जिसमें महाराजश्री के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

उनके स्वर्गवास से केवल खरतरगच्छ को ही नहीं अपितु समस्त जैन समाज को क्षति हुयी है। यथा नाम तथा गुण, महान् विदुषी होती हुयी भी वे अहंकार से

कोसों दूर, निरन्तर स्वाध्यायरत, कषाय रहित जीवन आदि अनेकों गुणों से परिपूर्ण थीं। उनके प्रति स्वतः ही श्रद्धा से शिर नत है। कलकत्ता जैन श्री संघ की ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि !

पी-25, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता–7 –ज्ञानचन्द लूनावत
दिनांक : 27.12.89

गंगाशहर श्री संघ, गंगाशहर–बीकानेर

दिव्यात्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु बीकानेर नगर में दिनांक 14.12.89 को परमपूज्य गणिवर्य श्री जयन्तविजयजी म. सा. तपागच्छ एवं परमविदुषी साध्वी श्री मुक्तिप्रभाजी म. सा. की निश्रा में सभा रखी गयी।

परमश्रद्धेया प्रवर्तिनी श्रीजी म. सा. के दिवंगत होने से जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुयी है। आत्मा अविनाशी और शरीर विनाशी है, वह पंचभूतों से बना है और उनमें ही विलीन हो जाता है, साथ तो केवल सत्कर्मों की सुगन्ध ही रहती है। दीपक की तरह स्वयं जलकर दूसरों के जीवन को ज्योतिर्मय प्रकाश से भर दे, पूज्या सज्जनश्रीजी म. सा. का जीवन ऐसा ही ज्योतिर्मय था।

गंगाशहर 16.10.89 –केसरीचन्द सेठिया

श्री पद्मप्रभु जी भगवान जैन श्वेताम्बर सभा, लखनऊ (उ.प्र.)

सभा की एक बैठक दिनांक 25.12.89 को रात्रि साढ़े नौ बजे इन्द्रचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र ट्रस्ट धर्मशाला के उपासरे में हुयी तथा एक प्रस्ताव पारित किया गया :

"आज हमारे बीच से एक ऐसी महान् त्यागी और स्वयं तप करके हम लोगों को तप-त्याग में स्थिर करने वाली आत्मा नहीं रही, जिसने लखनऊ में सन् 1971 में श्री शान्तिनाथ भगवान् के मन्दिर की पौशाल में चौमासा किया, पर्यूषण महापर्व के व्याख्यान से समूचे संघ को आनन्दित किया और जिनके उपदेश से ही श्रीमती सुषमा जैन ने 21 उपवास की विशेष तपस्या की। पारणे के दिन श्रीसंघ ने श्री संभवनाथ भगवान् के मन्दिर का जीर्णोद्धार कार्य शुरू कराया जो दिव्यात्मा की कृपा से पूर्ण हो गया है। उनकी ही कृपा से इस वर्ष कई अठाई तथा बेले-तेले आदि तपस्याओं की धूम मची हुयी है।"

अन्त में बारह नवकार का जप करके सभा विसर्जित की गयी।

कमलचन्द जैन, सभापति
बृजलाल जैन, मंत्री
एवं कार्यकारिणी के 43 अन्य सदस्य

319/19, चौक, लखनऊ–3
दिनांक : 25.12.89

भावांजलियाँ

पूज्य आचार्य श्री जिन उदयसागर सूरिजी महा.

शासन का एक चमकदार रत्न, पवित्रात्मा का वियोग, सबके लिए भारी क्षति हुयी। आपके लिए तो और ज्यादा पहाड़ टूट गया।....अन्तिम समय के विवरण से हमें यह ज्ञात हो गया कि वह शुद्धात्मा अच्छे स्थान पर पहुँची है। मत्यु ध्रुव सत्य है, इस वीर वचन पर मनन करने पर आत्म-शान्ति प्राप्त होगी। दिन और समय अच्छा था। प्रति वर्ष या महीना की तपस्या अनायास ही होती रहेगी।

शकर नगर, (7.1.90)

पूज्य आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्न सूरिजी महा.

प्रवर्तिनी साध्वीजी महाराज का यशस्वी संयमी जीवन अति उत्तम था। खरतरगच्छीय परम्परा में जीवन अर्पित कर संघ एवं जैन शासन को उन्होंने अमूल्य सेवाएं प्रदान की हैं। उनके चारित्रिक जीवन की सुवास चारों ओर है। जैन एकता और समन्वय के लिए वे हमेशा काम करती थीं। ऐसी आत्मा का अचानक चले जाना शासन के लिए क्षति है। उनकी आत्मा को शासन देव शान्ति दें।

श्री जैन श्वेताम्बर मंदिर, अम्बाला
दिनांक : 22.12.89

गणि श्री मणिप्रभसागर जी महा.
(साध्वी मंडल को प्रेषित पत्र दिनांक 9.12.89 का अंश)

विश्वास नहीं होता कि प्रवर्तिनी श्रीजी अब हमारे बीच नहीं रहे। पर क्रूर काल का वश चल गया और वह शासन व गच्छ का अनमोल हीरा उड़ा ले गया। दिव्यात्मा का सान्निध्य हमसे छूट गया, बिखर गया, परन्तु अब धीरज रखने के अलावा कोई चारा नहीं है। फूल मुरझा गया, किन्तु सुगन्ध पूरे वातावरण में फला गया। वे कितनी महान् आत्मा थीं जो मौन इग्यारस जैसा पवित्र पर्व का दिन लिया। यह उनकी साधना का सुफल था। और, बिना किसी बीमारी के समाधिमरण प्राप्त किया यह भी उनकी आराधना का ही परिणाम था।

आपके लिये तो यह घटना वज्रपात जैसी बनी है। वर्षों-वर्षों जिन गुरुवर्या के चरणों में आप रहीं आज वह शिर-छत्र छिन गया, पीड़ा की कल्पना मात्र से रोम-रोम कांप जाता है। पर, यही समय आपकी परीक्षा का भी है। आपको इस समय खूब धैर्य रखकर सारा काम व्यवस्थित करना है।

(पत्र दिनांक 11.12.89 का अंश)

इन दुःखद पलों में मैं आपके पास नहीं हूँ, इसका बहुत खेद है। उनकी पुन्यवानी व उच्च आत्मा के प्रतीक तो हम सब ने अनुभव किए ही हैं, मौन एकादशी का दिन तथा परम समाधिमरण, यह हर आत्मा को प्राप्त नहीं होता।

आपने तथा साध्वी-मंडल ने प्रवर्तिनी जी महाराज की जो सेवाएं की हैं, मातृभाव, सर्वस्वभाव रखते हुए जिस निष्ठा और श्रद्धा के साथ उनको पूजा, यह उनके प्रति आपकी अगाध श्रद्धा का परिणाम था। आपकी सेवाएं सफल बनीं। पूर्ण उम्र प्राप्त कर आत्मलीन बैठे हुए उन्होंने उच्च गति की ओर प्रस्थान किया। कल जब यह सुना कि माला फेरते-फेरते··· तो हृदय भर आया। वे कितनी महान् आत्मा थीं, आराधना के निर्मलभाव अन्तिम पल तक रहे। अन्तिम आराधना करवा कर आपने भी शिष्या का कर्तव्य निभाया।

अब वह फूल कहाँ, जिसकी सुगन्ध प्रतिपल आसपास रहती थी ? सिर्फ उनका उच्च जीवन, उनके गुण और उनके द्वारा फैलाई गयी सुगन्ध शेष है। उसी के सहारे जीवन को चलाना है, उसी के सहारे धैर्य धारण कर आत्मस्थ बनना है।

गणि श्री महिमाप्रभसागरजी महा.

प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी महा. का स्वर्गारोहण धर्म-संघ के लिए शोक-संवर्धक है। उनकी प्रबुद्धता तथा उपशान्तता उनके जीवन की अस्मिता थी। हम उनके सुदीर्घ सार्वभौम चारित्र की विनम्र अनुमोदना करते हुए उनके वैदुष्य-पूर्ण, समत्व पूर्ण जीवन से प्रेरणा लेते हैं।

निश्चय ही, धर्मसंघ ने उस महाश्रमणी को खोकर अपनी 'माँ' को खोया है।

मांडवला, 25.12.89.

साध्वी श्री मणिप्रभाश्रीजी

मैं क्या लिखूँ कैसे लिखूँ, यही नहीं समझ पाती। जीवन-प्राण गुरु के विरही को सान्त्वना देना कहाँ सहज बात है ? महाराज श्री के सभी सद्गुण स्मृति में एक साथ उभर रहे हैं ! उनकी वात्सल्यमयी मुद्रा आँखों में समायी है। सौम्य, शान्त व सहज मुस्कराती छवि आज भी बहुत कुछ मौन उपदेश दे रही है। यह मन मानने को तैयार ही नहीं कि पूज्या महाराज सा. हमारे बीच से ऊपर पधार गयीं। वास्तव में वे कहाँ जाते हैं जो सदा दूसरों के दिलों में जीते हैं। हजारों हृदयों में जीने वाली हमारी परम पूज्यनीया प्रवर्तिनी महोदया हमारे जीवन-पथ के परमप्रकाश, परम-ज्योतिस्वरूप सदा हमारे हृदय में विराजमान हैं और रहेंगी।

आप स्वयं समझदार हैं। अतः मन को बार-बार संभालती रहें, क्योंकि आपको स्वयं को ही नहीं संभलना—सबको संभालना है। मन का असर तन पर भी पड़ता है। आपने तो पूज्या गुरुवर्या श्री की समर्पित भाव से सेवा की है—उनकी हर श्वास की जरूरत समय से पहले समझी है। गुरु-भक्ति का प्रतीक आपका पूरा जीवन रहा है, अतः मन को ठीक से संभालें—जल्दी संभालें, यह समय सबके जीवन में आता है। पूज्या प्रवर्तिनी महोदया जैसा महान् व्यक्तित्व अब हमें मिलना असंभव है।

बड़ौदा, 12.12.89

साध्वी श्री निपुणाश्रीजी, राजेन्द्रश्रीजी, मंजुलाश्रीजी

परम पूज्य मातृहृदया स्वनामधन्या प्रवर्तिनी म.सा. ज्ञान की दिव्य रश्मियों से स्व-पर कल्याण पथ को आलोकित करती हुयीं दिव्यलोक के लिए प्रयाण कर गयीं। शासन, संघ एवं गच्छ में आपश्री की विदायी से एक महान् क्षति हुयी है। आप सबके लिए एक ऐसे शिरछत्र की छाया से विरहित होना, जिसने आपको तप्त संसार से उबारा था, सचमुच असह्य वेदना हो रही होगी। सम्यग् ज्ञान-दान, साहित्योपासना, वात्सल्य, सहज आत्मीयता व सरलता आदि आपश्री की मौलिक सम्पत्ति थी। आप जो आराधनामय संयमी जीवन की सुवास छोड़कर गयी हैं, वह सबका पथ प्रशस्त करती रहेगी।

साध्वी श्री प्रकाशश्रीजी

परमतत्त्वज्ञा, गच्छ की दैदीप्यमान नक्षत्र के महाप्रयाण ने केवल आपको ही हतप्रभ किया हो, ऐसा नहीं है, हम सब भी पूर्ण व्याकुल हैं। वे आपके ही नहीं समस्त संघ के अजोड़ कोहिनूर थे, जिसकी पूर्ति निःसंदेह कोई भी नहीं कर पायेगा।

श्री जयानन्द मुनि जी महा.

आगम की ज्ञाता, द्रव्यानुयोग जैसे कठिन विषय को अपनी अलौकिक ज्ञान-प्रतिभा से सरल हिन्दी में अनुवाद करने वालीं, सदैव स्वाध्याय में रत आशुकवयित्री, स्वनामधन्या साध्वीरत्न के देह विलय से आपके गच्छ में महान् क्षति हुयी है।

सिवाना, 10.12.89

साध्वी श्री विनोदश्रीजी

गच्छ ने अपनी एक महान् विभूति खो दी। जिनका जीवन केवल विद्वत्ता की दृष्टि से ही नहीं समता व सरलता की दृष्टि से भी महान् था। सभी के प्रति उनका समान आत्मीय-भाव था। याद आते ही हृदय श्रद्धा से अभिभूत हो जाता है।

बाडमेर, 12.12.89

साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी

पूज्यावर्या के प्रति आपका समर्पण एवं आपके प्रति उनका वात्सल्य शायद एक मिसाल ही था। जिनसे जुड़कर ही जीना सीखा—उनके वियोग में जीना कितना करुण व दुःखावह होता है। गुरुवियोग की वेदना कितनी असाध्य होती है, भुक्तभोगी के नाते मैं स्वयं जानती हूँ। गुरुजनों की छत्र-छाया में जीने का आनन्द ही निराला होता है, उसमें भी पूज्यावर्या जैसी गुरुवर्या का सान्निध्य !

ऐसा न सोचें कि आपने ही खोया है, सच तो यह है कि हम सभी ने बहुत कुछ खोया है। पूज्या गुरुवर्याश्री क्या गयीं, गच्छ व शासन की एक दिव्य-ज्योति बुझ गयी। फिर भी आप भाग्यशालिनी हैं कि लम्बे समय तक उनकी शीतल छाया का सुयोग आपको मिला। उनके ज्ञान व गुणों के अंश आप में उभरे। आशा है, उनसे प्राप्त ज्ञान के प्रकाश में आप इस कठिन घड़ी में अपने को संभालेंगी तथा हलका महसूस करेंगी। ऐसे अवसर ही हमारे ज्ञान और विवेक की कसौटी होते हैं। पूज्या गुरुवर्याश्री के जाने से मण्डल के निर्वाह का गुरुतर दायित्व आपके ही कन्धों पर है। उस दायित्व को निभाने की क्षमता तथा स्वयं को संभालने की सहजता आपको मिले, यही शासनदेव से प्रार्थना है।

बाड़मेर, 12.12.89

साध्वी श्री चम्पाश्रीजी, रेणुश्रीजी, जितेन्द्रश्रीजी, विमलप्रभाश्रीजी आदि

गुरुवर्याश्रीजी रत्नत्रय की सच्ची आराधिका थीं। आप जहाँ भी विराजतीं चारों ओर आनन्द की धाराएँ बह उठती थीं। आपश्री अपनी देह का कण-कण एवं जीवन का क्षण-क्षण जन के श्रेय के लिए समर्पित कर रही थीं। आपका पवित्र जीवन त्याग-तप का दिव्य भण्डार था। आपश्री का आत्मबल, ज्ञानबल, चारित्र-बल, तपोबल तथा मनोबल अपूर्व था।

कुछ और भावांजलियाँ

ऐसा आभास हो रहा है जैसे वीतराग प्रभु की प्रदत्त धरोहर हमसे छिन गयी है। उस पुण्यशाली महान् विभूति के प्रशस्त मार्ग पर चलकर, अपने जीवन में उनके प्रदत्त उपदेशों का अनुकरण ही दिवंगत आत्मा के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

- सांकलचंद मंसाली

- चम्पालाल मंसाली

मंसाली इण्डस्ट्रीज,
146, मामूलपेठ, बेंगलोर–53

प्रथम दर्शन ने ही उनकी ज्ञान-तेजस्विता और करुणासिक्त वत्सलता ने मत्र-मुग्ध कर लिया था। कितना सरल, निश्छल था उनका मन; किन्तु जागरूक, संयम-साधना और भक्ति की गंगा में निमग्न ! उनका जीवन जितना उज्ज्वल और कीर्तिमान था, मरण उतना ही समाधिपूर्ण और अद्‌भुत ! यही तो थी उनकी अपार पुण्यशीलता !

लीला निकेतन, **श्रीचंद सुराणा 'सरस'**
ए–9, महात्मा गाँधी रोड़, आगरा–2

हमने एक अमूल्य रत्न खो दिया है। उनके प्रवचन का एक-एक शब्द जीवन के लिए अमूल्य संदेश था। अब उनकी पूर्ति होना बहुत ही मुश्किल है।

- बाबूलाल मुसरफ एवं समस्त मुसरफ परिवार

उनका देवलोक होना पूरे खरतरगच्छ संघ की और कहें तो पूरे जैन समाज की एक बहुमूल्य धरोहर की क्षति हुयी है जिसकी पूर्ति होना असंभव है।

102, कमर्शियल रोड़ **- टी. मोहनचन्द जैन**
उधगमण्डलम् (उटकमण्ड)

पूज्या प्रवर्तिनी श्रीजी की भावना सदैव शासन की उन्नति की ओर रही। भविष्य में भी सुचारु व्यवस्था बनी रहे, इसके लिए वे सुविज्ञ श्रमणियों को दत्तचित्त हो तैयार करती रहीं। स्वर्गस्थ आत्मा से मेरी प्रार्थना है कि जिस बीज को उन्होंने अंकुरित किया था, उसे पुष्प-फलों में विकसित करने में अदृश्य रूप से ही सही, शक्ति प्रदान करती रहें।

खैरागढ़ (म.प्र.) **—भीखमचन्द मुणोत**

प्रवर्तिनी साहिबा ने जिस तरह शासन की सेवा की, गच्छ का गौरव बढ़ाया तथा साध्वी-मण्डल का कुशल नेतृत्व करते हुए अध्यात्म की ज्योति प्रज्ज्वलित की, हमारे द्वारा उनकी शिक्षाओं तथा बताये मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा ही उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एवं जयपुर **—बी. सी. मेहता**
बायतू (बाडमेर)

परम पूज्या, विदुषी कवयित्री जी ज्ञान की भण्डार थीं। उस भण्डार में से अनेक श्रमण-श्रमणियों, नर-नारियों को ज्ञान मिला है, थोड़ा मेरे हिस्से में भी आया है। हमें उनके जीवन से, उनकी अमृतवाणी से जो शिक्षा मिली है, उसको जीवन में उतारना चाहिए।

बैंकाक **—संजय**

अध्यात्मसाधिका, आगममर्मज्ञा, परमशान्तिप्रिया पूज्या प्रवर्तिनी श्रीजी म.सा. बहुत ही सरल और शान्तिप्रिय थीं, आडम्बर से कोसों दूर। वे देखने में साधारण किन्तु अन्तर-आत्मा में उतनी ही महान् थीं। जो उनके निकट आया वही उस विभूति को पहचान सका था।

39, राजन स्ट्रीट, तिरुपत्तूर —जे. अनूपचन्द गोलेछा

प्रवर्तिनी श्रीजी महा, खरतरगच्छ संघ की पूजनीया थीं। सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं की उन्नति के लिए उनकी बहुत ही जरूरत थी।

सरदारपुरा, जोधपुर। —इन्दरचन्द मालू, एडवोकेट

सद्धा-सुमणं

आगम अण्णा
सुगम-सरस कल्लोलिणी
णाण-पवण्णा
तं अवधाहणेणं
पण्णायह णिम्मलं होइ।

खरतरगच्छ-संघ पवट्टिणी
सज्जन सिरी
सद्धा-सुमणं अंजलिबद्धं
चरणारविंदे
तव अहिमुदिए।

श्रद्धा-सुमन

गतिशील
संसार की संरचना
अविरल गंगा की धारा
मानव मन के अन्तस्तल को छूकर
सज्जन श्री अध्यात्म-योगिनी
दो तट एक प्रवाह रूप में
अमृतरस-संजीवनी
बनी अमर प्रदीप-सी।
अपार दुःख का अनुभव
भव से पार करेगा
जब सजग दृष्टि से
गुण गण को
जन-जन में प्रवेश कराएंगें।
साध्वी श्री की साधकता
नारी मन की बनी सुधा
जो डूबेगा सो पावेगा
ऐसी श्रद्धा आज जगे।

डॉ. उदय चन्द जैन

पिऊ कुंज, 3-अरविन्दनगर, उदयपुर।

आर्यारत्न आगमज्ञा प्रवर्तिनी श्री

सज्जन श्री जी महा. की सुन्दर हस्तलिपि :

प्राकृत :

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुआण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए

(उत्तराध्ययन)

संस्कृत :

विदुषीसाध्वीशिवार्या विरचित

पण्डितसिद्धसारस्वत स्तोत्रम्

(शार्दूल विक्रीडितवृत्तम्)

व्याप्तानन्त समस्तलोक निकरै ङ्कारा समस्ता स्थिरा,
या ऽऽराध्या गुरुनिर्गुरोरपि गुरुर्देवैः स्तु या वन्द्यते।
देवानामपि देवता वितरताद् वाग्देवता देवता,
स्वाहान्तःक्षिपतुं यतः स्तवमुखं यस्याः समन्त्रोवरः॥१॥

ऊँ ह्रीं श्रीं प्रथमा प्रसिद्ध महिमा सन्तप्तचित्ते हि या,
सैं ऐं मध्यहिता जगत्त्रय हिता सर्वज्ञ नाथा हिता।
श्रीं क्रीं क्लीं चरमा गुणानुपरमा जायेत यस्यारमा,
विद्यैषावरुणिन्द्रजीष्पति करी काणी स्तुवेतामहम्॥२॥

ऊँ कर्णे वरकर्ण भूषित तनुः कर्णेऽथ कर्णेश्वरी,
ह्रीं स्वाहान्तपदा समस्त विपदं छेत्त्री पदं सम्पदाम्।
संसारार्णवतारिणी विजयते विद्यावदाते शुने।
यस्याः सा पदवी सदा शिवपुरे देवीवतंसी कृता॥३॥

सर्वाचार विचारिणी प्रतरिणी तोर्वाग्नवाब्धौ नृणां,
नीणा वेणुवरङ्कणा ऽतिसुभगा दुःखाहि विद्याविणी
सा वाणी प्रवणा महागुणगणा न्याय प्रवीणाऽमला,
जैने यस्तरणी रणीषु निपुणा जैनी पुनातु ध्रुवम्॥४॥

हिन्दी :

— श्री भगवती व्याख्या प्रज्ञप्ति स्तुति —

जय जय ! विघ्नोद्धारिणि ! भगवति ! जय हे जय व्याख्याप्रज्ञप्ति ! ।
नन्दतु नन्दतु हे श्रुतसरिते ! तत्त्वबोध अभिव्यक्ति ! ॥ स्थायी
श्रुतज्ञान रत्नाकर जय हे ! गणधर सुगुरु प्रणीत ! ।
स्याद्वाद नाद्मय मान सरोवर ! न्याय शास्त्र नवनीत ॥ १ ॥
प्रश्नोत्तर वर रत्नमालिके ! शालिके अद्भुत ज्ञान ! ।
अनेकान्त प्रोज्ज्वल प्रतिभे ! जय ! ज्ञानविज्ञान ॥ २ ॥
विविध भङ्गि ! गम प्रमिति नीतिमयि ! ललित ललाम !
विश्ववन्द्य विभु वीर वदन नि: विर्झर अभिराम ! ॥ ३ ॥
आत्मानन्द विधायिनि ! ज्ञे ! सदैव ज्ञानोपयोग ।
भव्य व्यक्ति तव करते, रत्नत्रय उपभोग ॥ ४ ॥
सुपुण्यमयि ! सुवर्ण शालिनि ! दिव्यप्रभावति ! मात: ! ।
'सज्जन' मन श्रुति पावन कारिणि ! करती हम प्रणिपात ॥ ५ ॥

अंग्रेजी :

See Gautam ! A drop of honeydew on the edge of a grass leaf ... what a small life it has ! Man's life is like that only. It is very short living - so don't be lazy for a moment and do some goodness in life.

Pr. Sajjanshree,

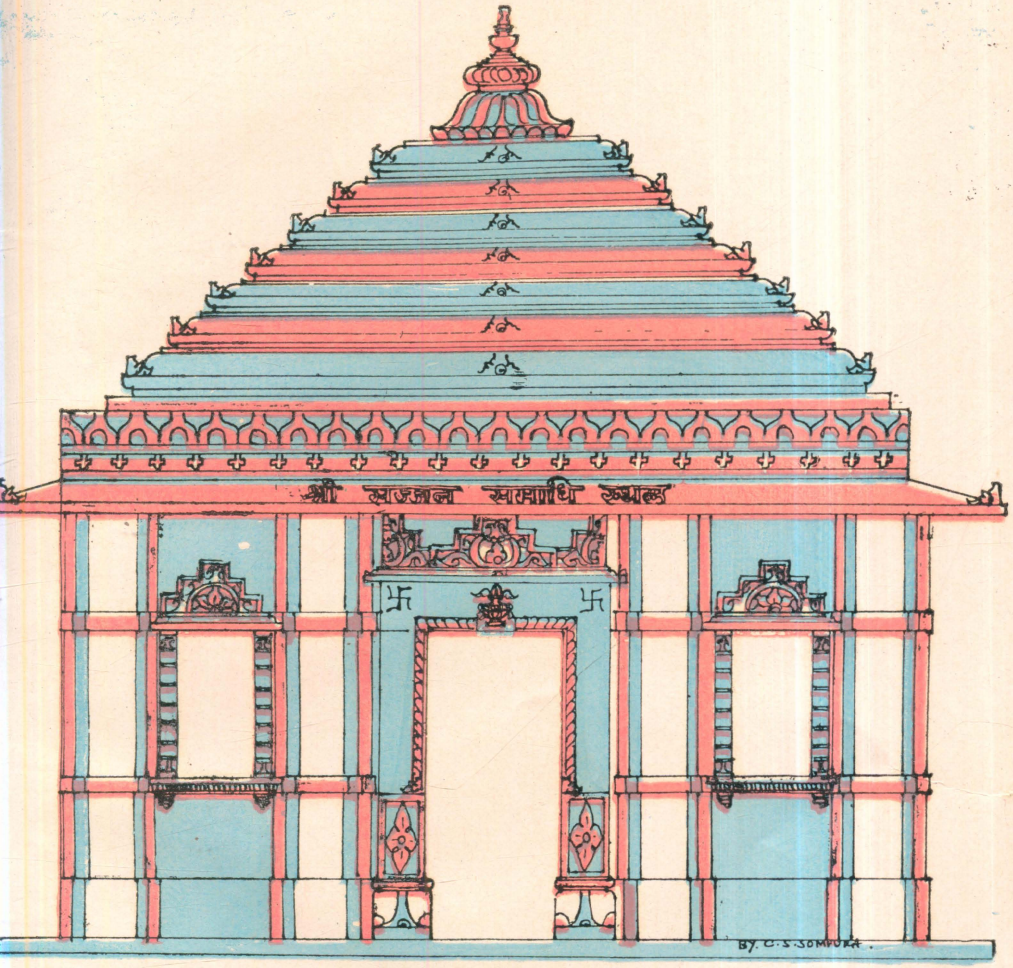

आगम-ज्योति प्रवर्तिनी स्व. सज्जन श्रीजी म.सा.
के समाधि-स्थल (मोहनबाड़ी जयपुर में निर्माणाधीन) का
मुख्य द्वार, शीर्ष भाग आदि का रेखाचित्र

परिशिष्ट

काव्यांजलि
साहित्य-साधना
शिष्या-परिवार
यशस्वी-चातुर्मास
शेष-अशेष

काव्यांजलि

सज्जनश्रियमहं बहुशोऽभिनन्दे

यस्याः स्वभावमतुलं सरलं गम्भीरं, निर्धूतकल्मषमनिन्द्यमचिन्त्यरूपम् ।
सर्वेऽपि साधुपुरुषाः सततं वदन्ति, तां सज्जनश्रियमहं बहुशोऽभिनन्दे ।।१।।

या स्तूयते सकलशास्त्र-विचार बोधात्, साध्वीजनैः श्रमण-श्रावक सर्वसंघैः ।
सम्मानिता समभवच्च गुणैरुदारैः, तां सज्जनश्रियमहं बहुशोऽभिनन्दे ।।२।।

यस्या मुखाब्जममल परिदर्शनीयं, कान्तं नितान्तमनिशं सुविकासमेति ।
या ज्योतिरागमनिधेः नितरां विभाति, तां सज्जनश्रियमहं बहुशोऽभिनन्दे ।।३।।

या वीतरागरुचिरास्तसमस्तदोषा, नारीजगत्सु महनीयतमा विभाति ।
या विद्यया च वयसा च समुन्नतास्ति, तां सज्जनश्रियमहं बहुशोऽभिनन्दे ।।४।।

शुभ्रावदातरुचिरेण गुणेन यस्याः, लोकत्रयेऽपि गरिमा परिवर्धतेऽद्य ।
श्री वर्द्धमानकथितस्य मतस्य नूनः, तां सज्जनश्रियमहं बहुशोऽभिनन्दे ।।५।।

जयतु जयतु नित्यं, ज्ञान विज्ञान सारा, शुभगुणगणभारा, धर्मकर्माक्षितारा ।
ललितवरविचारा, सर्वशास्त्राधिकारा, विगतबहुविकारा, सज्जनश्रीरुदारा ।।६।।

– मुनिश्री ललितप्रभसागरजी

अज्जा सज्जणसिरी अहिणंदणं

णच्चा उसहं देवं, लोगालोग-पगासग-जुत्तं ।
पणमामि सव्वतित्थं, कम्म-कलंक विणासग्गहेउं ।।१।।

अहं तेसिं णमो सया, संसार-जलहि-तारण-समिद्धो ।
झाण-णाण-तवो रत्ता, सिरि-महावीर-जिणेसरं ।।२।।

ते वे सव्वे मुणिवरा सयलं वंदणीया णिच्चं ।
जिणचरणंबु रत्ता मुत्ति-पह-गमणसीला य जे ।।३।।

जस्स परम-पसादेण, बुद्धि-णिच्चं पवड्ढए सूरो विव ।
गोतम - गणआइरिया - उवज्झाय - साहु - अज्ज - अज्जिया ।।४।।

चंदणासम-सुरहीओ चंदणा-गुण-गुणाणं कया सया ।
वंदे सज्जण-अज्जं भव्व-राजीव-दिवायरो व्व ।।५।।

कुल-परिचया :

सावग-सग्गण्ण-वारह-वय-धारी-संगीतण्ण कवी वि ।
पिउ-सिरि-गुलाबचंदो, लूणियाकुल-साहग-वरिट्ठो ।।६।।

सु-सावगा धम्मवई, महताब देवी माउसिरी ।
सा वि धम्मशीला, तत्तवेत्ता बारह-वय-धारिणी ।।७।।

मायाए वच्छल्लं, पिउ-पीई-माऊ-सणेह-जुत्त ।
णयणाहिरामा सा तु, सज्जणसिरी सज्जणाणं पिया वि ।।८।।

गुणसीला अईधीरा, तत्तजिण्णासु धम्मवई वि ।
ववहार-णाण जुत्ता, सक्कय-पाइय-भास-पवीणा ।।९।।

अंगल-भासा हिन्दी, गुज्जर-रायट्ठाणी समाधेज्जा ।
णाणा भासा-भासी, सज्जण-सिरी-महासई सा ।।१०।।

बालत्तणे वि सया, पडिक्कमाइ-अहिरुइ-कया ।
महुर-भासा-भासिणी, धम्म-रहारूढ-वाहिणी सया ।।११।।

ताए पाणिग्गहणं, जयपुर-सु-पसिद्ध गोलेच्छा-परिवारस्स ।
णहमलदीवणस्स तु, कल्लाण-मलेणं सह जाया ।।१२।।

पइवज्जा :

विक्कम-संवय-णाव-णवसहस्स-एग-आषाड़-सुक्क बीए ।
सिंहलग्ग-णीसाए सा जिण-पइवज्जा धरिया ।।१३।।

स-सत्तीए भत्तीइ, गुरुमणिसायाराइरिय-महपहु ।
विहद-दिक्खा-सिक्खं च हरिसायर-संमुह धरिया ।।१४।।

अज्झप्प-चिंतणीया, सा अज्जा सव्व-गारव-मंडिया ।
वीरस्स परमभावं णिय-हियय-सम्मत्तजुत्त-कया ।।१५।।

रअ-रअंति जत्थ पमत्ता हियएसु सुरीधरा ।
होंति जस्स लोय-दूलया सुमणेसु मुणीवरा ।
कित्ति सि परा जग-जणाण सया विहु सय-समया,
पव्वजइ जत्थ समुत्थरइ एस इह सज्जणसिरी ।।१६।।

चलं छीहत्तणेणं पाविअ - धम्म - मग्गं,
विसमत्थमोहसायरे कुणेइ कं ण भग्गं ।
एअं तुह हिययरअ-गुणं सुन्दरी-सत्थसारं,
सोहा विणिज्जिअ-देहणं पावइ अप्पसारं ।।१७।।

ण मुणिज्जइ गिह-सुहाणि मलिइआ ण गणिज्जइभग्गओ,
परिजण सुणियरो ण य जाणिज्जइ गध-मालई वि हु विलग्गओ।
आयारियंबर-दिणमणि तुह हिदयोदहि-सदेव-धावंतिहि,
रयणत्तय-धम्म-सारणि-विहहि-णारीहि हरिसिज्जंति हि ।।१८।।

णक्खत्तेमुं चंदो, रम्म-णिम्मल-दीह-दाह-हरणं जह ।
तह सा अज्जा णिच्चं, अज्जागणेसुं मणोरमा जाया ।।१९।।

दिक्खा-सिक्खा-भावं, सुरम्म-साहण-रूव-धम्मं धरइ ।
ण तु पडि-खलण-कारण, ण तु जणाबवाययेऊहिं ।।२०।।

णाणा - भासं महुर - भसगं दंसणण्णाय - कव्वं,
कोसागमं सरस-एसगं धारिउं धम्म-सुत्तं ।
णाणा-सत्थं णव-णव-सु-कव्वं सुगुच्छं सुगंधं,
सारा-सारं णिय-सुहियय देइ सु-पहि-अज्जा ।।२१।।

वरं रम्मं झाणं सयल-गुणवंति-बुहगणे,
वरं सिक्खा-भतिं हिय-गहणसज्झे णिवसिआ ।
वरं कम्माणं खय-करणत्थं वि रआ,
सु-संजायं पुण्णं खणणहेउ-पेम्मं पगलिया ।।२२।।

कम्मं कलंक-दलणं रयणं धरेई,
संणाण - दंसण - चरित्त - तवोधणेणं ।
झाणं पवड्ढण - स - भाव - ममत्ति - मुरु,
सा सज्जणासिरि - सु - सिद्ध - पहम्मि - रमेई ।।२३।।

गौरव-गाहा :

णाण-झाण-परायणा, सत्थण्णा संतिभूई-धम्मसालिणी ।
गुरुणी सिरी-णाणसिरी, उवजोगसिरी णाणासत्थ-पवीणा ।।२४।।

ण तु पुर - भाषा - णाई, लोगिग - भाषा - पवीणा सा ।
जिणागम-तत्तवेया, पुण्ण-तलण्फासी अवि तु सा ।।२५।।

आगम-जोइ-उवाहिं आगम-सु-रस-सरिया कारणाहिं ।
अलंकरं पाविऊण, सलिल व्विव गहीरा जाया ।।२६।।

जिण-सासण णहम्मि सा जोई-सील-तारगमिव पगासिआ ।
चंदिम-कलंकजुत्ता, सा तु णिस्कलंकिया भूया ।।२७।।

परमविउसि होऊण अज्जाए अग्गणी जाया अवि सा ।
कव्व-सरस धाराए सव्वाणं जणाणं अवि कया ।।२८।।

पगई-संत-सहावा, णिरहिमाणी विणयी सेवासीला ।
हिय-मिय-महुर-भासिणी, दत्त-चित्त-अज्झयणसीला वि ।।२९।।

आहार-विहार-जुत्ता, णाणा भायेसु पद-गमणसीला ।
सवत्थ जिण तत्ताणं, परूवणं सया अहि कया वि ।।३०।।

अण्णाणणासणट्ठं, वत्थु - तत्त - विवोहणट्ठं वि ।
धम्म-देसणट्ठं सा, णाण-दीव-पगासं - सया कया ।।३१।।

साहणं साहणं चिट्ठे, तत्थ सज्झं ठेव भवेउ जीवाण ।
साहणं भोतिगेय य, सज्झ-अज्जप्पगुणं उच्चइ ।।३२।।

अप्पा सासयं लोए, अप्पा खलु णाण दंसण-चरण-जुत्तो ।
अप्पा विसय-विहीणो, अप्पा सव्व-गुण-गणाण वइहवं तु ।।३३।।

कोहो वा माणो वा, माया वा लोहो-णेव साहगो ।
अप्पाणं बलं मेयं किं अण्णेण पयोजणं वि ।।३४।।

अप्पाणेव हं गुरु, अप्पाणमेव सुसरिं इह लोए ।
इह भावणं भाविऊण य, गामाणुगाम-विहर-सीला ।
पवासावाससमए, गुरु-गारवाइरिय-चरणपहे वि ।
णेव पजहिआ धम्मं, वक्खाण - पीयूस - विसेसण ।।३५।।

णहं सच्छण्णंचंदो पवड्ढए पुण्णिमा पेज्जंतं तु ।
सा सज्जण - महासई जिण-सासण-पहावणाइ रआ ।।३६।।

णिज्झरणी पोऊस-धारा :

गज्ज-पज्ज-साहणाइ संजमी-जीवण-सु-कया-रयणा वि ।
सुरम्मा गुण-गहीरा, सुहाकर-सम-अमिय-दत्ता वि ।।३७।।

पुण्ण-जीवण-जोइं वि, विलिहिऊणं स-णाम-घण्ण-कया ।
पुण्णं धम्म-धुरिं अवि, समण-संघ-इहिवित्त-सुरक्खिया ।।३८।।

समण-सव्वस्स-पोत्थी, साहु-जीवणस्स पह-पदरिसिगा वि ।
आयार-वियारहिं, परिपुण्णा पइट्ठा वि गया ।।३६।।

तमोछण्णं लोए तु, समुवागए दिवायरे जायए ।
पगासगं-अइणिम्मतो, जणमणो-तम-रहिओ होई ।।४०।।

महावीरस्स चरिया, पाइय-णिबद्ध-कप्पसुत्तम्मि अत्थि ।
तस्स पाइयसुत्तस्स, रट्ठिय-भासा-हिन्दी कया ।।४१।।

ण तु अईसरला-सु-गमा-सुरस-भावाणुजुत्तो अवि ।
जण-कल्लाण-णिमित्तं, एसा अइ-सेट्ठ-कज्जं कया ।।४२।।

वारह-पव्व-वाक्खाइ दव्वाणुजोगमय-अज्झप्प-पबोहो ।
वजभासा समलंकिअ-पज्ज-कवित्त-सवइया-दव्व-संगहो ।।४३।।

चेइय-वंदण-कुलकं, गुरुदेव-जिणदत्तसूरिणा विरइयं ।
वयारोव-विहि णामा, हिंदी-भासाय पगासिआ च ।।४४।।

बालावबोहणट्ठं चउवीस-जिण-थवण रट्ठ-भासाए ।
कुसुंजलि - विणयंजलि - गीयंजलि-वीर - गुण - गुच्छआई ।।४५।।

तव्व-पुण्ण-चरिया :

अज्झयणं ण तु केवलं, ण कव्व-धारा अवि वलिट्ठा ।
णाण-झाण-तव रत्ता, स-पर-कल्लाण-करणट्ठं वि ।।४६।।

तुह णिय-जीवण-झाणे, उवहाण-णव-पय-ओली धारिया ।
विस - थाणय - तव - ओली - कल्याणय - तव - मण रंजिया ।।४७।।

पखवासा तव-कया वि, अप्प-धम्म-पवड्ढणं णिच्चं ।
पंचमि-सोलिया-तवो, दस-पच्चक्खाण-तवो सया किया ।।४८।।

जया विहार-अज्जाइ, तया समागया जणा पभूया य ।
पाउं धम्म - सुहाणं, सच्च - सील - संजम - हेऊहिं ।।४९।।

अहं उदयचंदो अवि, अहिणंदण-वंदणं करोमि कुणासि णिच्चं ।
धम्मस्स बोहणट्ठं, सद्धावंतो तत्त वियारो ।।५०।।

सत - सतवासं जीवउ, सा सज्जणसिरी महासई ।
अस्सि-वास पेरतं, का का जीवा ण धण्णा अत्थि ।।५१।।

– डॉ. उदयचन्द जैन, उदयपुर

शत-शत प्रणतियाँ

श्रद्धा भरी शत-शत प्रणतियाँ, पदकजों में हैं हमारी ।
श्रमणीगण में अग्रणी हैं, अप्रतिम प्रतिभा के धारी···· ।। स्थायी० ।।

धन्य राजस्थान की अवनी, धन्य - धन्य है आपकी जननी ।
धन वैशाख पूर्णिमा रजनी, जन्म हुआ था आनन्दकारी···· ।।१।।

किया धन्य तारुण्य ले दीक्षा, सम्यग्दर्शन ज्ञान सुशिक्षा ।
हम भी मांगें ज्ञान की भिक्षा, दे दो हमको हे दातारी···· ।।२।।

हिन्दी गुर्जर प्राकृत भारती, राजस्थानी संस्कृत विचारती ।
क्षण - क्षण तत्त्वस्वरूप संवारतीं, संशय सबके दूर निवारती····।।३।।

विनय विवेक साकार बने हैं, जिनके वचन भी स्नेह सने हैं ।
सन्तसती देखे ही बने हैं, तव रीति है सबसे न्यारी····।।४।।

जब देखो वाचन में निरत हैं, अथवा अध्यापन में रत हैं ।
विकथा से तो सदा विरत हैं, कहते हैं यों सब नर - नारी····।।५।।

काव्यकलामय कृतियां ऐसी, सुनते लगती अमृत जैसी ।
होती जग में विरली वैसी, पण्डितजन कहते सुविचारी···· ।।६।।

'आगम-ज्योति' कहते गरुजन, करती गद्य-पद्य का सर्जन ।
अमर रहे यशोनाम से सज्जन, जब तक 'शशि' सूरज संचारी···· ।।७।।

– साध्वी श्री शशिप्रभाश्रीजी

गणीवर्य उवाच

महाश्रमणी थीं साध्वी, सज्जनश्री जी नाम ।
खरतरगच्छ की रोशनी, जीवन था निष्काम ।।

पल-पल अर्पित आतमा, रत रहतीं स्वाध्याय ।
उनका जीवन बन गया, आतम का अध्याय ।।

मौनैकादशी दिवस में, बनी सर्वथा मौन ।
सूत्र संबंधी प्रश्न का, उत्तर देगा कौन ??

सरल सहज विदुषी परम, थीं वो गुण भंडार ।
मरण समाधि पा लिया, हुआ आत्म-उद्धार ।।

– गणिवर्य श्री मणिप्रभसागरजी

प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री चालीसा

[आर्या श्री शशिप्रभा श्री जी]

: दोहा :

पार्श्व वीर प्रभु शरण ले, गुरु गौतम जयकार ।
दाता दत्त कुशल गुरु, अक्षय सुख भण्डार ।।१।।

वन्दन भाव त्रियोग से, चरण शरण सुखकार ।
गुरु सज्जन का मैं लिखूँ, चालीसा हितकार ।।२।।

: चौपाई :

सज्जन सज्जन सज्जन गावें, मन तन रोम रोम हरषावें ।
गुरुवर्य्या जगती उपकारी, ज्योति जगमग करती भारी ।।३।।

चन्द गुलाब वाटिका महके, वंश लूनिया दीपे चमके ।
पैंसठ उन्नीसौ संवत्सर, वैशाखी पूनम जग हितकर ।।४।।

माँ महताब सुदेवी सुखकर, उदित हुआ सोने का दिनकर ।
नन्हीं मुन्नी बाला प्यारी, नहीं किसी को लगती खारी ।।५।।

मातृ - पितृ ने इसे पढ़ाया, मति ने चमत्कार दिखलाया ।
लघु वय में ही चतुर बालिका, विकसित होती नन्हीं कलिका ।।६।।

जग में थी मन में जग नाथा, झूठा लगता रिश्ता - नाता ।
भाव विराग हृदय में जागे, किन्तु भाग्य चलता है आगे ।।७।।

कर्मराज के आगे हारे, वैवाहिक जीवन स्वीकारे ।
गोलेच्छा दीवान गृहांगण, राज प्रतिष्ठित वंश अतुल धन ।।८।।

वैभव था पर मन वैरागी, जिसकी अन्तर्- आत्मा जागी ।
जग सुख में डूबे वो कैसे, खारे लगते कटुफल जैसे ।।९।।

भोग सुखों में सुख ना माना, दुःखदायक है ऐसे जाना ।
शास्त्रों का अभ्यास किया है, राग - भाव - तम नाश किया है ।।१०।।

जग झूठा झूठी जग माया, रिश्ते नाते सब बस छाया ।
जीवन ना करना है निष्फल, पाना है मुझको आतम बल ।।११।।

सयम पथ ही सम्यक् पथ है, धन्य धन्य जो संयमरत है।
मुझको बस संयम है पाना, मन में संयम ज्योति जलाना ।।१२।।

गुरु श्री ज्ञान निकट में आई, सज्जन मन मति अति हरषाई।
ज्ञान गुरु से लीनी दीक्षा, पा उपयोग से आतम शिक्षा ।।१३।।

संवत उन्नीसौ निन्याने, चोटी सौंपी ज्ञान कमाने।
आनन्द आनन्द उर में छाया, सपना सच्चा आज बनाया ।।१४।।

रजोहरण अति शोभे कर में, ज्यों जिन मन्दिर दीपे घर में।
शान्त दान्त छवि महिमा भारी, गुण गाती है दुनिया सारी ।।१५।।

पंचांगी आगम अभ्यासा, दूर किया अज्ञान कुहासा।
विचरे मरुधर गुर्जर देशे, गौड़े अंगे बंग प्रदेशे ।।१६।।

विदुषी पदवी सार्थक पाई, समता रस निज उर छलकाई।
निकट नारी नर जो आता, दर्शन से सुख शान्ति पाता ।।१७।।

शैली प्रवचन सुमधुर वाणी, श्रोता पीते अमीरस ल्हाणी।
रत रहते समता स्वाध्याये, बिन स्वाध्याय कोई क्या पाये ।।१८।।

दोय सहस उनचालीस वर्षे, सूर्य नगर में आनन्द बरसे।
हाथों गुरुवर कान्ति सूरिवर, पाया प्रवर्तिनी पद जयकर ।।१९।।

अंधेरे में ज्यों उजियाला, सज्जन नाम अमिय रस प्याला।
तेज ओज मुख मण्डल दीपे, समता से कर्मों को जीपे ।।२०।।

परम विदुषी निरभिमानी, सरल सहज है अद्‌भुत ज्ञानी।
तेरे मानस गुण गण राजे, शान्त दान्त मुख मुद्रा छाजे। २१।।

भारत भूमि दिव्य विभूति, महावीर प्रभु की तुम दूती।
जन मानस प्रवचन प्रसराया, वचनामृत रस पान कराया ।।२२।।

हर पल निज चेतन में रहती, आत्म विलोकन धारा बहती।
प्राणी मात्र प्रति करुणा मन में, करुणा रस छलका जीवन में ।।२३।।

पूज्य भाव रहता पल-प्रतिपल, गुरुजनों के प्रति अति निर्मल।
रुचि थी अध्ययन अध्यापन में, श्रमण श्रमणियाँ पढ़े हैं गण में ।२४।।

तत्त्व चिंतना में रत रहते, आत्म गुणों के दीप प्रकटते।
भारत खरतर श्री संघ मिलकर, अभिनन्दन करते तव सुखकर ।।२५।।

निश्रा गणिवर मणिप्रभसागर, गुरुवर आये बड़ी कृपाकर।
दूर-दूर से भक्त पधारे, जय सज्जन-जय ! करते सारे ।।२६।।

राज्यपाल सुखदेव हैं करते, 'श्रमणी' ग्रन्थ समर्पित करते।
जयपुर चौमासा करवाया, गणि मणि गुरुवर सानिध पाया ।।२७।।

शशि, प्रियदर्शन, जयवर, दिव्या, तत्त्वदर्शना, सम्यग् भव्या।
शुभवर मुदित शीलगुण धारे, सौम्यगुणा कनकादि तारे ।।२८।।

दोय सहस छियालीस वत्सर, मौन इग्यारस उदित दिवाकर।
फेरे मन्त्र जपे नवकारा, कर माला मन प्रभु हितकारा ।।२९।।

मौनैकादशी गुणना करते, करते-करते शान्ति वरते।
बनीं स्वर्गवासी गुरु सज्जन, कर बेचैन सभी के तन-मन ।।३०।।

निराधार है शिष्या मण्डल, कौन सहारा देगा संबल।
गुरुवर्य्या तुम जहाँ कहीं हों, लगता है हर क्षण यहीं हो ।।३१।।

याद तुमारी आती रहती, आँखें जल बरसाती रहतीं।
इक पल भी तुमको न भूलें, तेरे स्मृति-झूले में झूलें ।।३२।।

कृपा करो माँ, कृपा करो माँ, झलक दिखादो दर्शन दो माँ।
हम कुछ कर पायें जीवन में, शक्ति-भक्ति भर दो तन-मन में ।।३३।।

यही प्रार्थना आज करूँ मैं, श्रद्धा रस भर थाल धरूँ मैं।
जो गुण गावे सज्जन तेरे, मिट जाये भव भ्रमणा फेरे ।।३४।।

बाट देखते निशदिन तेरी, सार करो हे माता मेरी।
जो कुछ पाया तुमसे पाया, थी मिट्टी घट तूने बनाया ।।३५।।

नित उठ जो चालीसा गावे, आत्म-शान्ति सुख-वैभव पावे।
जीवन अपना सफल बनावे, आनन्द आनन्द रस छलकावे ।।३६।।

: दोहे :

मैं अल्पज्ञा क्या करूँ, सज्जन के गुणगान।
लघु बालक क्या चढ़ सके, अष्टापद सोपान ।।३७।।

फिर भी गुरु श्रद्धा धरी, ले तेरा ही नाम।
कुछ तेरा वर्णन करूँ, मेरे श्रद्धा धाम ।।३८।।

सज्जन नाम जपूँ सदा, मन वच काया योग।
चालीसा गावे परम, पावे ऋद्धि भोग ।।३९।।

करे प्रार्थना 'शशिप्रभा', धर श्रद्धा व्रतधार।
जय सज्जन, जय ! सर्वदा, सज्जन जय - जयकार ।।४०।।

श्रद्धा - वन्दन

जयपुर में जो फूल खिला मणिवत् जिनशासन चमकाया,
बाह्याभ्यंतर घर संयम, तज दी बाह्याभ्यंतर माया।
धर श्रद्धा भर श्रद्धा उनके श्री चरणों में धरते हैं,
गुरुवर्य्या सज्जन श्री के चरणों में वन्दन करते हैं।। टेर ।।

आगम ज्योति, आगम ज्ञाता, आगम अनुसार था जीवन
सरल सहज अति सौम्य शीलगुणराज रहें उनके तन - मन
उनके दिव्य प्रभा-मंडल से ज्योति हृदय में धरते हैं
गुरुवर्य्या सज्जन श्री के···· ।।१।।

लेखन था उनका अति सुन्दर, प्रभावशाली था प्रवचन
श्रोता उनकी वाणी में डूबे रहते थे विचित्र बन
तेरे गुण हम गा न सके, बस दिल की श्रद्धा धरते हैं
गुरुवर्य्या सज्जन श्री के···· ।।२।।

मौन इग्यारस का दिन वह पल, वह कितनी दुःखदाई थी
दिव्य सूर्य पर एक घनी अंधेरी बदली छाई थी
बनीं स्वर्गवासी गुरुवर्य्या, शीष चरण में धरते हैं
गुरुवर्य्या सज्जन श्री के···· ।।३।।

परम सुपावन प्रेरक तेरा गुरुवर्य्या जीवन उज्ज्वल
भूल सकें न तुझे हम याद करें ध्यावें पल-पल प्रतिपल
तेरी यादों में गुरु माता झर - झर आंसू झरते हैं
गुरुवर्य्या सज्जन श्री के···· ।।४।।

महिमा तेरी क्या गायें हम, दिन कैसा स्वीकार किया
मौन इग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं
गुरुवर्य्या सज्जन श्री के···· ।।५।।

वय्यासी संवत्सर देखे पंचाशत संयम पर्याय
दृढ़ चारित्र पालना द्वारा, आत्म गुणों की कीनी आय
ऐसे अनुपम सम्यक् - दृष्टि आतम ही भव तरते हैं
गुरुवर्य्या सज्जन श्री के···· ।।६।।

श्री शशि प्रिय जय दिव्य तत्त्व सम्यक् की सार करो माता
वर शुभ मुदित शील गुण सौम्या कनकादि की तुम त्राता
तव जीवन अनुसरण करेंगे, आज यही प्रण करते हैं
गुरुवर्य्या सज्जन श्री के····।।७।।

विनती

गुरुवर्य्या ऐसे क्यों छोड़ चलीं
निर्नाथ हो गई शिष्या-मंडली ।।

मौन एकादशी शुभ दिन में, ज्योति जगी अन्तर्मन में
दादाबाड़ी के प्रांगण में, इस नश्वर देह को छोड़ चलीं ।।१।।

क्रूर काल ने यह क्या किया, असमय में शिर छत्र लिया
हा ! दर्शन से भी वंचित किया, बिलखती हमें यूं छोड़ चलीं ।।२।।

वज्रपात हुआ हम पर, निकले टीस हृदय फट कर
धैर्य बंधावे कौन हमें, कैसे निकले दिन रात घड़ी ।।३।।

छः महिनों का वियोग रहा, दर्शन बिन मन तड़प रहा
हा ! कैसे अभागे रहे गुरुवर ! यही दुःख है मन हर पल घड़ी ।।४।।

पट्टधर शिष्या शशिप्रभा, चमके तेज ज्यूं भानु प्रभा
स्वस्थ बने चिरायु बने, यही प्रार्थना है तुमसे हमारी बड़ी ।।५।।

सज्जन मंडल विनती करे, वरद हस्त शिर पे धरे
शशिसम निर्मल बुद्धि वरें, 'प्रिय' शील चरण में आन पड़ी ।।६।।

ओ सज्जन गुरुवर्य्या !

[तर्ज : ए···मेरे दिले नादान]

ओ सज्जन गुरुवर्य्या ! हमें दर्शन दे देना
हम आयी शरण तेरी, यह विनती सुन लेना ।।टेर।।

मां महताब की प्यारी थी, जन-जन की दुलारी थी
पिता गुलाबचन्दजी से, पायी सुगन्ध निराली थी
उस सुगन्ध का इक अंश, हमको भी दे देना ।।१।।

आगम मर्मज्ञा थीं, आशु कवयित्री तुम
अनुवादिका अद्भुत थीं, और सुन्दर लेखिका तुम
तेरी गीतिकाएँ अनुपम, गाते सब दिन रैना ।।२।।

सिद्धान्त विशारद थीं, अति शान्त सरल विज्ञा
थीं गच्छ प्रवर्तिनी तुम, करती सुमधुर आज्ञा
चहुंमुखी प्रतिभा तेरी, की दूर कर्म सेना ।।३।।

तेरा स्वर्ग गमन सुनकर, दिल हा - हाकार मचा
इस क्रूर काल ने भी, हा ! यह क्या खेल रचा
वंचित किया दर्शन से, भर-भर आते नैना ।।४।।

जब तक इस दुनिया में, रहें शशि ऋक्ष दिनकर
तब तक रहे इस जग में, तेरा उज्ज्वल नाम अमर
तेरी कीर्ति का डंका भी, बजता रहे दिन रैना ।।५।।

सज्जन मंडल तुमसे, करे प्रार्थना प्रतिपल
सम्यग् दर्शन पाकर, धोयें कर्मों का मल
शशि सम तुम प्रियदर्शन, कब होंगे बता देना ।।६।।

अनुपम रूप

[तर्ज : चांदी जैसा रूप है तेरा]

कैसा अनुपम रूप है तेरा, आगम-ज्योति महाराज
एक तुम्हारा ही ध्यान भगवती ! तुम सबकी शिरताज ।।टेर।।

संवत उन्नीसौ पेंसठ की, वैशाख पूर्णिमा आई
लूनिया वंश में शुभ्र समुज्ज्वल, कौमुदी बनकर छाई
महताब मां की रत्नकुक्षि से लिया जन्म सुखदाई
घर-घर तोरण द्वार बंधे हैं बज रहे मंगलसाज ।।१।।

पिता गुलाबचन्द जी से तूने, पाई सुखद सुवास
आगमज्ञान का वाचन करके, किया स्व का सुविकास
यौवन वय में लेकर दीक्षा, ज्ञान गुरु के पास
पा उपयोग से अनुपम शिक्षा, बनी सज्जन श्री महाराज ।।२।।

कान्ति गुरु के वरद हस्त से, बनी प्रवर्तिनी सुज्ञा
आशु कवयित्री थीं अद्भुत और आगम - मर्मज्ञा
ग्रन्थ अनेकों की निर्माता, कई भाषाओं की विज्ञा
तेरी गुण गरिमा गाते हैं, सुर-नर योगिराज ।।३।।

संवत् दो हजार छियालीस, मौन - एकादशी आई
क्रूर काल ने निर्दयी हाथों, लिया गुरु को छिटकाई
हा-हाकार मचा है चिहुं दिश, दिवस बना दुःखदाई
क्षतिपूर्ति कभी हो न सकेगी, कहे सारा जैन समाज ।।४।।

महताब-गुलाब दीपिका

महताब-गुलाब दीपिका, ज्ञान-उपयोग सेविका ।
प्रवर्तिनी पद धार कर, बन गई कंचन ।।
कोटि-कोटि वंदन ! शत्-शत् अभिनन्दन !!

ओ दिव्य विभूति, सजग प्रबल अनुभूति ।
उतरी धरा पर, बन गई कुन्दन ।।
कोटि-कोटि वंदन ! शत्-शत् अभिनन्दन !!

ओ आगम-ज्योति, हो अनमोल मोती ।
स्व को भुला कर, बन गई चंदन ।।
कोटि-कोटि वंदन ! शत्-शत् अभिनन्दन !!

विनम्र, शान्त, सेवाभावी, मित-मृदुभाषी, मेधावी ।
शालीनता को अपनाकर, बन गई सज्जन ।।
कोटि-कोटि वंदन ! शत्-शत् अभिनन्दन !!

सृजनहार-साहित्य साधिका, समभावी साक्षात् देवी ।
कल्याण भाव जगाकर, बन गई दुःख भंजन ।।
कोटि-कोटि वंदन ! शत्-शत् अभिनन्दन !!

तपोमयी त्यागी जीवन, स्वाध्याय, समर्पित मन ।
शासन में सौरभ फैलाकर, बन गई मधुबन ।।
कोटि-कोटि वंदन ! शत्-शत् अभिनन्दन !!

व्यक्तित्व-कृतित्व अनुमोदनीय, गुण-गरिमा पूर्ण प्रशंसनीय ।
कृपा हाथ बढ़ाकर, जग को करें पावन ।।
कोटि-कोटि वंदन ! शत्-शत् अभिनन्दन !!

हमीरपुरा,
बाडमेर – 344001

– प्रो. बंशीधर तातेड़

मातृ-वन्दना

आगम-ज्योति ज्ञान-निधि मां, ज्ञान की सरिता बहा दो,
कषाय कलुषित हुआ आतम, त्वरित स्वच्छ-सुन्दर बना दो।
त्रियोग शुद्धि से मैं करूं नित, प्रार्थना तुमसे सदा,
हृदय-मन्दिर में अखण्डित, ज्ञान की ज्योति जगा दो ।।

रंग-राग से भिन्न सदा रह, स्व में स्व का चिन्तन करतीं,
अमल, अखण्ड, अनन्त, समुज्ज्वल, निज में निज का दर्शन करतीं।
स्वाध्याय, ध्यान, स्वात्मानुभूति से, पर-पुद्गल-राग विनष्ट किया,
और पाकर सम्यग्ज्ञान-चरित्र-दर्शन 'स्व' में रमण करतीं ।।

श्रद्धा-समन्वित हृदयकोष में, ममतामयी मां का आसन हो,
अर्चन-पूजन नित्य करूं और शुभ्र-समुज्ज्वल मन-आंगन हो।
अद्भुत काव्य-कला तेरी सुन, जन-जन हर्षित होते थे,
साक्षात् स्वरूपा सरस्वती के, तुम में मां दर्शन होते थे ।।

– आर्या प्रियदर्शना श्री

स्मृति-गीतिका

सज्जन-सज्जन करते, हम सज्जन-सज्जन करते।
गुरुवर्या याद तेरी, अश्रु से अखियां भरते ।।टेर।।

पल-पल क्षण-क्षण तेरी, स्मृतियां दिल आती हैं,
यादों की गलियों में, छाती भर जाती है।
नाम हर होठ पे रहता, याद हर पल हम करते ।।1।।

किसको शंका पूछें, अब किसे पुकारें हम,
मीठी गहरी वाणी से, कौन निवारे भ्रम।
हम आज अनाथ बने, हृदय में पीड़ा को भरते ।।2।।

गुरु, माता, जनक, सम थीं, पावन मति समता,
वीतराग ध्यान रत थीं, तोड़ी थी जग की ममता।
चारित्र धनी थीं ऐसी, नाम तेरा निशदिन रटते ।।3।।

इक वर्ष आज बीता, मौनैकादशी आई,
सूरज पर शशि की किरणें, इक पल है मुरझाई।
'सम्यक्-दर्शन' शरणे, हृदय में चित्र तेरा धरते ।।4।।

(लय : तू प्यार का सागर है)

गौरव-गान

जैन शासन में श्रमण का दिव्य पद यह ज्येष्ठ है,
श्रमणी संघ का भव्य जीवन भी यहां पर श्रेष्ठ है।

महासती चन्दन सुभागा, ज्ञान संयम-शील रागी,
वह शिरोमणि भिक्षुणी तप-त्याग की मन लगन लागी।

है यहां वही साध्वी-संघ आज जयवंता सुहाना,
महाप्रभावी यशस्वी गुणगान, महिमावान माना।

है धरा-सी धीरता, फिर सिंहनी-सी वीरता,
पाई जिन्होंने साधना से, सागरवत् गंभीरता।

शिखर-सी गुण उच्चता, सयम विलासी भव्यता,
सौम्य शशि-सी रश्मियां, दे गई सुहानी दिव्यता।

साध्वी जीवन सदा उत्तम ही रहा इतिहास में,
प्रेरणादायी सु-भव्यों का सबल अभ्यास में।

श्रृंखला में गुरुवर्या सज्जन श्री शोभा लही,
सम्प्रदायातीत समभावी गुणिषु प्रमोद ही।

ढाल हर पल सजगता की वज्र-सी लेकर बढ़ी,
धन्य मुनियों सी विरलता, मंच महाव्रत पथ चढ़ी।

ज्ञान गरिमा विनय लघिमा, सम्प-सिद्धि से सुहाई,
परम जिनवाणी सरित्-सी, भावधारा-सी बहाई।

मधुर कोकिल सी सु-वाणी, सकल श्रोता मन लुभाई,
जहां चरण गतिमान हो गये, ज्ञान मय बगिया लगाई।

सरलवृत्ति सहजता से, बहुत शिष्याएं जगाई,
महाव्रत देकर जिन्हें शासन-प्रभावी भी बनाई।

नाम सज्जन काम सज्जन, सहज सज्जन वृत्ति-वर,
कर गई रोशन जगत को, सहजपन की सुधा पीकर।

यह दिवस है याद का, तप-त्याग से इसको मनायें,
'विजय' जय संयम में हो, ऐसा सभी वरदान पायें।।

—कवि विजयमुनि

गुरुवर्या छोड़ चलीं

करके हमको बेहाल, गुरुवर्या छोड़ चलीं,
अब कौन पूछेगा हाल, गुरुवर्या छोड़ चली ।।टेर।।

गुरु सज्जन नाम तुम्हारा था,
जगती का दिव्य सहारा था ।
ले छीन गया क्रूर काल ।।1।।

अनमोल मणि थी शासन की,
बरसात मधुर ज्यों सावन की ।
अब कौन रहा रखवाल ।।2।।

काल ने लूटा गच्छ का हीरा,
भक्तों की छाती को चीरा ।
यह दर्द बड़ा विकराल ।।3।।

अब चारों ओर अंधेरा है,
दुःख-दर्द ने सबको घेरा है ।
रोते हैं वृद्ध - आबाल ।।4।।

तेरी याद सासों में छाई,
नहीं भूल सकूं तुम्हें माई ।
इक नजर इधर भी डाल ।।5।।

मेरा रोम - रोम पुकार करे,
गुरु सज्जन-सज्जन याद करे ।
दिल मेरा हुआ है निढ़ाल ।।6।।

तुझ पद-चिह्नों पर चलती रहूं,
निज आत्म-रमणता करती रहूं ।
'शशि-सम्यक्' को संभाल ।।7।।

(लय : अखण्ड सौभाग्य.....)

परिशिष्ट–2

साहित्य-साधना

प्रणीत साहित्य

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी एक सृजनधर्मी कवयित्री थीं। काव्यकला उनको जन्मजात गुण के रूप में प्राप्त थी। उनकी भक्ति-उपदेश-वैराग्य प्रधान रचनाएं बहुत ही ललित और जीवन्त प्रेरणा भरी हैं। प्रवर्तिनीश्रीजी द्वारा प्रणीत निम्नांकित ग्रन्थ उनकी सृजनधर्मिता के उल्लेखनीय बिन्दु हैं :—

1. पुण्य जीवन-ज्योति

खरतरगच्छ की महत्तरा साध्वीरत्न पूज्या पुण्यश्रीजी म. सा. की जीवन-कथा, जिसको लेखिका ने अपने अनुभव तथा चिंतन का पुट देकर राष्ट्र भाषा हिन्दी में प्रभावशाली ढंग से लिखा है। संस्कृत, प्राकृत तथा अन्य भाषाओं के उद्धरणों से विवरण और अधिक प्रामाणिक बन गया है। प्रसंगानुसार पवित्र स्थलों, पूजा-अर्चना-विधियों, पर्वों और उत्सवों का विस्तार से वर्णन किया गया है। रंगीन चित्रों के संकलन से ग्रन्थ की उपयोगिता और अधिक बढ़ गयी है। इस प्रकार ग्रन्थ एक जैन साध्वी का पावन जीवन चरित्र होने के साथ-साथ जैन सिद्धान्तों, आदर्शों, मान्यताओं, पर्वों और त्यौहारों का परिचय-ग्रन्थ भी है।

2. श्रमण सर्वस्व

साधक जीवन में जागरूक रहने का उद्घोष करने वाली यह कृति अनेक शास्त्रों, प्रकरणग्रन्थों एवं अध्यात्म-रचनाओं का सार है, जो साधु जीवन के योग्य स्वस्थ पाथेय प्रदान करती है। सं. 2027 में मुद्रित 'श्रमण सर्वस्व' पूज्या सज्जन-श्रीजी की सूझबूझ, विदुषिता एवं लोक-संग्रह की भावना को प्रकट करता है।

इनके अतिरिक्त प्रवर्तिनीश्रीजी की कुछ अन्य कृतियाँ भी हैं—

1. कुसुमांजलि
2. द्वादशपर्व व्याख्यान
3. सज्जन-वचन-पीयूष

काव्य-रचनाएं

बहुआयामी प्रतिभा की धनी आर्यारत्न सज्जनश्रीजी एक ओर आगम और सैद्धान्तिक ग्रन्थों की अध्येता थीं तो स्वभाव से भक्त-कवयित्री थीं। आराध्य के प्रति निश्छल समर्पण, विनम्र आत्म-निवेदन और जन-प्रबोधन उनकी काव्य-धारा के मूल तत्त्व रहे हैं। उनकी कोमल और माधुर्य भावना कविता के स्वरों में फूट पड़ी है। उनकी रचनाएं प्रधानतया मुक्तक, पद अथवा गीतों के रूप में उपलब्ध हैं। उनकी काव्य-रचनाओं के अनेक संकलन प्रकाशित हो चुके हैं कतिपय उल्लेखनीय नाम हैं :—

1. ज्ञान पुष्पांजलि
2. श्री जैन गीतांजलि
3. सज्जन विनोद
4. तीर्थंकर चौबीसी
5. कथा गीतिकाएं
6. वीर गुण गुच्छक
7. सज्जन भजन भारती
8. सज्जन संगीत सुधा आदि-आदि

अनूदित साहित्य

प्रवर्तिनीश्रीजी ने नई रचनाओं के साथ अनेक उत्कृष्ट कोटि के अनुवाद भी किये हैं। उनके द्वारा अनूदित निम्नांकित कृतियाँ जैन समाज एवं अध्यात्म पिपासु पाठकों द्वारा विशेष रूप से समादृत हुयी हैं :—

1. अध्यात्म प्रबोध : देशनासार

खरतरगच्छ के विश्रुत विद्वान् सुप्रसिद्ध अध्यात्मवादी श्रीमद् देवचन्द्रगणी का प्राकृतगाथाबद्ध ग्रन्थ, जिसमें मुख्यतः आत्मा, सम्यग्दर्शन, कर्म आदि गम्भीर आध्यात्मिक विषयों की चर्चा है। आर्यरत्न श्री सज्जनश्रीजी महा. ने स्वोपज्ञवृत्ति के आधार पर संवत् 2025–27 में इसका सुन्दर भावोद्घाटिनी व्याख्यायुक्त भावपूर्ण अनुवाद किया था।

2 द्रव्य प्रकाश

अध्यात्मवेत्ता श्रीमद् देवचन्द्रगणी की यह रचना द्रव्यानुयोग पर आधारित है। मूल ब्रज भाषा में रचित इस काव्य का स्पष्ट, सरल विवेचनयुक्त अनुवाद

प्रवर्तिनीश्रीजी द्वारा किया गया है। इस अनुवाद से आर्याश्रीजी की अध्यात्म एवं दर्शन विषयों में गहरी पैठ की स्पष्ट प्रतीति होती है।

3. कल्पसूत्र

'कल्पसूत्र' श्वेताम्बर जैन समाज की रामायण माना जाता है। इसके अनेक अनुवाद एवं व्याख्याएं छप चुके हैं। कलकत्ता के श्री जिनदत्त सूरी सेवा संघ तथा अन्य विद्वानों की प्रार्थना पर प्रवर्तिनीश्रीजी ने सम्वत् 2009 में खरतरगच्छीय उपाध्याय श्री लक्ष्मीवल्लभगणि कृत 'कल्पद्रुमकलिका' के आधार पर कल्पसूत्र का सरल हिन्दी अनुवाद–विवेचन तैयार किया था जो एक स्वतंत्र अनुवाद है। कल्पसूत्र जैसे गूढ़ एवं विशाल ग्रन्थ का अनुवाद आगमज्ञाश्री की दृढ़ इच्छा शक्ति, निष्ठा, तन्मयता और प्रबल आत्म-शक्ति का द्योतक है। इस अनुवाद की भाषा और शैली प्राञ्जल, सरस और भावग्राही है।

4. श्री चैत्यवन्दनकुलक-वृत्ति

श्री जिनकुशलसूरि विरचित 'श्री चैत्यवन्दनकुलक-वृत्ति' का हिन्दी अनुवाद प्रवर्तिनीश्रीजी के सशक्त अनुवाद–कौशल का एक और उदाहरण है। इस ग्रन्थ में जैन श्रावक-श्राविकाओं के कर्तव्य तथा आचार-विचार पर प्रकाश डाला गया है। अनुवाद की भाषा में सरलता, सुकुमारता, श्लिष्टता और मार्दवभाव समाहित हैं। मूल कृति शास्त्र है, बौद्धिक और विचारात्मक है किन्तु आर्याश्री ने चौबीस कथाओं का समायोजन कर कृति को जीवन्त-रुचिवन्त बना दिया है।

इनके अतिरिक्त प्रवर्तिनीश्रीजी द्वारा लिखित, विवेचित एवं अनूदित साहित्य और भी उपलब्ध है।

परिशिष्ट–3

प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी महाराज का शिष्या–परिवार

1. शशिप्रभाश्रीजी

जन्म फलौदी, संवत् 2001 में। पिता—श्री ताराचन्दजी, माता—बालादेवीजी, गोत्र—गोलेच्छा, पूर्वनाम—किरण। 10 वर्ष की अल्पायु में दीक्षा, इनकी बुआ पूज्या पुण्यश्री जी म.सा. के पास दीक्षित थीं, नाम था उपयोगश्रीजी। दीक्षा—संवत् २०१४ में मिसगर सुदी दूज, ब्यावर में, पूज्या विज्ञानश्रीजी के सान्निध्य में। हिन्दी, संस्कृत का अच्छा अभ्यास। राजस्थान विश्वविद्यालय से जैन दर्शन में आचार्य। तप-त्याग में विशेष रुचि। अनुशासनप्रिय एवं प्रवचन कला प्रवीण।

2. प्रियदर्शनाश्रीजी

जन्म—जयपुर, संवत् 2006 में। पिता—श्री कमलचन्दजी, माता—चन्द्रावतीजी, गोत्र—बांठिया। पूर्व नाम—किरण। दीक्षा - संवत् 2023 में आषाढ़ सुदी 6 को जयपुर में। संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान। साहित्यरत्न, प्रबचन-प्रवीण।

3. जयश्रीजी

जन्म—अरांई (जिला-अजमेर), वि. सं. 1660 में। पिता—श्री सगत-सिहजी, माता—धापूबाईजी, गोत्र—मेहता। पूर्व नाम—तेजकंवर। दीक्षा—संवत् 2026, वैशाख बदी 10 को श्री आचार्य जिनकांतिसागरजी की निश्रा में, जयपुर में। स्वाध्यायशील, तप में विशेष रुचि।

4. दिव्यदर्शनाश्रीजी

जन्म—फलौदी, वि. संवत् 2008। पिता—श्रीभीखमचन्दजी, माता—सुन्दरदेवीजी, गोत्र—कोचर। पूर्व नाम—निर्मला। दीक्षा—खड़गपुर में वि. सं. 2030, मिति माघ सुदी 5 को। अनेक प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का अर्थ सहित अध्ययन, तप-त्याग में रुचि के साथ अच्छी सेवा भावना।

5. तत्वदर्शनाश्रीजी

जन्म—खड़गपुर, वि. सं. 2012 में। पिता—श्रीमीखमचन्दजी, माता—सुन्दरदेवीजी, गोत्र—कोचर। पूर्व नाम—हीरामणि। दीक्षा—वि. सं. 2030, माघ सुदी 5 (28 जनवरी, 1973) को खड़गपुर में। तप-त्याग में रुचि के साथ सेवा भावना।

6. सम्यग्दर्शनाश्रीजी

जन्म—खड़गपुर, वि.सं. 2016 (21 फरवरी, 1960)। पिता—श्रीमीखमचन्दजी, माता—सुन्दरदेवीजी, गोत्र—कोचर। पूर्व नाम—कमलेश। दीक्षा—खड़गपुर, वि. सं. 2030, माघ सुदी 5 (28 जनवरी, 1973) को। अध्ययन व प्रवचन में विशेष रुचि।

7. शुभदर्शनाश्रीजी

जन्म—जीवाणा (जालौर), वि.सं. 2016। पिता—श्रीहस्तीमलजी, माता—मोहरादेवीश्री, गोत्र—बागरेचा। पूर्व नाम—लीला। दीक्षा—वि. सं. 2037, पौष सुदी 10 को नाकोड़ाजी तीर्थ में श्री आचार्य जिनकांतिसागरजी की निश्रा में। जैनदर्शन में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण। प्रवचन कुशल।

8. मुदितप्रज्ञाश्रीजी

जन्म—अजमेर, वि.सं. 2014 में। पिता—श्रीमानमलजी, माता—चाँददेवीजी, गोत्र—सुराणा। पूर्व नाम—मंजु। दीक्षा—अजमेर, पू. कैलाशसागरजी की निश्रा में, वि.सं. 2038, वैशाख बदी 6 को। शिक्षा—बी. ए., अध्ययन जारी। प्रवचन कुशल।

9. शीलगुणाश्रीजी

जन्म—गढ़सिवाणा (जिला-बाड़मेर), वि.सं. 2020। पिता—श्रीहेमराजजी, माता—सीतादेवीजी, गोत्र—ललवाणी। पूर्व नाम—नीता। दीक्षा - वि. सं 2040, वैशाख बदी 6 आचार्य श्री जिन उदयसागरजी की निश्रा में, गढ़ सिवाणा में। अध्ययनरत। लघु सिद्धान्त कौमुदी कण्ठस्थ। मैट्रिक।

10. सौम्यगुणाश्रीजी

जन्म—गढ़सिवाना, वि.सं. 2027। पिता—श्रीकेशरीचन्दजी, माता—विमलादेवीजी. गोत्र—छाजेड़। पूर्व नाम—निशा। दीक्षा—सं. 2040, वैशाख बदी 6, गढ़ सिवाणा में आचार्य श्री उदयसागरजी की निश्रा में। नाम के अनुरूप सौम्य

स्वभाव। अध्ययनरत। सम्पूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र कण्ठस्थ, राजस्थान वि. वि. से जैनदर्शन में शास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणी (तृतीय स्थान) में उत्तीर्ण।

11. कनकप्रभाश्रीजी

जन्म—जीवाणा (जालौर), वि. सं. 2023। पिता—श्रीहस्तीमलजी, माता—मोहरादेवीजी, गोत्र—बागरेचा। पूर्व नाम—मँवरी। दीक्षा—गणी मणिप्रभसागरजी की निश्रा में, वि. सं. 2042, मिगसर बदी 3 को। अध्ययनरत।

12. श्रुतदर्शनाश्रीजी

जन्म—जीबाणा (जालौर), वि. सं. 2023 - पिता—श्रीखेतमलजी, माता—हस्तुबाईजी, गोत्र—गोलेच्छा। पूर्व नाम—सुमन। दीक्षा—गणी मणिप्रभसागरजी की निश्रा में वि. सं. 2043, आषाढ़ बदी 2 को। अध्ययनरत।

13. संयमज्योतिश्रीजी

जन्म—जयपुर में 27 वर्ष पूर्व। पिता—श्रीरिखबराजजी भंडारी, माता—कमलाजी। पूर्वनाम—बेला। दीक्षा—28 जनवरी, 1990 को गणिवर्य श्रीमणिप्रभसागरजी म. सा. के सान्निध्य में। अध्ययन—एम. ए. (दर्शन शास्त्र), पंच-प्रतिक्रमण, कर्मग्रन्थ, तत्वार्थसूत्र, दशवैकालिक, सप्तस्मरणादि आदि कण्ठस्थ।

14. संयमगुणाश्रीजी

जन्म—जयपुर, 29 वर्ष पूर्व। पिता—श्रीसोहनराजजी गादिया, माता—माणकबाईजी। दीक्षा—28 जनवरी, 1990 को गणिवर्य श्रीमणिप्रभसागरजी के सान्निध्य में। अध्ययन—हायर सैकेण्डरी। पंच प्रतिक्रमण, दशवैकालिक, कर्मग्रन्थ, तत्त्वार्थ सूत्र, चार प्रकरण, सप्तस्मरणादि आदि कण्ठस्थ। पूर्वनाम - अनीता।

15. संयमप्रज्ञाश्रीजी

जन्म—गढ़ सिवाणा (बाड़मेर), वि. सं. 2019 में। पिता—श्रीहरखचंदजी, माता—हीरादेवीजी, गोत्र—मंसाली। पूर्वनाम—लक्ष्मी। दीक्षा—वैशाख बदी 13, सं. 2047 को गणिवर्य मणिप्रभसागरजी के कर-कमलों से गढ़सिवाणा में। कर्मग्रन्थ, तत्वार्थसूत्र आदि कण्ठस्थ। मैट्रिक। अध्ययन जारी।

परिशिष्ट–4

प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी म. सा. के यशस्वी चातुर्मास

प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी ने अपने 49 वर्षीय साधना काल में कुल 48 चातुमास किये हैं जिनमें से 30 जयपुर शहर में सम्पन्न हुए हैं। इनमें से दस तो लगातार 1958 से 1967 तक ही हुए हैं। निरपेक्ष भाव से जहाँ भी चातुर्मास हो जाता वे कर लेतीं। जयपुर में इतने चातुर्मास हो जाना संयोग मात्र ही है, यद्यपि यह उनकी जन्मभूमि होने के साथ दीक्षा नगर भी है।

उन्होंने सात चातुर्मास राजस्थान के बाहर किये, जो पूर्व में कलकत्ता से लेकर पश्चिम में जामनगर तक हुए हैं। राजस्थान के बाहर उनका प्रथम चातुर्मास भारत की राजधानी दिल्ली में सन् 1970 में हुआ था। उससे अगला चातुर्मास उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में सम्पन्न हुआ। उसके बाद कलकत्ता में उनके दो चातुर्मास हुए तथा कलकत्ता के तुरन्त बाद ही तीर्थंकर महावीर के निर्वाण से पावन और धन्य बनी पावापुरी में 1974 में चातुर्मास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पावापुरी चातुर्मास के दो वर्ष बाद उन्हें मन्दिरों की नगरी के नाम से विश्वविख्यात तीर्थराज शत्रुंजय की तलहटी में बसे पालीताणा नगर में चातुर्मास करने का सुयोग प्राप्त हुआ। यह सन् 1976 की बात है, पदयात्रा करते हुए एक साध्वी का देश के पूर्वी छोर मे दो वर्ष के भीतर पश्चिमी छोर तक पहुँच जाना कम महत्त्व की बात नहीं है। उनका अगला चातुर्मास सौराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर जामनगर में हुआ। इस तरह राजस्थान के अतिरिक्त उनके चातुर्मास दिल्ली सहित पाँच राज्यों में सम्पन्न हो चुके हैं। ये राज्य हैं : उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और गुजरात।

दिल्ली जाने से पूर्व उन्होंने अपनी गुरुवर्या ज्ञानश्रीजी की जन्मभूमि फलौदी (जिला-जोधपुर) में 1979 का चातुर्मास किया था। फलौदी इस मामले में सौभाग्यशाली रही। इस महान् साध्वी ने दीक्षित होने के बाद दूसरा चातुर्मास भी फलौदी में ही किया था। वह सन् 1943 की बात है। उस समय पू. ज्ञानश्रीजी विद्यमान थीं। दोनों चातुर्मासों में पूरे 26 वर्ष का अन्तर रहा। फलौदी और कलकत्ता के अतिरिक्त सिवाना ही ऐसा नगर है जहाँ सज्जनश्रीजी ने दो चातुर्मास किये। जिन चार स्थानों पर उनके एक से अधिक चातुर्मास हुए उनमें दो जयपुर

और कलकत्ता तो बड़े शहर और राज्यों की राजधानियाँ हैं और दो पुराने मारवाड़ की मरुभूमि के प्राचीन नगर हैं। राजस्थान में उनके चातुर्मास उदयपुर संभाग को छोड़कर बाकी सभी संभागों में हो चुके हैं। उनके अब तक के 48 चातुर्मासों की तालिका निम्नांकित है :—

क्रम	स्थान	वि.सं.	सन्
1.	जयपुर	1999	1942
2.	फलौदी	2000	1943
3.	जयपुर	2001	1944
4.	कोटा	2002	1945
5. से 8.	जयपुर	2003 से 2006	1946 से 1949
9.	झुंझुनूं	2007	1950
10. से 15.	जयपुर	2008 से 2013	1951 से 1956
16.	टोंक	2014	1957
17. से 26.	जयपुर	2015 से 2024	1958 से 1967
27.	बीकानेर	2025	1968
28.	फलौदी	2026	1969
29.	दिल्ली	2027	1970
30.	लखनऊ	2028	1971
31.	कलकत्ता	2029	1972
32.	कलकत्ता	2030	1973
33.	पावापुरी	2031	1974
34.	जयपुर	2032	1975
35.	पालीताणा	2033	1976
36.	जामनगर	2034	1977
37.	जयपुर	2035	1978
38.	अजमेर	2036	1979
39.	सिवाना	2037	1980
40.	ब्यावर	2038	1981
41.	जोधपुर	2039	1982
42.	सिवाना	2040	1983
43. से 48.	जयपुर	2041 से 2045	1984 से 1989

परिशिष्ट–5

शेष-अशेष

पूज्या प्रवर्तिनी श्री जी के अभिनन्दन समारोह के अवसर पर प्राप्त विशिष्ट संदेश, वक्तव्य एवं अभिनन्दन पत्र आदि का सार-संक्षेप :

श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा. का आशीर्वचन

महासतीजी श्री सज्जनश्रीजी म. सा. का जन्म, विवाह और दीक्षा के प्रसंगों से तेरापंथी, स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी, तीनों सम्प्रदायों के सम्बन्ध का त्रिवेणी-संगम रहा है। आचार्यश्री विनयचन्द्रजी म. सा. एवं तपस्वी श्री बालचन्द जी म.सा. के परमभक्त दीवान श्री नथमल जी गोलेछा के पौत्र श्री कल्याणमल जी गोलेछा की आप संसारपक्ष में धर्मपत्नी थीं। संयम भावना से साध्वी पुण्यश्रीजी के समुदाय में आप दीक्षित हुईं।

आप स्वभाव से शान्त, सेवावृत्ति की भावनावाली हैं। आप बिना किसी सम्प्रदाय-मोह के जिनधर्म की सेवा करने वाली हैं। जयपुर में रहने वाले तीनों सम्प्रदायों के श्रावक वर्ग में आप श्रद्धा से देखी जाती हैं। आप चिरायु होकर जिनशासन की सेवा करती रहें और तप सयम से शासन को सुशोभित करें।

श्रीमती जतन कंवर जी गोलेच्छा अध्यक्ष-श्री जैन श्वे. खरतरगच्छ संघ, जयपुर, का वक्तव्य

राजस्थान की भूमि संत एवं शूरवीर रत्नों के लिये चिरकाल से गौरवान्वित रही है। भारतवर्ष के इन्हीं संत पुरुषों ने सत्य-अहिंसा का उपदेश देकर मानव जाति का कल्याण ही नहीं किया वरन् भारतीय सभ्यता एव संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा है। इसी संत परम्परा में आर्यारत्न श्री सज्जनश्रीजी म. सा. हैं, जिन्होंने सम्पन्न परिवार की सुख-सुविधा त्यागकर यौवनवय में पूर्ण वैराग्य भाव से आज से 48 वर्ष पहले परम पूज्या प्रवर्तिनी श्री ज्ञान श्रीजी म.सा. के पास कठोर संयम व्रत

धारण किया था। आज वे ज्ञान-भक्ति का बल पाकर तप एवं चारित्र के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ हैं।

धर्म क्षेत्र में संकीर्ण विचारधारा से विमुक्त होकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि के लिये अन्य सम्प्रदायों के आचार्यों से मिलने, तत्त्व-विचारणा करने में आपने कभी संकोच नहीं किया। आपकी उर्ध्व चेतना सदा अन्तर्मुखी रही है।

सुदीर्घ संयम साधना की 80 वर्ष की इस आयु में भी अप्रत्तमाव से जीवन-यापन करते हुये "समय गोमय मा पमायए" को आपने अपना जीवनसूत्र बना रखा है। कहा भी है कि :

"मनस्यिकम् वचस्येकम् कर्मण्येकम् महात्मनाम्"

सुश्री सुनीता जैन, जयपुर

A Bright Star of Our Society

The age of Lord Mahaveer was the period of revival of Jainism. He rebuilt our religious traditions and reformed the 'Chaturvidh Sangh' which consisted of Sadhu, Sadhvi, Shravak and Shravika. The tradition of Sadhvis is also very ancient. We find references of Brahami and Sundari who were the daughters of Lord Rishab Dev. Chandanbala was the chief sadhvi of Lord Mahaveer's period.

Most respected Pravartini Shri Sajjan Snri Ji Maharaj Saheb is also a very important constituent to this tradition.

Maharaj Saheb is a living symbol of politeness, knowledge, learning, generosity, simplicity and affection. She is very affectionate to everyone and also very influensive. Any one who see here once, get impressed with the magical attraction of her personality.

Infact, she is a real genius, we all love her, respect her, admire her, feel proud of her and want to follow her. Indeed, she is a bright star of our society.

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, जयपुर का अभिनन्दन-पत्र

परमश्रद्धेया !

आपका यशस्वी जीवन अध्यात्म उपवन के उस पुष्प की भाँति है जो अपनी भव्यता से सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है तथा अपने सौरभ से समूचे वातावरण को सुवासित करता रहता है। आपश्री के गुणों का वर्णन करना हमारे लिए अत्यन्त कठिन कार्य है, तथापि आपके सान्निध्य लाभ से जो कतिपय सूत्र हमें उपलब्ध हुए हैं, उन्हें हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं :

विदुषी आगमज्ञा !

अध्ययन ही आपकी चर्या है और अनुशीलन है आपकी प्रकृति। जैन तत्त्वों और आगम सूत्रों का अध्ययन-अनुशीलन कर आपने जो मौलिक ग्रन्थों की रचना की है, वह जैन धर्म और दर्शन की अमूल्य थाती बन गये हैं। तत्त्वों की सूक्ष्मताओं का ज्ञान होना सहज नहीं है, उस ज्ञान को अन्य मानस तक पहुँचाना तो और भी कठिन है; किन्तु आपने ये दोनों सफलताएँ सहज रूप से अर्जित की हैं।

पिता श्री की सही पहचान !

तत्त्वों में रुचि का वातावरण आपको अपने स्वनामधन्य पिता श्री गुलाब-चंदजी सा. लूणिया से विरासत में मिला। जैन जगत का कण-कण श्री लूणिया साहब के कृतित्व से भली-भाँति परिचित है। वे एक सफल ग्रन्थकार, तत्त्ववेत्ता, कुशल भाष्यकार, कवि-गीतकार एवं सुमधुर गायक हुये हैं। बचपन से ही आपने अपने पिताश्री का अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने भी एक लाडले पुत्र की भाँति दिव्य संस्कारों से आपको मण्डित किया तथा परम विदुषी, तत्वज्ञा एवं कुशल गीतकार बना दिया। पिता ने जो संस्कार दिये उनको जीवन में अक्षरशः चरितार्थ कर आपने उस पर संयम का स्वर्णकलश भी चढ़ा दिया। आप धन्य हैं !

सरलता और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति !

आपकी जीवन-शैली अत्यन्त सहज और सरल है। आकर्षक व्यक्तित्व और तेजस्वी मुख-मण्डल पर विराजित सरलता का दिव्य प्रकाश आपके सान्निध्य में पहुँचते ही अभिभूत कर देता है। मधुर और स्पष्ट वाणी से आपकी सहजता प्रभाव उत्पन्न करती है तथा सभी स्थितियों में सहज बने रहने की प्रकृति से आभास होता है कि आप सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति हैं। आपके ये गुण सचमुच अभिनन्दनीय हैं।

विनयशील संयमविभूति !

बचपन में ही उत्पन्न हुये वैराग्य के संस्कारों को आपने गृहस्थ जीवन के सभी आकर्षणों को तिलांजलि देकर संयम-साधना से ओतः प्रोत बना दिया। आपकी विनयशीलता के कारण आप अपने कृतित्व में पूर्ण सफल हुई। संयमी जीवन में भी विनयशीलता आपका उत्कृष्ट गुण बना रहा। बड़ों के प्रति विनय, छोटों के प्रति विनय, श्रावक-श्राविकाओं और बालकों के प्रति विनय की अनुपम भेंट देकर अपनी संयम, साधना में चार चाँद लगा दिये।

यह शुभ संयोग है कि आपका जन्म तेरापंथ धारा में हुआ तो विवाह स्थानकवासी धारा में व दीक्षा खरतरगच्छ संघ में हुई। अर्थात् आप तीनों ही सघ-धाराओं की पावन त्रिवेणी हैं। आपके व्याख्यानों में, प्रवचनों में और प्रयत्नों में जैन-संस्कृति के सम्पूर्ण उन्नयन की ललक स्पष्टतः दिखाई देती है। जैन-संस्कृति आप जैसी आर्यारत्न को पाकर धन्य है।

अभिवन्दन ! अभिनन्दन !!

आपके जीवन के 81 एवं दीक्षा पर्याय के 47 वर्ष की सफल परिसम्पन्नता पर आज पूरा जैन समाज हर्षित है। जयपुर नगर की जैन श्वेताम्बर तेरापथी सभा को विशेष हर्ष है कि उसके आंगन में पोषित महान् पुत्री ने आज पूरे जैन समाज को गौरव प्रदान किया है। सभा की ओर से आपके चरणों में शतशः नमन करते हुए हम आपके यशस्वी दीर्घजीवन की कामना करते हैं तथा हृदय की सम्पूर्ण भावांजलियों के साथ आपका पुनः पुनः अभिनन्दन करते हैं।

उत्तमचन्द सेठिया
अध्यक्ष

राजकुमार बरड़िया
मंत्री

प्रवर्तिनी प्रवरा आर्या श्री
सहृदया सरलात्मा शुचितम,
सौम्याकृति अति प्रतिभाशीला,
साधे नित शम-दम -संयम।

सज्जन श्री की काया के मिस
सौम्य -शील गुण का नन्दन-वन,
सज्जनता के श्री चरणों में,
त्रिभुवन का शत-शत वन्दन।

-गणी श्री मणिप्रभ सागर

आगम ज्योति प्रवर्तिनी स्व. सज्जन श्री जी म० सा
की मोहनबाड़ी जयपुर में निर्माणाधीन छत्र
का रेखाचित्र